डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2024-26
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 132
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

मूल्य 50/-

42 वाँ वर्ष

अक्षरा

230

साहित्य की मासिकी

मई 2024

उग्र रूप धारण कर जिसमें दिनकर भूमि तपाते हैं,
हो जाते हैं शुष्क जलाशय वृक्षादिक कुम्हलाते हैं।
प्राणिमात्र गर्मी से जिसमें होते हैं अतिशय बेहाल,
आया वही निदाघ काल यह दुस्सह काल-समान कराल॥

– मैथिलीशरण गुप्त

साधो सबद साधना कीजे
अजित वडनेरकर

स्तंभ
नीलम कुलश्रेष्ठ,
रामेश्वर मिश्र पंकज,
कुसुमलता केडिया

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
सूर्यकांत नागर, प्रमोद पुष्कर,
सतीश चन्द्र चतुर्वेदी 'शाकुंतल',
मनीषा शर्मा, संदीप अवस्थी, श्रुति जौहरी

प्रसंगवश
लतिका खानवलकर

संस्मरण
प्रकाश मनु

ललित निबंध
मनीष कुमार चौरे

व्यंग्य
सुदर्शन सोनी

कहानी
मंजुश्री, विनीता बाडमेरा
संजय कुमार सिंह

कविता
राजेन्द्र निशेश,
विनीता वर्मा,
ममता राठौर

ग़ज़ल
राकेश जोशी

अक्षरा
अंक-230
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

श्री सुमित्रानंदन पंत

जन्म - 20 मई 1900

प्रयाण - 28 दिसंबर 1977

प्रकृति के सुकुमार कवि श्री सुमित्रानंदन पंत का जन्म हिमालय अंचल के उत्कृष्ट प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण कौसानी गाँव में हुआ था। उनका बचपन का नाम गोसाईदत्त था। कौसानी गाँव के सौंदर्य को देखकर महात्मा गाँधी ने उसकी तुलना स्विट्जरलैण्ड से की थी। पंत जी ने स्वयं भी लिखा है कि मैंने प्रकृति की गोद में पलकर ही अपनी रचनाओं के लिए प्रेरणा ग्रहण की। पंत जी की प्रारंभिक शिक्षा कौसानी गाँव के वर्नाकुलर स्कूल में हुई। ग्यारह वर्ष की उम्र में वह अल्मोड़ा आ गए। यहाँ उन्हें ऐसा साहित्यक वातावरण मिला जिससे उनकी वैचारिकता का विकास हुआ। सन् 1918 में भाई के साथ वाराणसी आकर क्वींस कॉलेज से माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इलाहाबाद के कॉलेज में इंटरमीडिएट की पढ़ाई प्रारंभ की लेकिन 1921 में महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। घर पर रहकर ही हिंदी, संस्कृत, बाँग्ला और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। जयशंकर प्रसाद, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'महाप्राण निराला', महादेवी वर्मा और पंडित सुमित्रानंदन पंत हिंदी साहित्य में छायावाद के चार प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं लेकिन पंत जी छायावाद से चिपके नहीं रहे। उन्होंने गाँधी और मार्क्स का गहन अध्ययन किया–प्रगतिशील विषयों पर भी उन्होंने खूब लिखा। उन्हें हिंदी के प्रथम प्रगतिशील कवि के रूप में भी जाना जाता है। साहित्य के साथ ज्योतिष और चिकित्सा शास्त्र में भी उनकी गहरी रुचि थी।

उनकी रचना यात्रा को तीन चरणों में देखा जा सकता है। 1916 से 1935 तक पहला चरण छायावादी काव्य का 1935 से 1955 तक प्रगतिवाद काव्य का दूसरा चरण और 1955 से 1977 तक महर्षि अरविंद से प्रभावित कविताओं का तीसरा चरण। कविताओं के अतिरिक्त नाटक, उपन्यास, निबंध और अनुवाद आदि की 28 कृतियाँ प्रकाशित हैं। छायावादी कविताओं के अलावा पंत जी ने प्रगतिशील समाजवादी, मानवतावादी और महर्षि अरविंद से प्रभावित कविताएँ भी लिखीं हैं। ग्रंथि, गुंजन, ग्राम्या, युगांत, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायन, चिदंबरा, सत्यकाम आदि आपकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं।

हिंदी साहित्य की सेवा के लिए उन्हें वर्ष 1961 में पद्मभूषण, 1968 में ज्ञानपीठ पुरस्कार, सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, आदि अनेक पुरस्कारों से अलंकृत किया गया। श्री सुमित्रानंदन पंत जी का यह दुर्लभ फोटो दिनांक 31 मार्च 1968 को प्रयाग स्थित उनके निवास पर मध्यप्रदेश के वयोवृद्ध सुप्रसिद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल द्वारा क्लिक किया गया था।

अक्षरा

230

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
42 वाँ वर्ष

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

संजय सक्सेना
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर-संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.एमपीराष्ट्रभाषा.com**

यह एक महाप्राण कवि की ताक़त होती है कि अपनी ही संस्कृतनिष्ठा और क्लासिकी से ऊबकर जब वह कुछ कहता है तो भी कालजयी ही कुछ कहता है। तो निराला जी को उम्र के उस दौर में भी जब उनका स्व-नियंत्रण शिथिल हुआ था, यह आभास तो हो गया था कि कुछ ऐसी शिक्षा आने वाली है जिसके चलते महिषासुर को लोग चाचा मानेंगे।

जब से एफ. ए. फेल हुआ,
हमारा कालेज का बचुआ।

वाल्मीकि को बाबा मानै,
नाना व्यासदेव को जानै,
चाचा महिषासुर को,
दुर्गा जी को सगी बुआ।

तो यही हुआ। महिषासुर चाचा पर उनके कुछ नवदीक्षित भतीजों -भतीजियों की श्रद्धा उमड़ पड़ी। और शक्ति/ दुर्गा को निशाने पर लेने का एक अभियान एक साथ मिशनरियों और वामपंथियों की ओर से शुरू हुआ। प्रकट तौर पर ये वैचारिक विरोधी लगते हैं पर वास्तव में भारत में जिस तरह से वामपंथी कार्य करते हैं, वे प्रच्छन्न मिशनरी ही हैं। इनका लक्ष्य भारत से हिन्दुत्व की पकड़ को शिथिल करना है ताकि बाद में मिशनरी अपना काम आसानी से कर सकें। ये एक रिक्तता रचते हैं, एक शून्य जिसपर बाद में मिशनरी आकर कब्जा हैं। इसमें कालेज के बचुआ काम आ सकें, यह जतन भी किया गया। इसलिए शैक्षिक परिसरों में महिषासुर शहादत दिवस मनाया जाने लगा। सो यह कविता पराग पावन की है। इनकी एक कविता 'हम जे एन यू में पढ़े हुए लोग' शीर्षक से भी है। लेकिन यहाँ उस कविता को अभी छोड़ दें और आज दुर्गा नवमी के पहले दिन इन सज्जन की यह रचना देखें। शीर्षक है -

महिषासुर का संधिपत्र

यह लड़ाई तुम्हारी नहीं है, दुर्गा!
मेरी पसलियों में धँसा हुआ
तुम्हारे हाथ पर चढ़ा हुआ
यह त्रिशूल किसका है
मेरे रक्त में तैरती तुम्हारी तलवार का
असली पता क्या है
असली वजह क्या है
जो मेरा अन्त ही तुम्हारी मंज़िल है

मैंने नहीं छीनी तुम्हारी ज़मीन
मैंने नहीं गाया तुम्हारे खिलाफ़ कोई गीत
मैंने नहीं रची तुम्हारे विरुद्ध कोई साजिश

तुम्हारा रूप मेरे लिए जीवन का पर्याय था
तुमसे परिचय मेरे नए जन्म की आहट थी

मैंने चाहा था कि
जब साँझ के सागर में डूबते सूरज को
सिर झुकाकर विदा करे काँस का फूल
हम उसके पास बैठे रहें हाथ पर हाथ धरे हुए
मैंने चाहा था कि
बीच जंगल में भीगती हुई हम दोनों की हँसी
एक झटके में ध्वस्त कर दे
गीले पेड़ों की तन्हाई को

तुम्हारे साथ जीना चाहा था, दुर्गा!
एक औरत के मान के सम्मुख नतमस्तक होकर
एक औरत को कुछ क्षणों के लिए नहीं चाहा
मैंने चाहा था पूरा-का-पूरा जीवन
पूरे जीवन का पूरा-का-पूरा साथ

मेरा जन्म एक उपहास था
मुझे अपमान ने पाला था और व्यंग्य ने दुलारा था
मेरी मोटी और श्यामवर्णी माँ को किसने भैंस कहा
क्या तुम जानती हो

क्या तुम्हें पता है मेरी हत्या के बाद
तुम्हारी बची उम्र का क्या होगा
तुम समझती हो कि
सरेआम तुम्हें नहीं बैठाया जाएगा
एक पुरुष की नंगी जाँघ पर

तुम समझती हो कि तुम्हारी सम्भावना सहित
तुम्हें नहीं जला दिया जाएगा
फागुन-चैत के महीने में
तुम्हारी पवित्रता का परीक्षण होगा
तुम्हें जलावतन किया जाएगा
और इज़्ज़त के नाम पर
दफ़ना दिया जाएगा धरती में

भारतवर्ष में बहुत कम हैं विश्वविद्यालय
विश्वविद्यालयों में बहुत कम हैं स्त्रियाँ
उनमें भी कम ही सुन सकी होंगी
ज्याँ फ्रांकोइस ल्योतार का नाम
फिर भी यह समझना बहुत कठिन नहीं है, दुर्गा!
कि सारे सत्य तथाकथित होते हैं
सारी कहानियाँ एक हथियार हैं
जिससे विरोधी विचारों की गर्दन उतारी जाती है

मेरी हत्या के ऊपर तुम्हारी हत्या है
और तुम्हारी हत्या के ऊपर
बैठा है कोई महर्षि
जिसकी जटाओं में ज्ञान की एक गंगा है
जो तिनके को डुबा सकती
पत्थर को तैरा सकती है

दुर्गा!
यह युद्ध पल भर के लिए रोक दो
ताक़त के उस तन्त्र की गहरी पड़ताल करो
जिसने हत्या को जश्न में बदल दिया
इस युद्ध को पल भर के लिए रोक दो, दुर्गा!
और अपनी पुरखिनों को याद करते हुए
सीने पर हाथ रखकर
अपनी अजन्मी बेटी की क़सम खाकर बोलो
कि पिछले महीने राजगीर की पहाड़ी पर
बलत्कृत हुई थी जो लड़की
उससे तुम्हारा कोई नाता नहीं था!

इस कविता में विश्वविद्यालयों की जो बात की गई है-'भारत में बहुत कम हैं विश्वविद्यालय/ विश्वविद्यालयों में बहुत कम हैं स्त्रियाँ'-उससे इन कवि महोदय को जैसे ज्याँ फ्रांकोइस ल्योतार की याद आती है, मुझे निराला की कॉलिज का बचुआ वाली कविता की याद आई। कवि की इन पंक्तियों में भारत में विश्वविद्यालयों की कमी का सोग है। अब चूँकि कवि का विश्वास ऐतिहासिक भौतिक द्वन्द्वात्मकतावाद में है, तो वह उस इतिहास को याद किए बिना कैसे बात करता है जब इसी भारत में दुनिया के सबसे ज़्यादा विश्वविद्यालय थे और किस तरह के ज़रिए वे सब नष्ट कर दिए गए-नालंदा, ओदंतपुरी, विक्रमशिला आदि आदि-वह सब क्या जे एन यू में पढ़े हुए लोग नहीं पढ़ते। या कि जैसे गोधरा में कहा गया कि उस ट्रेन के डिब्बे में आग स्वयं हिन्दुओं ने लगाई, या मुंबई के हमले के बारे में भी यह किताब तैयार की गई कि वह हमला भी हिन्दू संगठन की ओर से ही किया गया-तो एक कथा उस इतिहास के बारे में यह भी गढ़ दो कि वे सब विश्वविद्यालय भी स्वयं हिन्दुओं के द्वारा ही नष्ट कर दिए गए। अलेक्ज़ेंड्रिया, यूकाटन, टेक्सकोको आदि के विश्वविद्यालय/ पुस्तकालय मिशनरियों द्वारा कैसे नष्ट किए गए, उस पर भी धूल डालो। ऐतिहासिक भौतिकवादी द्वन्द्वों को भुलाकर आओ 'शुद्ध वर्तमान' के बुद्ध-उद् बुद्ध अस्तित्ववादी क्षण में और कहो कि भारत में बहुत कम हैं विश्वविद्यालय और उनमें भी बहुत कम हैं स्त्रियाँ। स्त्रियों की कमी की क्षतिपूर्ति शायद इसीलिए उस विश्वविद्यालय में कुछ लड़कों द्वारा साड़ी पहनकर की जा रही है।

बहरहाल इस कविता का शीर्षक स्वयं में एक असंगति है- महिषासुर ने कभी संधिपत्र नहीं लिखा। वह बात सिर्फ़ कॉलेज के बचुआओं के ही दिमाग़ में इक्कीसवीं सदी में भरी गई है, उसी का वमन इस कविता में दिखता है। वमन हो या असंगति पर यहाँ यह कृत्रिम सोच है कि जब पसलियों में त्रिशूल धँसा हुआ हो, रक्त में तलवार तैर रही हो-जैसा कि इस कविता के पहले स्टैंजा में कहा गया-तो संधिपत्र लिखना संभव होता है। सबसे पहली कोशिश दुर्गा के सामने एक वैयक्तिकता की है। यानी जैसे 'सबका साथ सबका विकास' की भावना का मुक़ाबला 'मेरे विकास का दो हिसाब' से करने की कोशिश आजकल की जा रही है, जहाँ 'सब' के सामने 'मेरे' को खड़ा किया जा रहा है, यानी एक जन-भाव के मुक़ाबले में एक व्यक्ति-भाव, चेतना का स्थापन करने की कोशिश इस कविता का महिषासुर में करता है। उसके हिसाब से यह लड़ाई दुर्गा की नहीं है। तब भारत के जो सैनिक पाकिस्तान या चीन से भिड़ते हैं, क्या उन्हें भी यह कहकर उकसाने की कोशिश की जाएगी कि यह लड़ाई तुम्हारी नहीं है। की गई भी थी। 1962 और 1965 के युद्धों को याद करें। आश्चर्य होता है कि आजकल के जनवादी इतने वैयक्तिक, इतने निजीकृत हो गए हैं। ये बात करते थे जनसंघर्ष

की!

तब दुर्गा बोलतीं यदि उनके सामने संधिपत्र आता भी कि हाँ जो भी निर्दोष लहू , महिषासुर, तेरे अत्याचारों से बहा है, वह लहू मेरा ही है।

आततायी जन-संगठन से घबराता है। वह एक समग्रीभवन से घबराता है, एकता से घबराता है। तो वह उन्हें बाँटेगा- जातीय पहचान को मजबूत करेगा, क्षेत्रीय पहचान को उभारेगा और अंत में इस कूटनीति पर आ जाएगा कि तेरा खुदका लेना-देना क्या है भाई।

जबकि शुभ-शक्तियों के एकत्र होकर एक ही रूप में ढल जाने का नाम ही तो दुर्गा होना है। ये दिव्य शक्तियाँ न केवल शक्ति का एकात्म स्वरूप बनती हैं, बल्कि रण-सज्जित करने के लिए उसे सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र भी उपलब्ध करवाती हैं। कहाँ तो एक जगह नीत्शे स्वयं कहते हैं कि स्त्री ईश्वर की दूसरी गलती है, या कहाँ ख्रिस्ती मत है कि भगवान ने आदमी को अपनी इमेज में बनाया और स्त्री को आदमी की इमेज में, और कहाँ दुर्गा सप्तशती के मध्यम चरित्र में महिषासुर मर्दिनी का रूप सभी देवताओं के अलग-अलग तत्वों से आकार लेता हुआ। दुर्गा सप्तशती दुर्गा को जब देवताओं के तेज पुंज के पर्वत के रूप में वर्णित करती है-'अतीव तेजस: कूटं ज्वलन्तमिव पर्वत:।' सप्तशती का कहना है कि यह अतुलनीय तेज सम्पूर्ण देवताओं के शरीर से प्रकट हुआ था-'अतुलं तत्र तत्तेज: सर्वदेवशरीरजम्' - और एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया था-'एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।' इस प्रसंग में दो कुंजी शब्द हैं-'सर्वदेवशरीरजं' और 'एकस्थं'। मात्र एक या दो देवताओं के तेज का योगदान नहीं है, शक्ति की विनिर्मिति में सभी देवताओं का योगदान है। शंकर का तेज मुख के प्राकट्य में काम आता है। शंकर का तेज जिस तरह से कल्याणकारी है, उसी तरह से देवी का मुखदर्शन। यमराज के तेज से केश मिलते हैं- देवी की केश-कालिमा के पीछे यम का होना स्वाभाविक ही है। 'बाहवो विष्णुतेजसा'-श्री विष्णु भगवान के तेज से उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं। चतुर्भुज विष्णु के तेज से ऐसा होना सहज ही प्रतीत होता है। चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, पृथ्वी, ब्रह्मा, सूर्य, वसु, कुबेर, प्रजापति, अग्नि, संध्या, वायु सभी ने अपना अलग-अलग योगदान किया जिससे देवी 'संभव' हुई- 'सम्भवस्तेजसां शिवा।' दूसरा कुंजी शब्द है-एकस्थं। यह बताता है तेजों के संगठन का महत्व।

तो कविता का महिषासुर जब यह कहता है कि 'यह लड़ाई तुम्हारी नहीं है, दुर्गा' तो समझ जाना चाहिए कि यह क्या गेम खेला जा रहा है। दुर्गा ऐसे शातिरों को पहचानतीं हैं। हम आप पहचानते हैं क्या?

यह महिषासुरमर्दिनी के शिल्प का जो एक विशेष प्रकार है, उसे खास वामपंथी तरीके से उकसाने योग्य बनाना है और यह बताना है कि दुर्गा सिर्फ़ एक साधन की तरह किसी दूसरे के लिए इस्तेमाल भर हो रही हैं कि महिषासुर की पसलियों में धँसा हुआ त्रिशूल और रक्त में तैरती तलवार दूसरों की है, दुर्गा बस एक वाहिका भर हैं। पर दुर्गा सप्तशती में इसको इतनी सरगोशी और रहस्यमयता के साथ नहीं कहा गया है- शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्। यह है 'त्रिशूल किसका है' की जासूसी खोजबीन का नतीजा। कि पिनाकधारी भगवान शंकर ने अपने शूल से एक शूल निकाल कर उन्हें दिया। तलवार के लिए भी कोई बड़ी गुप्तचरी करने की आवश्यकता नहीं। दुर्गा सप्तशती में कहा गया कि- कालश्च दत्तवान खड्गं। कि काल ने उन्हें तलवार दी।

अब कवि बनने चले हैं पर रूपक का ज्ञान नहीं है। महाकाल और काल ने जो दिया है, उस पर सवाल कर रहे हैं। तलवार समय का प्रतीक है, त्रिशूल अनंत का। कुछ लोगों को भरम है कि कविता लिखना उन्हीं से शुरू हुआ और शास्त्र कविता न थे। अनंत को सनातन भी कहते हैं। दुष्ट लोग जब-जब दुनिया पर क़हर ढाएँगे, बिना क्षमायाची या संकुचित हुए सनातन का यह त्रिशूल उनकी पसलियों में धँसेगा ही धँसेगा।

और दोगलेपन की भी कोई हद है। आपके उस सिद्धांत की याद करें-सत्ता बंदूक़ की नली से निकलती है।' अपने मामले में उक्त सिद्धांत के सच निकलने पर तो मन ही मन खुश होते हैं। यह यूँ ही नहीं है कि हमारे देश में इस सिद्धांत के परस्तों का कुनबा इस सिद्धांत को कब से न केवल मानता रहा है बल्कि उनका एक धड़ा भारत की एक बड़ी पट्टी को कब्जाए और लाल बनाए हुए है। नक्सली क्षेत्रों में देखिए न कैसे फटाफट गोलियाँ चल रही हैं। तब तो कहते हैं वर्गयुद्ध है यह।

साफ़-साफ़ बता दीजिए न कि त्रिशूल-तलवार बुरी बात है, बंदूक की नली नहीं। ये क्यों गाँधी जी की-सी अदा अपना ली है। ऐसा लगता है कि दूसरों को 'अहिंसा परमो धर्म:' सिखाकर उसके किसी प्रत्युत्तर को कुंद करते रहो और खुद अपने कारतूस अपनी बंदूक की नली में भरते रहो।

पर कथा तो यह कह रही है कि काल अस्त्र है, आरामकुर्सी नहीं है कि काल की मार बड़ी होती है। वक्त से डरो। वो सुना नहीं अख़्तर सिद्दीक़ी क्या कह गए -

दौलत पर मत इतना अकड़ो
रेत की ये दीवार है बाबा
टेढ़े सीधे हो जाते हैं
वक्त की ऐसी मार है बाबा

रक्त में यह वक्त की तलवार तैर रही है, कवि महोदय। महाकाल ने त्रिशूल दिया है, वह शूल की तरह दुष्टों की आँखों में खटके तो खटके, पर वह अपना काम करेगा ही।

मार्कण्डेय पुराण, दुर्गा सप्तशती, श्रीमद्देवीभागवत् - किसी को तो पढ़ भाई। सिर्फ़ फारवर्ड प्रेस को पढ़ने से न दुर्गा समझ आएँगी न महिषासुर। महिषासुर मर्दिनी का मध्यम चरित्र इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि यह एकमात्र ऐसा चरित्र है जो देवी की गढ़न को बताता है, शक्ति के शिल्प को। भारतीय पौराणिकी में ऐसा कोई चरित्र नहीं है जिसकी ऐसी विरचना हुई हो। जिस पर सृष्टि की रचना का भार आने वाला हो, स्वयं उसकी संसृष्टि होती है। देवी का यह टैक्शचर वस्तुत: तेजस्विता का ताना-बाना है। द्युति का वर्चस्व। सुषमा का यह संघटन है। रोशनी और रौनक का। यह एक नूर ते सब जग उपज्या जैसा ही कुछ है। तेज शब्द प्रतिभा का भी पर्याय है। देवी प्रतिभा की पुंज हैं। सुदीप्ति का समुदाय। एक ऐसे वक्त जब दुनिया का वर्तमान तमोमय और निष्प्रभ हो, सहसा देवी की दैदीप्यमान उपस्थिति जैसे सारा कलुष समाप्त कर डालेगी। यह कोई खिचड़ी गठजोड़ नहीं है। यह कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जुटा लेने की बात नहीं है। यह एक समग्रीभूत एकत्रीभवन है, एकत्रीकरण नहीं। यह सूचक है कि देवशक्तियाँ अब एकजुट हो गई हैं। 'समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवां' दूसरे, तेज एक तरह का अमूर्तन है, देवी के रूप में जैसे उसे साकार किया गया है। आलोक तो वैदेहिक था, उसे सवपु करके शरीरीय करके ही नहीं दिखाया गया बल्कि देवताओं ने खुद को देवी के इन्द्रियायतन में पुनर्गठित भी किया।

प्रकृति दुर्गा सप्तशती में संकट में है। द्वितीय अध्याय में जहाँ यह कहा गया है कि महिषासुर सूर्य, इंद्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण तथा इन्य देवताओं के भी अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बन बैठा है। वहाँ इस संकट का प्रथम वर्णन मिलता है। इस संकट को उत्तर चरित्र में शुंभ-निशुंभ द्वारा प्रकृति की शक्तियों की लूट के सिलसिलेवार वर्णन के रूप में फिर बतलाया गया है। उन्होंने वरुण से तीन चीजें छीनी हैं- एक सुवर्ण की वर्षा करने वाला छत्र, पाश और समुद्र में होने वाले रत्न। उन्होंने समुद्र की किंजल्किनी नामक माला छीनी जो केसरों से सुशोभित है और जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं, उन्होंने अग्नि के वस्त्र छीने हैं। मुत्यु की उत्क्रांतिदा नाम वाली शक्ति छीनी है। उन्होंने इन्द्र से भी तीन चीजें छीनी हैं- ऐरावत, पारिजात वृक्ष और उच्चै:श्रवा घोड़ा। प्राकृतिक सम्पदा की यह पाश्विक लूट महिषासुर के द्वारा चित्रित की गई है। एक तरह की वहशी वासना। मनुष्य और पशु की संयुक्ति का आदर्श यदि नृसिंह, गणेश और हनुमान हैं तो विकृति का प्रतिमान महिषासुर है। ग्रीक पौराणिकी में कि मेरा नामक एक नृशंस प्राणी है जिसका सिर सिंह का है, शरीर बकरी का और पूँछ सर्प की। एक दूसरा दैत्य ग्रीक मिथकों में सेंटोर का है जिसका शरीर और टाँगें घोड़े की हैं और सिर तथा बाँहें मनुष्य जैसीं। एक अन्य दैत्य एनफील्ड का है जिसका शरीर ग्रेहाउंड का है, सिर लोमड़ी का, आगे के अंग गिद्ध के और पीछे के भेड़िए के।

दुर्गा सप्तशती कहती है कि प्रकृति की ही शक्तियाँ इसकी प्रतिरोधी सत्ता के तेज को सृजित करती हैं। चंद्रमा, इंद्र, वरुण, पृथ्वी, संध्या, वायु। 'सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्/ वारुणेन च जङ्योरू नितम्बत्तेजसा भुव: / ध्रुवौ च संध्योस्तेज: श्रवणावनिलस्य च' चंद्रमा के तेज से दोनों स्तनों का और इंद्र के तेज से मध्य भाग (कटि प्रदेश) का प्रादुर्भाव हुआ। वरुण के तेज से जंघा और पिंडली तथा पृथ्वी के तेज से नितंब भाग प्रकट हुआ। उसकी भौंहें संध्या के और कान वायु के तेज से उत्पन्न हुए थे। पुन: प्रकृति की ही शक्तियाँ इस प्रतिरोधी सत्ता को शृंगारित व अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित करती है। वरुण शंख और पाश देता है, अग्नि शक्ति, वायु धनुष तथा बाण से भरे हुए

दो तरकस, इंद्र वज्र से वज्र तथा घंटा, यमराज कालदंड से दंड। सूर्य देवी के समस्त रोमकूपों में अपनी किरणों का तेज भर देता है। काल चमकती हुई ढाल और तलवार देता है। क्षीर समुद्र उज्ज्वल हार, कभी जीर्ण न होने वाले दो दिव्य वस्त्र भेंट करता है। साथ ही दिव्य चूड़ामणि, दो कुंडल, कड़े, उज्ज्वल अर्धचंद्र, सब बाहुओं के लिए केयूर, दोनों चरणों के लिए निर्मल नुपूर, गले की सुंदर हँसली और सब अँगुलियों में पहनने के लिए रत्नों की बनी अँगूठियाँ भी दीं। जलधि ने उन्हें सुंदर कमल का फूल भेंट किया, हिमालय ने सवारी के लिए सिंह तथा भाँति-भाँति के रत्न समर्पित किए। सम्पूर्ण नागों के राजा शेष ने जो इस पृथ्वी को धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियों से विभूषित नागहार भेंट दिया।

कवि महोदय को पता नहीं त्रिशूल और तलवार ही क्यों याद रहे। विष्णु ने चक्र दिया था, अग्नि ने शक्ति, वायु ने धनुष बाण, इंद्र ने वज्र दिया था, यमराज ने दंड, वरुण ने पाश, विश्वकर्मा ने परशु, अनेक अस्त्र और कवच, हिमालय ने सिंह। सभी देवताओं ने अपने अस्त्र-शस्त्र दिए। इससे शक्ति-पुंज तैयार हुआ। यह जे नारी सशक्तिकरण से कहीं आगे की चीज है। आपत्ति इस बात पर क्यों कर रहे कि यह त्रिशूल किसका है और तलवार किसकी। अब इस आधार पर फूट के बीज बोइएगा क्या? यानी यदि आज भारत अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने के लिए अस्त्र-शस्त्र का यहाँ-वहाँ से अर्जन करता है तो क्या करें कि यहाँ आदत पड़ी है कि राफ़ेल किससे लिया। सच तो यह है कि चाहे नारी शक्तिरूप हो चाहे भारत कुछ लोगों को रुचता ही नहीं, जँचता ही नहीं।

आपने तत्कथित प्रगतिशीलों के बीच ये पंक्तियाँ बार बार उद्धृत की जाती देखी होंगी -

पहले वे कम्युनिस्टों के लिए आए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं कम्युनिस्ट नहीं था

फिर वे समाजवादियों के लिए आए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं समाजवादी नहीं था

फिर वे आए ट्रेड यूनियन वालों के लिए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं ट्रेड यूनियन में नहीं था

फिर वे यहूदियों के लिए आए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं यहूदी नहीं था

फिर वे मेरे लिए आए
और तब तक कोई बचा न था
जो मेरे लिए बोलता।

इन्हें पढ़ने के बाद अब आप इस कविता के महिषासुर को पढ़िए जहाँ वह दुर्गा को और भटकाने की कोशिश यह कहकर करता है कि -

मैंने नहीं छीनी तुम्हारी ज़मीन
मैंने नहीं गाया तुम्हारे खिलाफ़ कोई गीत
मैंने नहीं रची तुम्हारे विरुद्ध कोई साजिश

मतलब यह कि किसी लोक-प्रयोजन का तब तक कोई मतलब नहीं जब तक कि उसमें स्वयं का कोई निहित या विहित स्वार्थ न हो। जबकि देवीभागवत् में कहा गया था कि 'अपना स्वयं कोई स्वार्थ न रहने पर भी उन जीवों का उद्धार करने के लिए ही तुम इस अखिल जगत् की रचना करती हो।' यानी कविता का महिषासुर मनुष्य की सबसे निचली प्रवृत्तियों से खेलने की कोशिश कर रहा है। जब महिषासुर दुर्गा की ही कोई ज़मीन छीने, तब दुर्गा को इसमें कोई एतराज़ होना चाहिए। फिर भले ही वह दुनिया भर में अपनी सत्ता-लिप्सा और सत्तावेश में कुछ भी करता फिरे।

इसे कहते हैं दुहरे मानक। भारतीय संस्कृति से चिढ़ने की धुन में इन कथित मसिजीवियों का क्या पतन हुआ है। कहाँ तो श्रम आंदोलन का यह नारा हुआ करता था कि एक को चोट तो सबको चोट। और कहाँ यह महिषासुराना तर्क कि यदि सबको नुक़सान भी पहुँचा हो तो भी दुर्गा उससे टकराने से सिर्फ़ इस आधार पर विरत रहे कि उसका तो कोई पर्सनल नुक़सान नहीं हुआ। तटस्थता और उदासीनता का एक चालाक आह्वान यह संधिपत्र दुर्गा से करता है।

यहाँ महिषासुर का यह रुख मैं भले ही सबको दुख दे रहा हूँ, पर तुम्हें तो नहीं दिया न। जगज्जननी को यह बंदा इस कविता में बता रहा है कि मैंने तुम्हारी कोई ज़मीन तो नहीं छीनी। जो 'सर्व

धार्यते जगत्' वाली दुर्गा हैं-उनसे यह कहा जाएगा तो क्या छाप छूटेगी महिषासुर की देवी पर?

इसलिए पराग पावन का कवि एक चतुराई करता है, वह महिषासुर के सभी सत्ता-संदर्भ एकदम ग़ायब कर देता है। अब वहाँ एक प्रेमी है, कोई मदान्ध एकराट् नहीं। पर सवाल यह है कि क्या दुर्गा को उससे युद्ध के लिए इसलिए आना पड़ा है कि वह एक प्रेमी है? या यदि कवि के इंगितानुसार वह भेजी गई हैं तो इसलिए कि उन्हें देखकर वह उनसे प्रेम-निवेदन करे।

यह अदा जानी पहचानी लगती है। इसे ही 'आदिपुरुष' में इस्तेमाल किया गया था जिसमें रावण के सत्ता-उन्माद की चर्चा ही नहीं की गई थी। यहाँ भी महिषासुर के सत्तातिरेक पर एकदम खामोशी है। जब महिषासुर जगत् की सारी संपदा कब्जाये बैठा है तो सम्पत्ति का वह संघनन किसी सच्चे वामपंथ को कैसे प्रिय हो सकता है? देवी भागवत् का के पाँचवें स्कंध के शुरुआती अध्यायों में ही कहा गया कि 'खिल भूमंडल नहीं में महिषासुर एकछत्र राज्य का उपभोग करने लगा।' तो कोई सच्चा लोकतंत्र प्रेमी इसे कैसे स्वीकार कर सकता है? 'इस समय महिषासुर स्वर्ग और भूमंडल दोनों का राज्य भोग रहा है।' ऐसा सत्ता-संग्रह वामदृष्टि को आपत्ति योग्य नहीं लगता? महिषासुर महालक्ष्मी के स्वायत्तीकरण की कोशिश में है और उलटपंथी ताली बजा रहे हैं। क्या यह इसलिए है कि वे संस्कृति के ज्यादा बड़े दुश्मन हैं बजाय पूँजी के संघनन के। उन्होंने जितने ज्यादा युद्ध भारत के सांस्कृतिक आदर्शों के विरुद्ध लड़े हैं उतने पूँजी के कलुषित घनत्वीकरण के विरुद्ध नहीं। अब तो महिषासुर उन्हें प्रिय हैं भले ही उन्होंने संसार के सब रत्नों पर कब्जा कर लिया हो और भले ही वे संसार के सब भोगों को अकेले ही भोगते हों। कभी भी उनके कूटचक्रों के विरोध में इनके स्वर नहीं फूटते। बल्कि लगता है कि महिषासुरों ने उन्हें पर्याप्त भरमा लिया है।

महिषासुर सत्ताधीश तो रहा है कभी न कभी। वायर, जो इस तरह की हिंदू व्याख्याओं के लिए अपनी एक पहचान विकसित कर चुका है में 30/ 09/20 में लिखे एक लेख में राजेन्द्र प्रसाद सिंह लिखते हैं कि 'महिषासुर का नाम बाद में चलकर 'भैंसासुर' भी हो गया। भारत में भैंसासुर के नाम कई गाँव बसे हैं और कई चौक-चौराहे तथा मोहल्ले भी हैं। ये सब महिषासुर के ऐतिहासिक चरित्र होने के प्रमाण हैं।'

यह भी नव-बुद्धिजीविता का एक दिलचस्प पहलू है। यहाँ महिषासुर ऐतिहासिक होता है किन्तु उसे मारने वाली देवी एक मिथक हैं। रावण इतिहास है, राम मिथक हैं।

बहरहाल हम इसी तर्क पर आगे चलें। 'झारखंड के पलामू जिले के मनातु प्रखंड के अंतर्गत पद्मा पंचायत में भैंसासुर गाँव है। एक भैंसासुर गाँव उत्तरप्रदेश के पीलीभीत जिले के अंतर्गत पूरनपुर विधानसभा क्षेत्र के अंतर्गत है। मध्यप्रदेश भी भैंसासुर गाँव के कई प्रमाण समेटे हुए है। मध्यप्रदेश की तहसील अंतागढ़ में भैंसासुर गाँव है। ऐसे ही सतना जिले के मैहर थाना क्षेत्र के अंतर्गत एक ग्राम भैंसासुर है। जिला महोबा प्रखंड चरखारी में भी भैंसासुर कस्बा। कई नगरों में भैंसासुर की स्मृति में तिराहे और चौराहे हैं। मध्यप्रदेश के जबलपुर में भैंसासुर तिराहा है और बिहार के शहर बिहार शरीफ में भैंसासुर चौराहा है। भारत के कई स्थलों पर महिषासुर के पूजा स्थान हैं। सीहोर शहर के निकट इछावर मार्ग पहाड़ी पर भैंसासुर बाबा का स्थान है। मध्यप्रदेश के छतरपुर में भैंसासुर मुक्तिधाम है। दूर की बात छोड़िये, बनारस में भी भैंसासुर का मंदिर और घाट है। मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले के पास एक बड़ागाँव कस्बा है। यहाँ 'भैंसासुर का मंदिर' है। वह मंदिर भैंसासुर की मढ़िया के नाम से जाना जाता है। पर इससे क्या सिद्ध होता है? मैं इस सूची में कुछ अपनी ओर से भी जोड़ दिए देता हूँ। अंतागढ़ मध्यप्रदेश का नहीं, छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले का गाँव है। इसके अलावा फैजाबाद के मिल्कीपुर प्रखंड में भी एक भैंसासुर ग्राम है। हरदोई जिले में भरवाँ प्रखंड में भी है। पंजाब के होशियारपुर जिले में भी है। महाराष्ट्र के वर्धा में भी है। लेकिन इन सबसे क्या सिद्ध होता है? इनसे महिषासुर के राज्य का विस्तार ही सूचित होता है।

सो यह बात इस कथा में भी कही गई है। वह तो समस्त भूमंडल और स्वर्ग तक पर आधिपत्य कर लेने वाला कहा गया है। सं. रा. अमेरिका में साउथ डकोटा, व्योमिंग, टेक्सस, ओकलोहामा, मिसौरी, मिनेसोटा, आयोबा, वेस्ट वर्जीनिया, न्यूयॉर्क और साउथ केरोलिना में एक-एक शहर बफेलो (भैंस) के नाम से है।

बनारस में भैंसासुर घाट है, लेकिन देवी मंदिर है। महिषासुर की की उपस्थिति का विस्तार दक्षिण में भी है जिसका कोई जिक्र राजेंद्र प्रसाद सिंह नहीं करते। आंध्रप्रदेश के विजयवाड़ा में कनकदुर्गा देवी का मंदिर है। यहाँ महिषासुर के अत्याचारों से जब जनता अत्यन्त त्रस्त हो गई तो इंद्रकाल नामक ऋषि की तपस्या के फलस्वरूप अवतरित दुर्गा ने राक्षसों और महिषासुर से मुक्ति दिलाई, यह कथा चलती है। कनकदुर्गा मंदिर का उल्लेख दक्षिण भारतीय शास्त्रों में आता है।

टीकमगढ़ में भी भैंसासुर का मंदिर नहीं है, मढ़ी है। नैना देवी के मंदिर के पास कृपालीकुंड भी महिषासुर की यादों से जुड़े कुंड हैं जहाँ एक मान्यता के अनुसार महिषासुर की दोनों आँखें और एक मान्यता के अनुसार उसकी खोपड़ी गिरी थी। यह हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले की बात हुई। उधर उत्तराखंड के गढ़वाल के द्रोणगिरी गाँव में दुर्गा सप्तशती की कथा का वह हिस्सा मिलता है जब महिषासुर अपने खुरों से धरती को खोदने लगता है। वहाँ मान्यता यह चलती है कि महिषासुर अभी भी धरती खोदे जा रहा है और आज भी यह क्षेत्र एकदम नया-नया खुदा लगता है।

महाराष्ट्र के नासिक में सप्तश्रृंगी देवी मंदिर है जहाँ पहाड़ियों की तराई में पत्थर का महिष-मस्तक बना हुआ है जो महिषासुर का माना जाता है। यहाँ सात पहाड़ियाँ थीं तो पश्चिम बंगाल में बकरेश्वर मंदिर में महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति सात गरम जलकुंडों के साथ है। महिषासुर के मंदिर भारत भर में कहीं नहीं हैं। कहीं उसकी पूजा नहीं होती। आजकल कुछ लोग बाहर से आकर बनवासी जातियों को यह बताकर कि 'महिषासुर तुम्हारा पूर्वज था, ' कृत्रिम रूप से महिषासुर-दिवस मनाने की चेष्टा कर रहे हैं, लेकिन वह भरमाना है। और प्रमाणों की पूँजी नहीं है।

भैंसासुर नामक स्थानों/गाँवों का होना महिषासुर को पूज्य नहीं बनाता। मध्यकाल में विजेता शासकों ने बहुत से शहरों के नाम बदले और अपने नाम पर या अपने बादशाह या अपने पूर्व के नाम पर रखें। इससे वे पूज्य या आराध्य नहीं हो गए। खड़की शहर का नाम फतेह खान ने फतेहनगर कर दिया था। जब औरंगजेब दकन का वायसराय बना तो उसने इसका नाम औरंगाबाद कर दिया। लेकिन उनसे इन क्षेत्रों के लोगों की औरंगजेब के प्रति श्रद्धा प्रमाणित नहीं होती। हैदराबाद में कोई हैदर की पूजा नहीं करता, चाहे वह पाकिस्तान के सिंध में हो या हमारे तेलंगाना में। न अहमदाबाद में अहमद की आरती उतारी जाती न शाहजहाँनाबाद में शाहजहाँ की। फिर जैसा कि स्टालिनग्राड को बचाने में यूरोप के सैनिकों के द्वारा दिखाई गई वीरता के उपलक्ष्य में कई योरोपीय सड़कों, चौराहों आदि के नाम भी स्टालिन के नाम पर पड़े। प्राग में स्टालिन स्ट्रीट है, ब्रुरुताल (चेक रिपब्लिक) में स्टालिन चौराहा, ईस्ट जर्मनी में स्टालिन के नाम की अनेक सड़कें हैं, पौलेंड में हैं जबकि वहाँ स्टालिन से घृणा ज्यादा ही है। अलेक्जेंडर ने अपने नाम से कितने शहर बसाए। आधुनिक बल्गारिया का अलैक्जेंन्ड्रोपोलिस मेडिका, तुर्की का अलेक्जेंड्रिया, इजिप्ट का सिकंदरिया, अफगानिस्तान का अलेक्जेंड्रिया आरियाना सहित अलेक्जेंडर नाम वाले छः शहर हैं। तुर्कमेनिस्तान, पाकिस्तान, ईरान आदि कई देशों में उसके नाम पर शहर हैं। उनसे उसके विश्वविजयी होने का पता भले लग जाए, उसकी लोकप्रियता या जन-श्रद्धा का सूचकांक वे शहर नहीं हैं। पता नहीं इससे कौन-सी सैद्धान्तिकी निर्मित होती है? यों तो बख्तियार खिलजी के नाम पर भी बस्ती है, रेलवे स्टेशन है। बख्तियारपुर नगर है। अल्बर्टा में 'बफेलो' नामक कनाडियन शहर है और ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया के दक्षिण जिप्सलैंड में बफेलो नामक कस्बा है। दक्षिण अफ्रीका में भी बफेलो सिटी मेट्रोपोलिटन अथॉरिटी है। और इन क्षेत्रों में भैंस होती ही नहीं।

क्या इनसे महिषासुर राज की विश्व-व्याप्ति के निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं? क्या इनसे यह निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं कि महिषासुर को भैंस से समीकृत करना भरमाता है? कवि महोदय यह बताने की कृपा नहीं करते कि दुर्गा की वो कौनसी ज़मीन है जिसे न छीनने की कृपा महिषासुर ने की है। प्लाट नंबर क्या है उसका? खसरा खतौनी में क्या उसे ठीक ठीक दर्ज किया गया? दुर्गा का गाँव कौन सा है परगना कौन सा?

कविता के महिषासुर का दूसरा अहसान कि उसने दुर्गा के खिलाफ कोई गीत नहीं गाया। माने महिषासुर एक गीतकार या गायक है? हमें या किसी को भी उसकी इन विशेषताओं का पता नहीं था। पर इन कवि जी को इलहाम हो गया। और क्या यह महिषासुर समझता है कि यह वह स्त्री है जो कोई अपने खिलाफ़ गीत सुनने पर त्रिशूल पसलियों में घुसा देगी या अपनी

तलवार रक्त में घुसा देगी? इसे क्या सोवियत संघ या चीन समझ रखा है? क्या यह पोलपोट का कंपूचिया है या उत्तर कोरिया है? यानी वाक़ई यह मानते हैं कि विरुद्ध गीत और विरुद गीत को लेकर ऐसे मानक दुर्गा पर भी प्रवर्तित कर दिए जाएँ। दुर्गा ने ऐसी कोई सेंसरशिप लगा रखी है? या उन्होंने केरल या बंगाल की तरह विरोधी गीत पर मार डालने जैसे कुछ हालात बना दिए हैं। और यदि यह दुर्गा इस तरह है जैसी ये समझ रहे तो इस महिषासुर को ऐसी स्त्री से प्यार ही क्यों करना चाहिए?

ये कवि महोदय महिषासुर को दुर्गा के प्यार में पड़ा बताते हैं। अब इस बात के लिए तो कवि को धन्यवाद देना चाहिए कि दुर्गा को उसने जे एन यू के कुछ सज्जनों/ सज्जनियों की तरह सेक्स वर्कर तो नहीं कहा। पर यह जो मधुर-सी प्रणयाकांक्षा महिषासुर की ओर से उन्होंने कल्पित की, उसकी सच्चाई क्या है?

यह तकनीक हिन्दू द्रोह की एक चिर-परिचित तकनीक है ही। सारी पृष्ठभूमि से काटकर फिर किसी वचन को उद्धृत करना। इन लोगों के प्रेमादर्श रावण और महिषासुर टाइप ही होते हैं। जब रावण सीता को अपनी संपत्ति का लालच देता है या जब महिषासुर और शुंभ-निशुंभ अपनी संपदा के आधार पर देवी की सेक्सुअलिटी डिमांड करते हैं तो वह उनकी वैश्यावृत्ति है। उनके प्रति असमर्पिता ये स्त्रियाँ नारी-गौरव की चरम हैं। सो यह 'अंगूर खट्टे' वाला मामला हो सकता है। जो पैसों के सामने समर्पण को तैयार नहीं हुई, उसे सेक्सवर्कर बताकर महिषासुर के वंशज अपने पूर्वजों की ग्रंथि के उन्मोचन का दायित्व निभा रहे हैं। जब महिषासुर का मंत्री देवी से यह कहता है कि 'विशाल लोचने! उनके सम्पूर्ण राज्य और धन पर तुम्हारा अधिकार रहेगा। वे तुम्हारे सेवक होकर रहेंगे।' क्या ऐसे ही कथन वाल्मीकि रामायण में सीता से रावण ने न कहे थे?

देवी बार-बार कह रही हैं कि तू चला जा। तुझे मारने के लिए मैं प्रकट हुआ हूँ। लेकिन मान न मान मैं तेरा मेहमान जैसी हालत है। प्यार है तो जबर्दस्ती कि जाएगी? मान क्यों नहीं लेता अमिताभ बच्चन की एक फ़िल्म की सलाह : नहीं मतलब नहीं। तब दुर्धर और फिर त्रिनेत्र और अन्धक जैसे दैत्य देवी पर हमला कर देते हैं और मारे जाते हैं। तब महिषासुर देवी पर बाणवर्षा आरंभ कर देता है। समझ आ जाती है कि प्यार के दावे की असलियत।

हमारे कवि महोदय को इन सब कर्कशताओं को एक रोमांटिक बिंब विधान से जीतना है। महिषासुर से दुर्गा के युद्ध के समय उस दानव के छल देखते बनते हैं। देवी भागवत् के अनुसार- 'महिषासुर कपट विद्या का बड़ा अच्छा जानकार था। वह अनेक मायामय शरीर धारण कर समरांगण में भगवती पर चोट कर रहा था।'

क्या वह पुरुष के भीतर हमेशा से मौजूद एक पशु की कथा है? वह बार-बार रूप बदलता है। कभी अपनी औकात दिखाता है तो कभी अपनी माया। कभी अपनी हकीकत पर आता है तो कभी अपने मुखौटों पर।

सो किसी मनोवैज्ञानिक रचना के चलते देवी को छली बता दिया गया। हमारे कुछ बुद्धिजीवियों के सींग निकल आए हैं। पर हमारा यह कवि कम से कम उस गर्त में नहीं गिरा है। वह देवी के हृदय के बारे में कम और महिषासुर के हृदय के बारे में ज़्यादा जानता है।

यह बात और है कि हृदयहीनता ही आसुरी वृत्ति की पहचान है।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-shrivastava_manoj@hotmail.comC

अंक 230 मई 2024

अनुक्रम

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

अध्ययन और अनुभव / **अजित वडनेरकर/12**

हिंदी एक विचार अनेक-4

मेरे दिल, दिमाग अँगुलियों में हिंदी धड़कती है / **नीलम कुलश्रेष्ठ/14**

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र-13

धर्म के विषय में धर्मज्ञ ब्राह्मण ही प्रमाण हैं / **रामेश्वर मिश्र पंकज/16**

महाराज उशीनर और महर्षि अष्टावक्र की कथाएँ / **कुसुमलता केडिया/20**

अनुवाद

असमानता के लड़ें और विविधता और समावेशन को बढ़ाव दें **(मूल : रूथ जे सिमंस) / अनु. विभा खरे/23**

आलेख

सखि देखन चलो नृप कुँवर भलो / **सूर्यकांत नागर/28**

आत्मा और उसका स्वरूप / **प्रमोद पुष्कर/31**

ब्रज लोकगीतों के विविध आयाम / **सतीश चन्द्र चतुर्वेदी 'शाकुंतल'/33**

सिनेमा और सामाजिक उत्तरदायित्व / **मनीषा शर्मा/36**

विकृत मानसिकता या कन्टेंट की कंगाली / **संदीप अवस्थी/39**

रामायण महाकाव्य में संगीत के तत्व / **श्रुति जौहरी/42**

शोधालेख

दिनकर के साहित्य में आध्यात्मिक पक्ष / **गौरव कुमार गुप्ता/45**

जनजातीय जीवन में राम / **निशा यादव/48**

ठीकरे की मँगनी : नासिरा शर्मा / **सिराजुल हक/52**

किंवदंतियों से घिरा जीवन-सत्य : त्रिलोचन / **चारु गोयल/56**

प्रसंगवश

पोस्ट एवं टेलिग्राफ / **लतिका खानवलकर/59**

संस्मरण

जयप्रकाश भारती : बाल साहित्यकार / **प्रकाश मनु/61**

ललित निबंध

आम का पेड़ / **मनीष कुमार चौरे/67**

व्यंग्य

मैं कुत्ते को नहीं कुत्ता मुझे पाल रहा है / **सुदर्शन सोनी/70**

स्मरणांजलि

कवींद्र-रवींद्र और उनके विमर्श / **कृष्ण कुमार यादव**/72

आत्मकथ्य

भाई! मैं तो पाठक हूँ / **राजेन्द्र सिंह गहलौत**/75

अनुवाद

गढ़ी पठाणां (पंजाबी कहानी), मूल : अजमेर सिद्धु / **अनु.: नीलम शर्मा 'अंशु'**/80

कहानी

उत्सव मृत्यु का /**मंजुश्री**/89
पहली तनख़्वाह / **विनीता बाडमेरा**/94
बैक ग्राउण्ड / **संजय कुमार सिंह**/100

कविता

समय की पीठ पर / **राजेन्द्र निशेश**/105
लड़कियाँ / **विनीता वर्मा**/106
शब्द ब्रह्म / **ममता राठौर**/107

दोहे

आज भी अभी भी / **सत्यशील राम त्रिपाठी**/108

ग़ज़ल

जंगल-जंगल आग लगी / **राकेश जोशी**/109

समीक्षा

अखिलामृतम् (अखिलेन्द्र मिश्र) / **रामवल्लभ आचार्य**/110
लोक मिथक-मूल्य और सौंदर्य दृष्टि (श्यामसुंदर दुबे) / **भवेश दिलशाद**/112
समय के साक्ष्य (देवेन्द्र कुमार रावत) / **पद्मा सिंह**/114
छोटे मुँह छोटी सी बात (संतोष तिवारी) / **महेश श्रीवास्तव**/116
अनंग अवतार में चार्वाक (प्रमोद भार्गव) / **योग्यता भार्गव**/117
धर्मपाल महेन्द्र जैन की चयनित व्यंग्य रचनाएँ / **विजया सती**/120
आदमी की नब्ज (रामगोपाल भावुक) / **रूपेंद्र राज तिवारी**/122
एक बूंद समंदर (मीनाक्षी दुबे) / **मुजफ्फर इकबाल सिद्दीकी**/125
लछमन गुन गाथा(राजेन्द्र अरुण-विनोदबाला अरुण) / **जया केतकी**/127

अध्ययन और अनुभव

– अजित वडनेरकर

जन्म – 1962।
शिक्षा – हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

जानने, समझने, होने की बातें :- अध्ययन मूलत: सीखना है, ज्ञानार्जन है। इसके शब्दकोशीय अर्थों में पठन-पाठन, पढ़ाई है। पर जिन अर्थों में इसका प्रयोग किया जाता है उससे पर्यवेक्षण, देखना, सोच-विचार, जाँच जैसे आशय ही प्रकट होते हैं। कुल मिला कर कहा जा सकता है निरख-परख, चिन्तन-मनन या पठन-पाठन के ज़रिए ज्ञानार्जन करने को ही अध्ययन कहा जाता है। आमतौर पर सरकारी खबरों में 'केन्द्रीय अध्ययन दल आया' जैसे शीर्षक छपते हैं। इसका अर्थ यह नहीं होता कि केन्द्र से विद्यार्थी आए हैं जो कक्षाओं में जाकर पढ़ाई करेंगे। स्वाभाविक है कि यहाँ किसी विषय को जाँचने, समझने के लिए आए विशेषज्ञों के समूह की बात होती है।

अयन, राह, रीति :- व्युत्पत्तिक नज़रिए से भी देखें तो अध्ययन में 'अयन' बसा हुआ है। अयन यानी राह-रीति। अयन बहुआयामी अर्थवत्ता वाला शब्द है। इसमें गति, काल, स्थान, आश्रय, चाल, पद्धति, दायरा जैसे आशय भी हैं। 'अधि' उपसर्ग में ऊपर, ऊँचा, सम्पूर्ण के साथ-साथ किसी सीमा से आगे, सीमा से ऊपर, सीमा के अलावा जैसे भाव समाए हैं। इस तरह अध्ययन का अर्थ किसी विषय के बारे में समग्रता से जानकारी लेना है। उस विषय की परिधि में आने वाली सारी बातें, उस विषय से सम्बन्धित सारी बातें। यानी दायरे में और दायरे से बाहर वह सब कुछ जो उस सम्बन्ध में जानना चाहिए, यह सब अध्ययन में आता है। यह भी स्पष्ट है कि कूपमण्डूक का ज्ञान अध्ययन नहीं है। क्योंकि उसकी सीमा अत्यन्त संकुचित होती है। इस तरह अध्ययन का रिश्ता सिर्फ़ किताब, कॉपी, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम से नहीं है। वह सब जो अनूभूत है और वह भी जिसे पठन-पाठन से समझा जा रहा है, अध्ययन के दायरे में आता है।

भवन, भुवन, संसार :- अब बात अनुभव की। जिस तरह अध्ययन अपने आप में ज्ञानार्जन प्रक्रिया है उसी तरह अनुभव भी ज्ञानार्जन प्रक्रिया है। अनुभव बना है अनु और 'भव' के मेल से। 'भव' में 'होना' का आशय है। वह सब जो हमारे चारों ओर घट रहा है, उससे आशय है। क्या 'हो' रहा है का अर्थ है क्या घट रहा है। भवन-भुवन यानी जहाँ कुछ न कुछ हो रहा है। पृथ्वी को भू कहते हैं क्योंकि यहाँ कुछ न कुछ होता है। हिन्दी में 'होना' बेहद आम सहायक क्रिया है। कुछ घटित होने के अर्थ में होना, बोली और लिखत-पढ़त की भाषा में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला शब्द। भाषाविद्, 'होना' की रिश्तेदारी 'भवन' से मानते हैं जो भवत् का ही एक रूप है। संस्कृत 'भव' में होने का आशय है। इसीलिए भवन या भुवन वह जगह है जहाँ कुछ न कुछ विकसित हो रहा होता है। यह संसार की गति है। भुवन यानी संसार।

'हूँ', 'है', 'हो' :- हिन्दी के वर्तमानकालिक वाक्यों के अन्त में 'हूँ', 'है', 'हो' जैसी सहायक क्रियाएँ अवश्य लगती हैं। ये सभी 'हो' या 'होना' से सम्बद्ध हैं। 'भव' से ही पूरवी बोलियों का 'भया / भवा' शब्द बना है। हिन्दी में इसका रूप

'हुआ' बनता है। 'भयो' का मालवी रूपान्तर हुओ / होयो/ हुयो है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मुताबिक भवन का प्राकृत रूप 'होण' था जिसका हिन्दी रूप 'होना' है। समझा जा सकता है कि भवन> हअण > होण > होन > होना, कुछ इस क्रम में 'होना' का विकास समझ आता है। इस तरह 'अनुभव' अपने आप में प्रत्यक्ष बोध है। जो कुछ आँखें देख रही हैं, वह द्रष्टा का अनुभव है। ऐसा ज्ञान जो स्मृतिजन्य नहीं है। अध्ययन के जितने भी कोशेतर अर्थ हैं, वही सब अनुभव से भी व्यक्त होते हैं यानी ज्ञान, बोध, समझ, उपयोग, बुद्धि, परीक्षण, निरख, परिणाम, प्रभाव, असर, निष्कर्ष, उपलब्धि, संज्ञान, अनुभूति, अभ्यास आदि।

समग्रता में देखना, अनुभव करना :- अनुभव भी ज्ञान है और अध्ययन भी ज्ञान है। अनुभव और अध्ययन साथ-साथ भी चलते हैं। कई बार अध्ययन की अगली सीढ़ी अनुभव होती है। कई बार अनुभव के बाद अध्ययन का क्रम शुरू होता है। सो, ये सब बातें इन दोनों में निहित है। जानना जो पढ़ने से होता है और देखने से भी। पर्यवेक्षण यानी समग्रता में देखना, अनुभव करना। इसमें दस्तावेज़ों का अध्ययन करने से लेकर हालात को समझने तक सब बातें शामिल हैं। अनुभव और अध्ययन एक दूसरे के पर्यायी शब्द नहीं हैं पर 'मेरा अनुभव यह कहता है।' अथवा 'मेरा अध्ययन ये है कि' दोनों का आशय एक ही है। इसे यूँ भी समझा जा सकता है कि 'ऐसा मैं अपने सीमित अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ' के स्थान पर अगर 'ऐसा मैं अपने सीमित अध्ययन के आधार पर कह रहा हूँ।' कहा जाए तो भी बात एक ही है।

और अन्त में :- जिस भू पर रहते हुए हम अपने आसपास की हर शै को गतिमान देखते हैं, भला यह सम्भव है कि हम कुछ भी जान-समझ न पाएँ? जानकारी का सीमित या अधिक होना सापेक्ष बात है, पर इस संसार में-भुवन में होना ही अनुभवी होना है।

जी-37, फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

मेरे दिल, दिमाग अँगुलियों में हिंदी धड़कती है

- नीलम कुलश्रेष्ठ

जन्म - 13 जून 1952।
शिक्षा - एम.एस.सी.।
रचनाएँ - सत्रह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - अखिल भारतीय अम्बिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार।

ये बात अपने देश की बहुत दिलचस्प है कि देश में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा का सितंबर में पखवाड़ा मनाया जाता है। 14 सितम्बर, हिन्दी दिवस पर नए संकल्प लिए जाते हैं, समारोह किए जाते हैं। शायद ही किसी देश में अपनी भाषा के लिए इतनी अधिक असुरक्षा महसूस की जाती हो कि लोगों को याद दिलाना पड़ता है। ऐसा हो भी क्यों नहीं क्योंकि बहुत सी भाषाओं वाला, प्रदेशों व विभिन्न संस्कृति वाला अपना देश ही ऐसा अनोखा है। बरसों पहले मुझे एक बार एक बैंक ने हिंदी दिवस पर आमंत्रित किया था। मैंने अपनी मित्र गुजरात की प्रथम हिंदी कवयित्री मधुमालती चौकसी से कहा था, 'मुझे हिंदी दिवस ऐसा लगता है जैसे एक परिवार सारे वर्ष कोने में पड़ी अपनी माँ को दीपावली के दिन सजा-धजा कर मंदिर के सामने आरती का थाल सबसे पहले आरती करने के लिए थमा देता है। मैं बैंक में यही बोलने वाली हूँ।'

वे घबरा गईं थीं, 'ऐसा बिलकुल मत कहना, ये अशिष्टता है।'

'अशिष्टता किस बात की? हम सब सबके सामने अंग्रेजी बोलने में शान समझेंगे। अपने बच्चे अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाएँगे और हिंदी दिवस पर गंभीर मुँह बनाकर हिंदी की गौरव गाथा बखानेंगे।'

आप समझ गए होंगे, मैंने यही बोला था, जो सोचा था।

अब मेरे जैसे जिन्होंने साइंस की अंग्रेजी भाषा में पढ़ाई की है, इसे सौ प्रतिशत पराई विदेशी भाषा कैसे समझ लें? भला हो भूमंडलीकरण होने का जिसने हिंदी का बहुत प्रसार किया है, अनेक ऑनलाइन पत्रिकाएँ विदेशों से प्रकाशित हो रही हैं। ऊपर से अंग्रेजी की भी अहमियत समझा दी है।

यदि अलग-अलग प्रदेशों में घूमें तो बहुत लज्जतदार हिंदी भाषा का घालमेल सुनने को मिलता है। हिंदी बोलने के अंदाज से भी पता लग जाता है। बन्दा किस प्रदेश का है। अक्सर लोग अपने वक्तव्य में कहते हैं कि भाषा एक नदी है, जो जगह-जगह बहती हुई बहुत कुछ अपने में समेटती चलती है। यहाँ तक तो ठीक है लेकिन वड़ोदरा के विश्वविद्यालय की व्याख्याता ने तो कमाल कर दिया था। उनको मैंने एक कार्यक्रम में बोलते सुना था, 'अब आप बताइए कि मुंबई की हिंदी क्या हिंदी भाषा नहीं है जैसे कि अपुन को क्या? बोले तो क्या? मेरे को इदरची ही खड़े रहने को माँगता, तेरे को क्या?'

हे भगवान! जब किसी शुद्ध हिंदी व्याख्याता के ऐसे विचार हैं तो हिंदी का कितना और कैसे कल्याण होना है, इसके तो ऊपरवाले मालिक हैं। मैं उनसे ये पूछने में संकोच कर गई थी कि मुम्बई की ये टपोरी भाषा कोई परीक्षा में लिखे तो वे उसे कितने नंबर देंगी?

मेरी एक कमजोरी बेधड़क लिख रहीं हूँ कि मैं जब नम्बर लिखती हूँ तो कर्सर हमेशा अंग्रेजी के नम्बरों को चुनता है। अक्सर पत्रिकाओं में या पुस्तकों में नंबर अंग्रेजी में लिखे दिखाई दे जाएँगे। आप अंग्रेजी विरोधी हैं तो कहाँ-कहाँ से इसे हटाएँगे? आप आधार कार्ड की तरह अपनी आइडेंटिटी यानी कि अंग्रेजी में अपना ईमेल लिए घूम रहे हैं। जल्दी में रोमन भाषा में अंग्रेजी का सहारा लेकर सन्देश लिख रहे हैं। यहाँ तक कि अपने से छोटों से बार-बार वॉट्स एप के मेसेज के विषय में हिदायत ले रहे हैं, 'प्लीज! आप हिंदी में मेसेज मत करिए, पढ़ने में बहुत समय लग जाता है। रोमन में लिखा करिए।'

अब आप उन्हें अंग्रेजी माध्यम में पढ़ा चुके हैं। आप उन्हें मातृभाषा पर भाषण दे डालिए। आपका भाषण उनके लैपटॉप में खुले दो-चार ब्राऊजर के जाल यानी नेट में उलझकर रह जाएगा।

मैं तो हिंदी लेखिका हूँ मेरे दिल, दिमाग अँगुलियों में हिंदी धड़कती है। अपनी प्रकाशित हिंदी की रचना को देख मेरी आँखों में चमक आ जाती है लेकिन अंग्रेजी को उतना पराया नहीं समझ पाती। हालाँकि, मेरे एक प्रोफेसर कहते थे, 'हमारे देश में प्रथम श्रेणी की प्रतिभाएँ साइंस में अधिक पैदा नहीं हो पातीं क्योंकि साइंस विषयों की पुस्तकें मातृभाषा में उपलब्ध नहीं हैं।'

ये प्रयास हिंदी में धीरे-धीरे हो ही रहे हैं।

गुजरात में हिंदी की स्थिति अब कुछ सुधरी है लेकिन गुजराती व अंग्रेजी समाचार पत्र हिंदी वालों के समाचार प्रकाशित करना नहीं पसंद करते। लगभग चालीस वर्ष पहले ऐसी थी यहाँ हिंदी की स्थिति कि किसी ने मुझसे कहा था, 'धर्मयुग की एडीटर भारती हैं तो लेडी लेकिन काम बहुत अच्छा कर रहीं हैं।'

एक और सज्जन की बात सुनकर गुजरात में बसी, यू पी से आई मैं आश्चर्यचकित थी कि ऐसा बेतुका प्रश्न हिंदुस्तान के किसी कोने में पूछा जा सकता है। उन्होंने मुझसे पूछा था, 'माना कि आप अंग्रेजी में इंटर्व्यू ले लेंगी लेकिन हिंदी में लिखेगा कौन?'

अहिन्दीभाषी प्रदेशों में आज के सुधार देखकर अच्छा लगता है। केन्द्रीय स्कूल में पढ़ने वाला पोता जब स्कूल में गुड मॉर्निंग न बोलकर हरि ओम 'बोलता है। अहमदाबाद में पढ़ने वाले पोते के डी. ए. वी. स्कूल में सुबह ये बोला जाता है, 'गुड मॉर्निंग, नमस्ते।'

यही है हिंदी का भूमंडलीकरण हो गया रूप जो स्वीकार नहीं कर पा रहे, उन्हें भी खुले दिल से स्वीकार कर लेना चाहिए।

सी 6-151, ऑर्किड हारमनी,
एपलवुड्स टाउनशिप
एस.पी. रिंग रोड, शैला
शान्तिपुरा सर्कल के निकट
अहमदाबाद-380058 (गुजरात)
मो -09925534694

रचनाकारों से अनुरोध

- *मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।*
- *रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।*
- *रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।*
- *डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अतः लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।*
- *'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।*
- *आप अपनी रचनाएँ* **myakshara18@gmail.com** *पर ई-मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।*

धर्म के विषय में धर्मज्ञ ब्राह्मण ही प्रमाण हैं

- रामेश्वर मिश्र पंकज

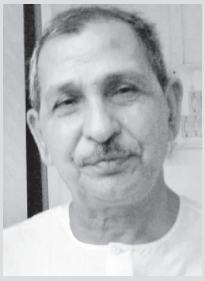

वर्तमान में निरंतर सृजनरत, रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे ख्यातिलब्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता से सहभागिता कर विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि सनातन धर्म में प्रत्येक विषय पर सांगोपांग विचार किया गया है। मनुष्य के सभी गुणों और सब प्रकार की शक्तियों का सम्यक प्रतिपादन और प्रतिष्ठा धर्मशास्त्रों में है। प्रत्येक विषय पर विवेकपूर्वक विचार कर सुसंगत व्यवस्थाएँ दी गई हैं। अन्य मजहबों आदि में किसी पद या गुणविशेष को अतिरंजित महत्व देकर शेष सब मानवीय गुणों को उनके ही नियंत्रण में सौंपने की अविवेकपूर्ण बातें मिलती हैं। सनातन धर्म में ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिए संन्यासी सर्वपूज्य हैं। क्योंकि वे वीतराग हैं और ब्रह्मचिन्तन ही उनका स्वधर्म है। अत: वे साक्षात् नारायण स्वरूप हैं। परन्तु ज्ञान और भक्ति की दृष्टि से ही वे सर्वपूज्य हैं। उनका शील सब प्रकार से वंदनीय है। परन्तु यदि वे धर्मशास्त्रों के विधिवत अध्येता नहीं हैं और गृहस्थ आश्रम सहित तीनों प्रमुख आश्रमों के विविध क्षेत्रों के विषय में संबंधित सनातन धर्मशास्त्रों का ज्ञान वे नहीं रखते, तो वे उन विषयों में प्रमाण नहीं माने जाते। क्योंकि वे उन विषयों में उदासीन तो हैं ही, जानकारी से भी रहित हैं।

अत: किसी मठ के महन्त या संन्यासी होने से धर्मविषयों में निर्णय देने की पात्रता उनमें नहीं आ जाती। केवल ऐसी स्थिति में जब धर्मज्ञ ब्राह्मणों के बीच कोई संशय हो या मतभिन्नता हो, उस समय वीतराग संन्यासी और साधु का मत सर्वमान्य होता है-उनके वीतराग होने के कारण। क्योंकि विद्वान ब्राह्मण में व्यक्तिगत आसक्ति नहीं भी हो तो भी शास्त्र संबंधी किसी व्याख्या में आसक्ति हो सकती है। अत: संन्यासी का निर्णय उस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि वह सर्वसम्मति से मान्य होता है। परन्तु धर्मविषय में धर्मसंबंधी विचार कर निर्णय देने के मूल अधिकारी धर्मज्ञ ब्राह्मण ही हैं। संन्यासी का न तो वह कार्य है और सामान्यत: वे न तो उस विषय में अधिकारी होते हैं। पादरियों आदि की नकल में कुछ लोगों ने इस विषय में वीतराग संन्यासियों के गृहस्थ और राज्य शासन संबंधी विषयों में अभिमत को केन्द्रीय महत्व देने का जो प्रयास प्रारंभ किया है, वह शास्त्र से अनुमोदित नहीं है। लौकिक विषयों में संन्यासी का सामान्यत: कोई प्रयोजन नहीं होता और अधिकार भी नहीं होता।

पांडुरंग वामन काणे जी द्वारा लिखित धर्मशास्त्र का इतिहास के प्रथम भाग में स्मृतिमुक्ताफल एवं यतिधर्मसंग्रह से ये उद्धरण दिए गए हैं -

अग्न्याधेयं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पन्च विवर्जयेत्।।
तस्यापवादमाह स एव।
यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते।
तावन्न्यासोऽग्निहोत्रं च कर्तव्यं तु कलौ युगे।।

अर्थात् अग्न्याधेय, यज्ञ में स्पर्श पूर्वक गाय को मुक्त छोड़ देना (वृषभ छोड़ने या वृषोत्सर्ग से यह भिन्न है। इसमें गायों को मुक्त छोड़ने की बात है।), संन्यास, पल-पैतृक तथा पति के नहीं रहने पर अथवा पति की अनुमति से देवर से पुत्र की उत्पत्ति-ये पाँच बातें कलि के 4400 वर्ष बीतने के बाद वर्जित हैं। परंतु इसका अपवाद भी शास्त्र में निर्दिष्ट है। जब तक समाज के एक बड़े हिस्से में वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था प्रवर्तित है और वेदों का पठन-पाठन प्रवर्तित है, तब तक यज्ञ, अग्निहोत्र एवं संन्यास कलियुग में भी कर्तव्य है।

हेमाद्रि (13वीं शताब्दी ईस्वी) ने 7 कलिवर्ज्य गिनाए हैं और कुछ अन्य विद्वानों ने (17वीं शताब्दी ईस्वी में) 26 कलिवर्ज्यों का उल्लेख किया है। इसमें मुख्य हैं-बड़े बेटे को पैतृक सम्पत्ति का अधिकांश या सम्पूर्ण देना, नियोग, औरस तथा दत्तक पुत्र को छोड़कर अन्य पुत्रों की परम्परा चलाना, विधवा विवाह, भूख की स्थिति में तीन दिन तक भूखे रहने पर शूद्रों या नीच लोगों से भी अन्न ग्रहण करना, समुद्र यात्रा, दीर्घकालीन यज्ञ सत्रों का आयोजन, कमन्डलु धारण, वानप्रस्थ आश्रम, पतित की संगति से प्राप्त अपवित्रता, वर्जित स्त्रियों के साथ रतिसंबंध रखने पर प्रायश्चित के उपरांत जाति संसर्ग, दूसरे के लिए

अपने जीवन का परित्याग, भोजन से बचे हुए पदार्थ का दान, अपने चरवाहे (गौरक्षक) या अपने दास या किसी भी वर्ण के अपने वंशानुगत मित्र अथवा किसी भी वर्ण के साझेदार के यहाँ ब्राह्मण द्वारा भोजन करना, दूर-दूर तक तीर्थों की यात्रा पर जाना, स्त्रियों द्वारा तीर्थयात्रा, विपदा की स्थिति में ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय एवं वैश्य की वृत्तियों को धारण करना, ब्राह्मणों द्वारा भविष्य के लिए धन या अन्न का संग्रह न करना, ब्राह्मणों द्वारा लगातार यात्राएँ करना, अपवित्र स्त्रियों के साथ शास्त्र से अनुमोदित सामाजिक संसर्ग की अनुमति, संन्यासी द्वारा सभी वर्णों के सदस्यों से भिक्षा लेना, ब्राह्मणों द्वारा अपने घर में शूद्र के द्वारा भोजन बनवाना, वृद्ध लोगों द्वारा आत्महत्या करना, संन्यास ग्रहण, दीर्घअवधि का ब्रह्मचर्य आदि।

परंतु इन कलिवर्ज्यों का सम्पूर्ण पालन कभी देखने को नहीं मिलता। इसका अर्थ है कि विभिन्न धर्मशास्त्रकारों ने इन कलिवर्ज्यों की उपेक्षा की अनुमति अवश्य दी होगी। क्योंकि 15 अगस्त 1947 ईस्वी तक सम्पूर्ण हिन्दू समाज में धर्मशास्त्रों के पालन पर सर्वानुमति थी। अत: इन कलिवर्ज्य की उपेक्षा तब तक असंभव है, जब तक धर्मशास्त्र में ही इस उपेक्षा की अनुमति न हो। इसी संदर्भ में हमने स्मृतिमुक्ताफल और यतिधर्मसंग्रह के श्लोकों को उद्धृत किया है। ऐसा लगता है कि जब तक वेदों के प्रति आदरपूर्ण पठन-पाठन विद्यमान है और वर्णव्यवस्था के प्रति आदरभाव विद्यमान है, तब तक ये कलिवर्ज्य उपेक्षणीय माने गए हैं। क्योंकि 18वीं शताब्दी ईस्वी तक मराठे एवं गुजराती तथा दक्षिण भारत के सभी प्रतापी हिन्दू सम्राट निरंतर समुद्र यात्रा करते रहे हैं और अत्यंत समृद्ध नौसेना रखते रहे हैं एवं भारतीय व्यापारी 20वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य तक समुद्री मार्गों से व्यापार करते रहे हैं और वे पूर्णत: धर्मनिष्ठ माने जाते रहे हैं।

20वीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध के बाद भी भारतीय व्यापारी समुद्री मार्ग से व्यापार करते रहे हैं, परंतु उसका उल्लेख इस संदर्भ में सम्यक नहीं है। क्योंकि 15 अगस्त 1947 ईस्वी के बाद तो हिन्दू धर्मशास्त्रों को वर्तमान भारतीय राज्य ने कोई विधिक मान्यता ही नहीं दे रखी है और हिन्दू धर्म को कोई वैसा राजकीय संरक्षण भी नहीं दिया है, जैसा कि विश्व के सभी राष्ट्रराज्यों में बहुसंख्यकों को प्राप्त है।

अत: धर्मशास्त्रों को समाज व्यवस्था का अंग नहीं रहने देने वाला वर्तमान भारतीय राज्य सनातन धर्म से उदासीन राज्य है और शक्तिशाली तथा सम्पन्न हिन्दुओं ने इस पर कोई प्रभावपूर्ण आपत्ति भी विगत 75 वर्षों में नहीं की है। अपितु विचित्र वाग्जाल से युक्त चर्चाएँ ही वे लोग भी इन विषयों पर करते रहे हैं। धर्मशास्त्रों को अस्वीकृत करने वाली शासन व्यवस्था के प्रति सक्षम विरोध के अभाव में वर्तमान सामाजिक कार्यों को धर्मशास्त्रों की निरंतरता में नहीं देखा जा सकता।

परंतु तीर्थयात्रा, पूजापाठ, मठ-मंदिर, यज्ञ-हवन, दान-पुण्य आदि अभी भी धर्मशास्त्रों को ही प्रमाण मानते हुए किए जाते हैं। अत: उस संदर्भ में धर्मशास्त्र ही महत्त्वपूर्ण हैं।

स्त्रियों की तीर्थयात्रा एवं अन्य प्रसंग :-स्त्रियों की तीर्थयात्रा भी कलिवर्ज्य मानी गई है। परंतु सभी धर्मज्ञ विद्वानों की उपस्थिति में और सहमति से धर्मनिष्ठ सदाचारिणी स्त्रियाँ विशाल संख्या में तीर्थयात्रा करती हैं। इससे प्रमाणित है कि यह कलिवर्ज्य धर्मज्ञ विद्वानों द्वारा मान्य नहीं किया गया है।

यहाँ यह सदा स्मरणीय है कि सार्वभौम सत्य, अहिंसा, इन्द्रियसंयम, अतिसंग्रह की वर्जना और अस्तेय जैसे यमों को और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा भगवद्भक्ति जैसे सार्वभौम नियमों को और मानवधर्म (सामान्य धर्म या साधारण धर्म) को मानने पर ही हिन्दुओं में सर्वानुमति है। शेष कर्मकांडों को लेकर व्यापक मत भिन्नता को हिन्दुओं में सहज स्वाभाविक एवं समादरणीय माना गया है। परंतु इसका अर्थ भी मनमानी या अराजकता नहीं है। इस विषय में नियम यह है कि आप हिन्दू धर्म के जिस भी सम्प्रदाय के अनुयायी हों, उसके कर्मकांडी विस्तार को और नियम-विस्तार को मानें। केवल यम-नियम और मानवधर्म यानी सामान्य धर्म के विषय में सभी को मानने की अनिवार्यता है। जो इन्हें नहीं माने, वह हिन्दुओं के किसी भी सम्प्रदाय का अंग नहीं है। कुशिक्षा के प्रभाव से चोचलिस्टों, कम्युनिस्टों और धर्मद्रोहियों को भी हिन्दू मानने का आग्रह कुछ हिन्दू संगठनों ने शुरू किया है जो केवल कुबुद्धि और धर्मशून्यता का प्रमाण है। चार्वाक मत के विषय में दो-चार श्लोकों के अतिरिक्त और कहीं कोई भी प्रमाण नहीं है और उन्हें कहीं भी धर्मनिष्ठ समाज का अंग भी नहीं माना गया है। अपितु उन्हें समाजद्रोही और धर्मद्रोही व्यक्तियों के रूप में ही वर्णित और चिह्नित किया गया है। इसलिए उस उल्लेख मात्र को धर्मसम्मत बताना उतना ही दुष्टता पूर्ण और अमान्य है, जितना कि कंस या अन्य नरपिशाचों को धर्मसम्मत बताना।

शिष्ट परिषदें एवं धर्मनिर्णय :-प्रजा को धर्मपालन में व्यवस्थित रखना और धर्मपालन में आने वाली बाधाओं को दूर करना, बाधा पहुँचाने वाले अथवा धर्म का उल्लंघन करने वालों को दंडित करना और कंटकों को शोधन करना राजा का कर्तव्य है। यह सब धर्मशास्त्रों के

अनुसार ही करना राजा का कर्तव्य है। राजा या राज्यकर्ता धर्म के रक्षक हैं। परंतु धर्म के विषय में अपने मन से निर्णय करने के अधिकारी नहीं हैं। राज्यकर्ता को धर्मशास्त्रों तथा धर्मपरम्पराओं और लोक में प्रचलित धर्ममय परम्पराओं के अनुसार ही निर्णय करना होता है। इस निर्णय में सहायता के लिए मंत्रियों की सम्मति तथा पुरोहित की सम्मति आवश्यक है। इसके साथ ही विद्वानों की एक परिषद बुलाकर राजा समय-समय पर किसी भी ऐसे विषय में, जहाँ उन्हें धर्मशास्त्रों के द्वारा निर्देशित आज्ञा का पालन करने के विषय में किंचित भी दुविधा हो या अनिश्चय हो या उस विषय में एक से अधिक मत उपस्थित हों तो परिषद के द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसार न्याय करते थे। इसीलिए सभी धर्मशास्त्रों और धर्मसूत्रों में शिष्ट परिषद के निर्माण के विषय में नियम दिए गए हैं। उपनिषदों में भी समिति और परिषद का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद एवं बृहदारण्यक उपनिषद में इनका उल्लेख है –

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पन्चालानां समितिमेयाय तं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच। कुमारानु त्वाशिषत्पियेत्यनु हि भगव इति।।

(छान्दोग्य उपनिषद, अध्याय 5 खण्ड 3 मंत्र 1)

श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः पन्चालानां परिषदमाजगाम। स आजगाम जैवलिं प्रवाहणं परिचारयमार्णं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारा 3 इति स भो 3 इति प्रतिशुश्रावानुशिष्टोऽन्वसि पित्रेत्योमिति होवाच।।

(बृहदारण्यक उपनिषद, अध्याय 6, ब्राह्मण 2, मंत्र 1)

इससे स्पष्ट है कि उपनिषद काल में भी शिष्ट परिषदों की स्थापित परम्पराएँ थीं। यहाँ पांचालों की परिषद की बात कही गई है और आगे परिषद में राजा श्वेतकेतु से प्रश्न करते हैं। यह भी वहीं कहा गया है कि राजा श्वेतकेतु के गर्व को दूर करने के लिए प्रश्न करते हैं। जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि राजा को ऐसे विद्या प्राप्त कर आए हुये ब्रह्मचारियों से भी बहुत अधिक ज्ञान रहता था और अपने ही समान या अपने से भी अधिक ज्ञानियों और विद्वानों की परिषद में शास्त्र चर्चा कर वे निर्णय करते थे।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं गौतम धर्मसूत्र में भी यह स्पष्ट कहा है कि किसी भी विषय में संदेह होने पर राजा को विद्वानों से परामर्श कर उनके बताए अनुसार ही निर्णय लेना चाहिए। राजा या राज्यकर्ता अपने मन से कोई निर्णय नहीं ले सकते। तैत्तिरीय उपनिषद में भी यही कहा है कि किसी विषय में या किसी कृत्य अथवा आचार के विषय में किसी प्रकार की आशंका होने पर विद्वान धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का ही अनुसरण करना चाहिए। बौधायन धर्मसूत्र ने परिषद और उसके कार्यों की चर्चा की है। स्पष्ट है कि ईस्वी सन् के आरंभ के कई शताब्दियों पूर्व से अर्थात् आज से हजारों वर्ष पहले से परिषदें अत्यंत शक्तिशाली होती थीं और वे सभी प्रकार के निर्णय देने में समर्थ थीं। वशिष्ठ धर्मसूत्र ने स्पष्ट कहा है कि तीनों वेदों के ज्ञाता और धर्मशास्त्रों के ज्ञाता विद्वान जो कुछ कहें वही धर्म है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने भी यही कहा है कि धर्मवेत्ता लोगों के द्वारा स्थापित परम्पराएँ ही राजा तथा प्रजा के लिए प्रमाण हैं।

धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि धर्म के तीन उपकरण हैं–वेद, स्मृति एवं शिष्टाचार। शिष्टजन ही समय-समय पर धार्मिक आचरण के स्वरूप के विषय में निर्णय के अधिकारी हैं। मनुस्मृति में 12वें अध्याय में स्पष्ट कहा है कि –

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः।। (श्लोक 108)

अर्थात् धर्म के विषय में किसी भी प्रकार का संशय होने पर शिष्ट ब्राह्मण जो कुछ कहें, वही धर्म होता है, इसमें कहीं कोई शंका नहीं है। शिष्ट के विषय में अगला श्लोक है –

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः।। (श्लोक 109)

अर्थात् जिन्होंने वेद और धर्मशास्त्र पढ़े हैं, वे वेद के तत्व को प्रत्यक्ष करने वाले ब्राह्मण ही शिष्ट कहलाते हैं अथवा वे ही शिष्ट ब्राह्मण कहलाते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति का भी यही मत है। वशिष्ठ धर्मसूत्र एवं पराशर स्मृति तथा अंगिरा स्मृति का भी यही निर्देश है। धर्मशास्त्रों के ज्ञाता विद्वानों की परिषद पवित्र और यज्ञ के सदृश्य कही गई है। बृहदारण्यक उपनिषद के चतुर्थ अध्याय के तीसरे ब्राह्मण के मंत्र के भाष्य में आदि शंकराचार्य ने लिखा है–अतएव धर्मसूक्ष्मनिर्णये परिषद्–व्यापार इन्यते। पुरुषविशेषश्चापेक्ष्यते दशावरा परिषत् त्रयो वैको वेति। (शांकरभाष्य)

अर्थात् धर्म के विषय में सूक्ष्म निर्णय करने के लिये परिषद का कार्य व्यापार (परिषद का सम्पन्न होना) आवश्यक है। यदि परिषद में दस या तीन अधिकारी विद्वान नहीं उपस्थित हों तो कम से कम एक वेदज्ञ और प्रसिद्ध ब्राह्मण का निर्णय आवश्यक है।

गौतमस्मृति ने भी परिषद में कम से कम दस व्यक्ति होने की बात कही है–चार वेदज्ञ विद्वान, एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी, एक वानप्रस्थी तथा तीन धर्मशास्त्र के ज्ञाता। वशिष्ठ धर्मसूत्र और बौधायन धर्मसूत्र का भी कहना है कि परिषद में दस व्यक्ति होने चाहिए।

यहाँ बौधायन धर्मसूत्र का यह निर्देश भी स्मरणीय है कि धर्म का स्रोत श्रुति, स्मृति एवं शिष्टजन हैं। सर्वोपरि और मूल स्रोत श्रुति यानी वेद हैं। उनके उपरांत स्मृति यानी धर्मशास्त्र हैं और फिर इनके विषय में शिष्टों का आगम अर्थात् व्यवहार परंपरा धर्म का स्रोत है। शिष्ट वे हैं जिन्होंने वेद और वेदान्त तथा इतिहास और पुराण का गहन अध्ययन कर लिया हो और जो किसी से द्वेष न करें, निरंकारी हों तथा अन्न तक का भी अधिक संग्रह नहीं करें, धन का लोभ तनिक भी न हो और मोह, क्रोध, दंभ और दर्प तथा लोभ से पूर्णत: रहित हों, उन्हें ही शिष्ट कहा जाता है –

उपदिष्टो धर्म: प्रति वेदम्।
तस्याऽनु व्याख्यास्याम:।
स्मार्तो द्वितीय:। तृतीय: शिष्टागम:।
शिष्टा: खलु विगतमत्सरा: निरहङ्.कारा: कुम्भीधान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिता:।।

(बौधायन धर्मसूत्र, प्रश्न 1, अध्याय 1, खण्ड 1, सूत्र 1 से 5)

गौतम धर्मसूत्र का भी यही कहना है कि यदि तीन विद्वान न पाए जा सकें तो विशिष्ट गुणों से सम्पन्न एक ही विद्वान पर्याप्त है। अंगिरा स्मृति का कहना है कि –

वृतीनां सत्यतपसां ज्ञानविज्ञानचेतसाम्।
शिरोव्रतेन स्नातानामेकोपि परिषद भवेत्।।

(धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, चतुर्थ संस्करण में पृ. 505 पर उद्धृत)

अर्थात् श्रेष्ठ संन्यासी एक भी हो तो वह परिषद का रूप ले सकता है। उसका निर्णय ही परिषद का निर्णय होगा।

यहाँ संन्यासी का उल्लेख है। जबकि अधिकांशत: परिषद में संन्यासी का नहीं अपितु ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम के प्रतिनिधि ब्राह्मणों का उल्लेख है। ऐसा लगता है कि तीनों आश्रमों में पर्याप्त योग्य प्रतिनिधि सदा नहीं मिलने के कारण संन्यासी का भी विकल्प दिया गया है। क्योंकि संन्यासी तो सर्वपूज्य हैं ही और सर्वस्व त्यागकर अपना श्राद्ध स्वयं सम्पन्न कर संन्यासी बने हुए धर्मनिष्ठ तपस्वी के निष्पक्ष निर्णय में कोई शंका नहीं होती।

इस विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति के अध्याय 3 के 300 वें श्लोक में कहा गया है कि छोटे-छोटे दोषों के लिए तो एक या कुछ एक विद्वानों का प्रायश्चित्त निर्णय पर्याप्त है। परंतु अगर महापातक हुआ है तो अनेक विद्वानों की परिषद द्वारा ही निर्णय लिया जाना उचित है। देवल स्मृति का तो कथन है कि सामान्य पापों के लिए ब्राह्मणों द्वारा दिया गया निर्णय पर्याप्त है और उन पापों की बात राजा या राज्य के सम्मुख जाए यह अपेक्षित नहीं है। किन्तु अगर महापातक है तो राजा ब्राह्मणों की मंडली से परामर्श के उपरांत निर्णय देते हैं। यही परंपरा है। पराशर का कहना है कि न तो ब्राह्मणों को राजा की जानकारी के बिना या राजाज्ञा के बिना किसी प्रायश्चित्त का निर्णय देना चाहिए और न ही राजा को विद्वान ब्राह्मणों की सहमति के बिना किसी निर्णय की घोषणा करना चाहिए। अन्यथा राजा को सौ गुना पाप लगता है। यह भी कहा है कि यदि कोई व्यक्ति परिषद के सम्मुख आता है और अपने सामान्य पापों का कथन करता है तो परिषद को उसे उचित प्रायश्चित सुझाकर संतुष्ट करके ही भेजना चाहिए। परिषद के समक्ष पाप निवेदन करके, परिषद के द्वारा बताए गए प्रायश्चित को करके व्यक्ति शुद्ध हो जाता है परंतु महापातकों के विषय में राजाज्ञा का उद्घोष आवश्यक है।

संन्यासी और शिष्ट परिषद :-धर्मशास्त्रों में शिष्ट परिषद के जो नियम हैं, उनमें विद्वान, ब्राह्मण तथा तीनों आश्रमों के प्रतिनिधि की उपस्थिति में राज्यकर्ता द्वारा निर्णय लिए जाने का ही प्रावधान है। अंगिरा स्मृति में अन्य विकल्पों के अभाव में संन्यासी का निर्णय मान्य किया है। परंतु हजारों वर्षों तक शिष्ट परिषदों में विद्वान और तीन आश्रमों के प्रतिनिधि ही होते रहे हैं। सन्यासियों के परिषद में होने का कोई प्राचीन प्रमाण नहीं मिलता। मराठा इतिहास में अवश्य यह विवरण मिलता है कि धार्मिक मामलों में ब्राह्मणों की सम्मति तो ली ही जाती थी, पर कभी-कभी संकेश्वर मठ और करवीर मठ की गद्दियों के शंकराचार्य से भी राय ली जाती थी। पहली बार ब्रिटिश प्रभाव वाले प्रशासन में शंकराचार्यों ने धार्मिक मामलों में सम्मति देने की विशेष पहल की। उस अवधि की शंकराचार्य की गद्दी द्वारा जारी कतिपय आज्ञाएँ अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। परंतु शिष्ट परिषद में संन्यासियों की उपस्थिति का सामान्यत: अनुरोध नहीं किया जाता था। क्योंकि संन्यासी सामान्यत: सामाजिक जीवन के व्यवहारिक पक्ष से असम्पृक्त होते हैं। इसलिए उन्हें इस विषय में कष्ट नहीं दिया जाता। परंतु यदि कोई विशेष स्थिति हा गई तो धर्मज्ञ और पूर्ण वीतराग संन्यासी का मत निश्चय ही सर्वमान्य होगा। यह भारत में मान्य है। **(क्रमश:)**

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

महाराज उशीनर और महर्षि अष्टावक्र की कथाएँ

– कुसुमलता केडिया

*इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त '*महाराज उशीनर और महर्षि अष्टावक्र की कथाएँ*' पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।*

– सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म – 2 जुलाई 1954।
जन्म स्थान – पडरौना (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

महर्षि लोमश ने युधिष्ठिर को वनवास में सरस्वती नदी में स्नान करने का आदेश दिया। उन्होंने बताया कि यह पुण्यसलिला है और इसमें स्नान करने से मनुष्य पूर्णत: निष्पाप हो जाता है। प्राचीन काल में प्रजापति दक्ष ने यज्ञ करते समय यह आशीर्वाद दिया था कि अगर कोई व्यक्ति सरस्वती के तट पर या जल में मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह निश्चित ही स्वर्गलोक जाएगा। आप इस पवित्र नदी में स्नान कीजिए और फिर मैं आपको भारतवर्ष के पुण्यात्माओं और महर्षियों की विश्वविख्यात गाथाएँ सुनाऊँगा। जिन्हें सुनकर आप स्वयं पवित्र हो जाएँगे और दिव्य लोकों के अधिकारी हो जाएँगे।

महर्षि लोमश की आज्ञा मानकर युधिष्ठिर ने पुण्यसलिला सरस्वती में श्रद्धापूर्वक स्नान किया और फिर हाथ जोड़कर महर्षि के सामने खड़े हुए तथा आज्ञा पाकर सामने ही बैठ गए। इस पर महर्षि लोमश ने दो विश्वविख्यात आख्यान युधिष्ठिर को सुनाए– महाराज उशीनर की कथा तथा महर्षि अष्टावक्र की कथा। इन कथाओं का प्रयोजन परमपवित्र, पुण्यात्मा, ज्ञानी और दानी पूर्वजों की गाथा सुनाकर युधिष्ठिर को भारतवर्ष के गौरवशाली इतिहास का ज्ञान देना था।

महर्षि लोमश ने कहा कि हे भारत, इसी पवित्र नदी के तट पर चमसोद्भेदतीर्थ में भगवती लोपामुद्रा ने अपने पति अगस्त मुनि का वरण किया था। यहाँ अनेक तीर्थ हैं। इसी के उत्तर में मानसरोवर है जो भगवान परशुराम के आश्रम से पवित्र है। सरस्वती से कुछ दूर पर पवित्र वितस्ता नदी है और पवित्र यमुना नदी है। यमुना नदी के तट पर सम्राट उशीनर ने अनेक यज्ञ किए थे और उच्च लोकों की प्राप्ति की थी। सम्राट उशीनर के महत्व को समझने के लिए स्वयं इन्द्र और अग्नि उनकी राजसभा में गए। इन्द्र ने बाज पक्षी का स्वरूप धारण कर लिया और अग्नि ने कबूतर का। कबूतर रूपधारी अग्नि महाराज उशीनर की गोद में जा छिपा। तब बाज रूपधारी इन्द्र ने महाराज से कहा कि महाराज यह कबूतर मेरा नियत आहार है। आप यश के लोभ से इसकी रक्षा न करें। क्योंकि यह मेरा भोज्य है।

इस पर सम्राट उशीनर ने कहा कि यह कबूतर मुझसे अपनी

रक्षा चाहता है। अत: मैं तुम्हें इसे नहीं दे सकता। बहुत सारे तर्क-वितर्क के बाद तथा कबूतर के विकल्प में बहुत ही उच्च स्तरीय प्रस्ताव देने के बाद भी बाज राजी नहीं हुआ। अंत में बाज ने कहा कि यदि आप इसे इतना स्नेह करते हैं तो मैं एक शर्त पर इसे छोड़ सकता हूँ। आप अपना माँस काटकर तराजू में एक ओर रखिए और दूसरी ओर इस कबूतर को रखिए। जब कबूतर के बराबर का भार आपके माँस का हो जाएगा तो मैं वह माँस खाकर तृप्त हो जाऊँगा।

सम्राट उशीनर इसके लिए सहर्ष तैयार हो गए और अपना माँस स्वयं काट-काट कर तराजू के दूसरे पलड़े में रखने लगे, पहले पलड़े में कबूतर को रख दिया। परंतु बार-बार माँस काटकर रखते जाने पर भी पलड़ा कबूतर के बराबर नहीं हुआ। तब महाराज स्वयं तराजू पर बैठ गए और कहा कि मुझे सम्पूर्णत: खा लो। इतना करते ही इन्द्र प्रकट हो गए और उन्होंने कहा कि हम अर्थात् मैं और कबूतर रूपधारी अग्निदेव आपकी परीक्षा लेने के लिए बाज और कबूतर बनकर आए थे। हे राजन आपने जो अपने ही अंगों से माँस काटकर इस प्रकार दीन शरणागत की रक्षा की, उसके कारण आपकी कीर्ति सदा सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त रहेगी और लोग युगों तक आपका यश गाकर प्रेरणा प्राप्त करेंगे। इतना आशीर्वाद देकर इन्द्र देवलोक चले गए और अग्निदेव पुन: सूक्ष्म एवं दिव्य रूप में अदृश्य हो गए। लोमश के कहने पर युधिष्ठिर ने राजा लोमश के आश्रम का दर्शन और वंदन किया।

इसके बाद महर्षि लोमश ने महर्षि अष्टावक्र की कथा सुनाई। विप्रवर कहो? महर्षि उद्दालक के शिष्य थे और बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा करते थे। उनकी प्रतिभा और विनय से प्रभावित होकर महर्षि उद्दालक ने सम्पूर्ण वेदशास्त्रों का ज्ञान उन्हें कराया और फिर अपनी पुत्री सुजाता का विवाह उनसे कर दिया।

कुछ समय बाद सुजाता गर्भवती हुई और उनके गर्भ में एक परम तेजस्वी जीवात्मा पलने लगी। वह जीवात्मा जितनी तेजस्वी थी उतनी ही वाग्बल से सम्पन्न हुई थी। एक दिन जब ऋषि कहोड़ स्वाध्याय में लगे थे तो तेजस्वी गर्भ ने उन्हें टोक दिया- 'पिताजी, वेदों के उच्चारण में आपसे अशुद्धि हो रही है।' शिष्यों के बीच पढ़ा रहे कहोड़ को सहसा क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि 'अरे, गर्भ में रहकर भी तू इतना टेढ़ा बोल रहा है? जा तू आठों अंगों से टेढ़ा हो जाएगा।'

जब जीवात्मा गर्भ में बढ़ रहा था और प्रसवकाल निकट आ रहा था, तो सुजाता ने कहा कि प्रसवकाल निकट आ रहा है और हमारे पास बिल्कुल धन नहीं है। अत: आप कुछ कीजिए। इस पर कहोड़ राजा जनक की राजसभा में गए परंतु वहाँ के राजपंडित से शास्त्रार्थ में पराजित हो गए और शर्त के अनुसार पंडित ने उन्हें बंदी बनवाकर जल में डुबा दिया।

कहोड़ के शापवश अष्टावक्र टेढ़े होकर ही पैदा हुए। इसीलिए उनकी प्रसिद्धि अष्टावक्र के नाम से हुई। माँ ने बेटे को पिता के साथ हुई घटना के विषय में नहीं बताया। अष्टावक्र श्वेतकेतु के साथ ही महर्षि उद्दालक की गोद में बैठ जाते थे और उन्हें ही पितातुल्य मानते थे। परंतु एक दिन जब अष्टावक्र उद्दालक की गोद में बैठे थे तो श्वेतकेतु ने हाथ पकड़ कर उन्हें वहाँ से हटा दिया और कहा कि 'यह तुम्हारे पिताजी की गोद नहीं है, यह मेरे पिताजी की गोद है।'

इस पर अष्टावक्र अत्यन्त दुखी होकर माँ के पास पहुँचे और आग्रह किया कि मुझे मेरे पिताजी के बारे में बताइए। क्योंकि उद्दालक जी तो मेरे पिता नहीं हैं। तब घबराकर सुजाता ने बताया कि उद्दालक मेरे पिताजी हैं और तेरे नाना हैं और यह श्वेतकेतु तुम्हारा समवयस्क है और मेरा भाई है अत: तुम्हारा मामा है।

पुनः अष्टावक्र ने पिताजी के बारे में जानना चाहा। तो सुजाता ने सत्य बता दिया।

कुछ समय बाद अष्टावक्र ज्ञान सम्पन्न कर विदेह राज की सभा में पहुँचे। परंतु उन्हें राजद्वार में रोक दिया गया। क्योंकि उसी समय राजा द्वार से प्रवेश करने वाले थे। परंतु राजा ने यह कहकर अष्टावक्र को पहले जाने का निर्देश दिया कि ब्राह्मण भले आयु में छोटे हों परंतु वे राजा से भी बढ़कर हैं। अतः उन्हें पहले मार्ग दिया जाना चाहिए।

परंतु द्वारपाल परम राजभक्त था और उसने पुनः तर्क किया कि राजसभा में तो केवल विद्वानों का प्रवेश होता है। दसवर्षीय बालक का प्रवेश नहीं हो सकता। इस पर अष्टावक्र ने कहा कि अध्येता की आयु नहीं, अध्ययन का स्तर देखा जाता है।

तर्क के बाद द्वारपाल ने अष्टावक्र को राजसभा में जाने की अनुमति दे दी। परंतु पीछे ही बैठने को कहा। अष्टावक्र उतनी दूरी पर जाकर खड़े हुए जहाँ से राजा जनक को उनकी वाणी सुनाई पड़े। उन्होंने महाराज की प्रशंसा की और फिर कहा कि हमने सुना है कि आपके यहाँ कोई प्रसिद्ध पंडित हैं, मैं उनसे शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ।

महाराज जनक ने कहा-'ब्राह्मणकुमार, अपने प्रतिपक्षी की शक्ति जाने बिना इस तरह शास्त्रार्थ की चुनौती नहीं देनी चाहिए। क्योंकि पूर्व में बहुत से ब्राह्मण इनसे पराजित हो चुके हैं।' परंतु ब्राह्मण कुमार अष्टावक्र ने आग्रह जारी रखा। इस पर परीक्षा लेने के लिये महाराज जनक ने कहा कि कृपया बताये कि 30 अवयव, 12 अंश, 24 पर्व और 360 अरों वाला पदार्थ क्या है?

अष्टावक्र ने कहा-'12 अमावस्याएँ और 12 पूर्णिमा, इन्हें मिलाकर 24 पर्व होते हैं। संवत्सर में 12 मास होते हैं जो उसके 12 अंश हैं। 6 ऋतुएँ उसकी नाभि हैं और 360 दिन ही उसके 360 अरें हैं। यह निरन्तर गतिशील संवत्सर चक्र ही वह पदार्थ है।'

संतुष्ट राजा ने अगला प्रश्न किया-'सोते समय कौन नेत्र नहीं मूँदता? जन्म लेने के बाद किसमें गत नहीं होती? किसके हृदय नहीं होता? और कौन वेग से बढ़ता है?'

अष्टावक्र ने उत्तर दिया-'मछली सोते समय भी आँख नहीं मूँदती। अंडा उत्पन्न होता है परंतु उसमें गति नहीं होती। पाषाण में भी जीवन है परंतु उसके हृदय नहीं होता और नदी वेग से बढ़ती है।'

इससे प्रसन्न होकर महाराज जनक ने अष्टावक्र को राजसभा में शास्त्रार्थ की अनुमति दे दी। राजपंडित और अष्टावक्र का बहुत लंबा शास्त्रार्थ चला जो स्वयं में ज्ञान का कोष ही है। जिसका वर्णन अगले लेख में किया जाएगा।

अंत में अष्टावक्र की विजय हुई और पराजित राजपंडित को जल में डुबो देने का निर्णय हुआ। तब राजपंडित ने बताया कि मैं स्वयं वरुण का पुत्र हूँ और इसलिए मैं जल में नहीं डूबूँगा। परंतु मुझे अपनी पराजय सहर्ष स्वीकार है और मैं पिताजी से अनुरोध करके अष्टावक्र के पूज्य पिता कहोड़ सहित अब तक डुबाए गए समस्त ब्राह्मणों को जीवित प्रकट कराता हूँ। उसकी प्रार्थना पर वरुण ने सबको प्रस्तुत कर दिया।

पिता कहोड़ ने पुत्र अष्टावक्र को बहुत आशीर्वाद दिया। अष्टावक्र और राजपंडित में हुई महत्त्वपूर्ण ज्ञानचर्चा पर प्रकाश अगले अंक में। **(क्रमशः)**

ए-142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462036 (म.प्र.)
मो.-8989931954

असमानता से लड़ें और विविधता और समावेशन को बढ़ावा दें

मूल - रूथ जे सिमंस
अनु. - विभा खरे

शिक्षा - एम.एच.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।
विशेष - अनुवाद में विशेष कार्य ।

प्रेयरी व्यू ए एंड एम यूनिवर्सिटी के अध्यक्ष ब्राउन यूनिवर्सिटी और स्मिथ कॉलेज के पूर्व अध्यक्ष ने 2021 में हारवर्ड के स्नातकों से असमानता से लड़ने और विविधता और समावेशन को बढ़ावा देने का आह्वान किया।

रूथ जीन स्टबलफ़ील्ड : रूथ सिमंस 3 जुलाई, 1945 को जन्मी एक अमेरिकी प्रोफेसर और अकादमिक प्रशासक हैं। सिमंस ने 2017 से 2023 तक प्रेयरी व्यू ए एंड एम यूनिवर्सिटी, एचबीसीयू (हिस्टोरिकली ब्लैक यूनिवर्सिटीज HBCUs) के आठवें अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। 2001 से 2012 तक, उन्होंने ब्राउन यूनिवर्सिटी के 18 वें अध्यक्ष के रूप में कार्य किया, जहाँ वह आइवी लीग संस्थान की पहली अफ्रीकी अमेरिकी अध्यक्ष थीं। ब्राउन यूनिवर्सिटी से पहले, उन्होंने 1995 में शुरू हुए स्मिथ कॉलेज, सेवन सिस्टर्स में से एक और संयुक्त राज्य अमेरिका के सबसे बड़े महिला कॉलेज का नेतृत्व किया। वहाँ, उनकी अध्यक्षता के दौरान, इंजीनियरिंग में पहला मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम एक महिला कॉलेज में शुरू किया गया था।

रोमंस (लैटिन या नव-लैटिन भाषाएँ) भाषाओं में साहित्य की प्रोफेसर, सिमंस को 2017 में सेवानिवृत्ति से बाद अपने गृह राज्य टेक्सास में प्रेयरी व्यू के प्रमुख के रूप में बुलाया गया था, जहाँ उन्होंने छात्रवृत्ति और फंडिंग में वृद्धि की थी। उन्होंने 2023 में वह पद छोड़ दिया। वह अमेरिकन एकेडमी ऑफ आर्ट्स एंड साइंसेज, अमेरिकन फिलॉसॉफिकल सोसाइटी (1997) की फेलो, सेल्विन कॉलेज, कैम्ब्रिज की मानद फेलो और फ्रेंच लीजन ऑफ ऑनर की शेवेलियर (सरदार) रह चुकी हैं।
फरवरी 2023 में, सीमन्स ने ऐतिहासिक रूप से काले विश्वविद्यालयों (एचबीसीयू) के साथ संबंधों के संबंध में हार्वर्ड विश्वविद्यालय को सलाह देने की योजना की घोषणा की। 2023 तक, सिमंस राइस विश्वविद्यालय में राष्ट्रपति की प्रतिष्ठित फेलो भी हैं। (साभार)

प्रस्तुत भाषण उन्होंने 2021 की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी कक्षा के लिए दिया-

'2021 की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी कक्षा के लिए शुभ दिन और बधाई! इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर आपको संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया जाना एक अनोखा सम्मान है। आज अपनी पढ़ाई पूरी करने वाले सभी लोगों को मैं अपनी शुभकामनाएँ देती हूँ क्योंकि आप अपने जीवन के अगले रोमांचक चरण में प्रवेश करेंगे। ऐसे समय में आप इतनी अच्छी तरह से सफल हुए हैं, यह सराहनीय है और आने वाले वर्षों के लिए शुभ संकेत है जब दुनिया आपके ज्ञान, आपकी समझ और आपसे कम भाग्यशाली लोगों के लिए आपकी सहानुभूति पर बहुत भरोसा करेगी।

जब पहली बार इस आरंभिक भाषण को देने के बारे में मुझसे संपर्क किया गया, तो मैं, सच कहूँ तो, अचंभित रह गई। मेरा इस काम में तुरंत मन नहीं लगा। उन अवसरों को याद करते हुए जब मैं टेरसेंटेनरी थिएटर (1) में बैठकर विडेनर लाइब्रेरी की सीढ़ियों तक ग्रेजुएट्स स्नातकों के विस्तार को देख रही थी, मैं उस मंच से खुद को आत्मविश्वास से टिप्पणी करते हुए कल्पना नहीं कर सकी, जहाँ इतने सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति खड़े थे और जिन्होंने वास्तव में इतिहास बनाया था। लगातार जिम क्रो (2) आहार पर बढ़ते हुए, जो मेरी हीनता का दावा करती थी, कि मैं हमेशा वही छोटी काली लड़की हूँ जो अपनी योग्यता पर विश्वास करने और उसे साबित करने की कोशिश करती है। इसके अलावा, मैंने इस चुनौती के बारे में सोचा कि मैं ऐसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय क्षण में क्या योगदान दे सकती हूँ जब सामाजिक लाभ नुकसान की तरह अधिक प्रतीत होते हैं, जब स्पष्टता इतनी आसानी से भ्रम को रास्ता दे देती है, और जब बहुत अधिक प्रगति का आभास एक ट्रॉम लॉयल (3) की तरह हो जाता है जो कभी असली नहीं हुआ था।

मैं हमारे 145 साल पुराने संस्थान, प्रेयरी व्यू ए एंड एम यूनिवर्सिटी के संकाय, प्रशासन और छात्रों को शुभकामनाएँ देती हूँ। और, हालाँकि मुझे ऐसा करने के लिए नियुक्त नहीं किया गया है, मैं काले और अल्पसंख्यकों की सेवा करने वाले ऐतिहासिक संस्थानों

के समूह (एचबीसीयू) से शुभकामनाएँ भी लाती हूँ जिनके पास विश्व के कई समुदायों के लिए पहुँच, समानता और अवसर को आगे बढ़ाने का दायित्व और विशेषाधिकार है।

हमारा विश्वविद्यालय, कई अन्य एचबीसीयू की तरह, पुनर्निर्माण के अंत में स्थापित किया गया था जब अश्वेतों को उच्चतम स्तर का शैक्षणिक अध्ययन करने में असमर्थ माना जाता था। वास्तव में, मैं आपसे प्रेयरी व्यू परिसर से बात कर रही हूँ, जिसकी 1500 एकड़ जमीन कभी अल्टा विस्टा प्लांटेशन **(4)** की जगह थी। वह बागान, टेक्सास राज्य को बेचे जाने से पहले, वह स्थान था जहाँ 400 मनुष्यों को गुलामी में रखा गया था। इस प्रकार, जब हमारे कदम प्रतिदिन हमारे पूर्वजों की पीड़ा के अवशेषों पर चलते हैं, तो वे पूर्ण नागरिक के रूप में अपना कर्तव्य निभाने के लिए हमारा निरंतर आह्वान करते हैं। ऐसी यादें जितनी दर्दनाक होती हैं, वे एक शक्तिशाली ताकत होती हैं जो चुनौतियाँ का सामना करने के लिए हमें आवाज देती हैं।

हमारी 1876 की स्थापना के बाद के 145 वर्षों के दौरान, हमारे देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों को अश्वेतों तक पहुँच प्रदान करने में कई वर्ष लगेंगे। इसलिए, सीमित संसाधनों के साथ डिजाइन किए गए प्रेयरी व्यू जैसे विश्वविद्यालयों ने उन छात्रों को प्रवेश देकर, जिनके लिए स्वतंत्रता के फल तक पहुँच जानबूझकर अवरुद्ध कर दी गई थी, राज्य और राष्ट्र की सेवा की।

इसलिए हमें अपनी सहनशक्ति की विरासत पर गर्व है और इस तथ्य पर भी गर्व है कि हमने अफ्रीकी अमेरिकियों की हीनता के दावे को मानवीय क्षमता की जीत में बदल दिया। अन्य एचबीसीयू की तरह, हमने अपमान के बजाय सशक्त बनाने, उन्हें कैद करने के बजाय खुले दिमाग रखने, अवसर को दबाने के बजाय वादा करने के रास्ते बनाने के लिए जगह बनाई।

प्रत्येक सच्चे विश्वविद्यालय का कार्य यही है। आप में से जो लोग आज स्नातक हो रहे हैं वे इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित कर सकते हैं। जब आप पहली बार स्नातक या स्नातकोत्तर छात्रों के रूप में हार्वर्ड पहुँचे थे, तो संभवत: आपने उन कई तरीकों की कल्पना नहीं की होगी जिनसे आपकी क्षमता का परीक्षण किया जाएगा, आपकी अंतर्दृष्टि को तेज और विस्तारित किया जाएगा, और इस विश्वविद्यालय में अध्ययन करने से जीवन में आपकी संभावनाओं में सुधार होगा। जब मैं हार्वर्ड पहुँची तो निश्चित रूप से मैंने ऐसे परिणामों की उम्मीद नहीं की थी और फिर भी अब मुझे पता है कि ऐसा मुख्य रूप से इसलिए हुआ है क्योंकि मैंने हार्वर्ड में अध्ययन किया है और मुझे बहुत समृद्ध और संतोषजनक करियर मिला है जिसका मैंने इतने वर्षों तक आनंद लिया है।

ह्यूस्टन में एक पृथक प्रकार के पालन-पोषण और एचबीसीयू में स्नातक अध्ययन के परिणामस्वरुप, मुझे यह कहते हुए शर्म आ रही है कि अपनी युवावस्था में, मैंने गुप्त रूप से उस समय की प्रचलित नस्लीय धारणाओं को अपना लिया था-इतना कि मेरे जैसा कोई व्यक्ति हार्वर्ड जैसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में अध्ययन से लाभ उठाने और योगदान देने के लिए तैयार नहीं था। मुझे आशा थी कि मैं संपन्न और शहरी छात्रों की संगति में जिनके पास सर्वोत्तम शिक्षा और ढेर सारे अनुभवों का लाभ है, रहने में सफल नहीं हो पाऊँगा। हालाँकि मैं बाहरी तौर पर अपने जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा में असफल होने के डर से अस्थिर नहीं था, लेकिन अंदर से मैं भयभीत था कि मैं सफल नहीं हो पाऊँगा। विश्वविद्यालय में मेरे शुरुआती दिन अनिश्चितता और बेचैनी से भरे थे।

आप देखिए, हार्वर्ड एक ऐसी जगह थी जो अन्य लोगों की परंपराओं से भरी हुई थी-ऐसी परंपराएँ जिन तक मैं आसानी से नहीं पहुँच सकती थी। मेरी प्रतिक्रिया काफी हद तक विंडो शॉपिंग को दर्शाने वाली फ्रांसीसी अभिव्यक्ति के समान थी-'लेचर लेस विट्रिन्स' **(5)** हममें से जो लोग बाहरी हैं, वे अक्सर खिड़कियों से देखने वाले, लार टपकाने वाले और आश्चर्य करने वाले मात्र दर्शक होते हैं कि क्या हम कभी समावेश, स्वीकृति और सम्मान की भावना प्राप्त कर पाएँगे। ठीक उसी तरह जब, एक बच्चे के रूप में, मुझे श्वेत प्रतिष्ठानों से प्रतिबंधित कर दिया गया था, मैंने खुद को एक बाहरी व्यक्ति के रूप में पहचाना जो दूसरों को ईर्ष्या से देखता था, जिनके पास न केवल हार्वर्ड के इतिहास और परंपराओं तक पूरी पहुँच थी, बल्कि जो आसानी से उनमें खुद को प्रतिबिंबित होते हुए भी देख सकते थे। उस समय हार्वर्ड में जो कुछ चीजें मैं देख सकी, वे मेरा प्रतिनिधित्व करती थीं। शायद यह उस भावना की स्मृति है जिसने मुझे विश्वविद्यालय जीवन में बने रहने के लिए प्रेरित किया ताकि उन लोगों के लिए इस अनुभव को आसान बनाया जा सके जो बहिष्कृत महसूस करते थे।

विश्वविद्यालयों को इस बारे में अधिक जागरूक बनाने की आवश्यकता है कि पहली पीढ़ी और वंचित समुदायों ने कई विश्वविद्यालयों में अपमानजनक परंपरा पर कैसे प्रतिक्रिया दी, जिससे शिक्षार्थियों के रूप में पूरी तरह से गले लगाए जाने और सम्मानित महसूस करने वाले व्यक्तियों के महत्व के बारे में मेरा दृढ़ विश्वास बना, जो एक असमान समाज में अनिवार्य रूप से उत्पन्न होने वाले अपमान के अवशेषों को मिटा देता है। प्रोफाइलिंग और नस्लीय रूप से अलग-थलग होने और इतने सालों तक उस वाक्य का भार अपने भीतर रखने के बाद, मैं समझ गयी कि अपने देश को बदलने के लिए, हमें इस बात पर जोर देना होगा कि हर किसी की मानवता, हर किसी की परंपराएँ और इतिहास, हर किसी की पहचान हमें दुनिया के बारे में यह सीखने में योगदान दे कि हमें एक साथ रहना चाहिए। मुझे उस बात पर विश्वास हो गया जो हार्वर्ड ने अपने प्रवेश दर्शन में व्यक्त की थी, कि इस तरह के मानवीय विभिन्नताएँ, जो जानबूझकर शैक्षिक संदर्भ में शामिल किए गए, हमारे बौद्धिक विकास के लिए उतने ही संसाधन हैं जितने कि शानदार कब्रें, पुस्तकालयों का निर्माण जिन्हें हम संरक्षित करने के लिए और अत्याधुनिक उपकरणों को हमारी प्रयोगशालाओं में गर्व से रखा गया है। विभिन्नताओं से सामना बहुत सही है!

मेरा मानना है कि उस अंतर के बारे में सीखना और उसे अपनाना हममें से प्रत्येक का गंभीर दायित्व है। इस उपक्रम में एक महीना या एक साल नहीं बल्कि जीवन भर की ठोस कार्रवाई लगती है कि हम जिस दुनिया में एक साथ रहते हैं, उसकी देखभाल करने और उसे बेहतर बनाने में हम भूमिका निभाने के लिए तैयार हैं। इस जिम्मेदारी से हमें प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि पहुँच, समानता और आपसी सम्मान को आगे बढ़ाने में अपनी व्यक्तिगत और पेशेवर भूमिका के लिए हम प्रतिबद्ध होंगे।

इस प्रकार, मेरा मानना है कि एक महान विश्वविद्यालय का कार्य केवल प्रतिभाशाली दिमागों की क्षमता और सहनशक्ति का परीक्षण करना नहीं है, बल्कि उन्हें ज्ञानोदय की ओर मार्गदर्शन करना है, जिससे उनके छात्रों की बुद्धि और मानवता का सबसे अधिक फलदायी और समग्र उपयोग हो सके। यह ज्ञान छात्रों के स्व-ज्ञान में सुधार करने की आवश्यकता का सुझाव देता है, लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि उन्हें दूसरों का निष्पक्ष मूल्यांकन करने में मदद करना (उनकी सहानुभूति और बुद्धिमत्ता का पूरा उपयोग करके)। पृष्ठभूमि, अनुभव और दृष्टिकोण की भिन्नताओं से समृद्ध वातावरण में, इन भिन्नताओं के मेल से सीखना तीव्र और बहुत तीव्र होता है। जो लोग इस सीखने के अवसर की शक्ति से पूरी तरह से लाभ उठाने के लिए पर्याप्त खुले दिमाग वाले हैं वे भ्रम और विभाजन के इस समय में नेतृत्व के लिए बाध्य हैं। हार्वर्ड मॉडल जानबूझकर और सफलतापूर्वक छात्रों को यह समझने में एक शुरुआत प्रदान करता है कि मतभेदों को एक अधिक जटिल वास्तविकता में कैसे मध्यस्थ किया जाए जहाँ कुछ लोग भ्रष्ट उद्देश्यों के लिए उन मतभेदों का फायदा उठाते हैं।

आज, चिह्नित समूहों के प्रति अतार्किक नफरत बढ़ती जा रही है, जिसे अवसरवादी अपने लिए और अपने मुनाफ़े के लिए बढ़ावा दे रहे हैं। ऐसे दुष्टों और हमारे सामान्य उद्देश्य के विनाश के बीच जो खड़ा है वह आप जैसे लोग हैं, जो विभिन्नताओं / मतभेदों के माध्यम से सीखने का अनुभव रखते हैं, साहसपूर्वक उन लोगों के अधिकारों के लिए खड़े होते हैं जिन्हें लक्षित किया जाता है। आपकी हार्वर्ड शिक्षा, यदि आप यहाँ पूरा ध्यान दे रहे थे, तो उसे आपको ऐसी भूमिका निभाने के लिए स्वेच्छा से प्रतिबद्ध होने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए था। यदि आप इस प्रतिबद्धता का पालन करते हैं, तो जीवन में जो कुछ भी आप हासिल करते हैं उसके अलावा, आप जीवन बचा रहे होंगे, नफरत के प्रवाह को रोक रहे होंगे और हमारे राष्ट्रीय बंधन को विगलित कर रहे होंगे। आप न्याय के महान उद्देश्य की सेवा करेंगे। यदि हमें इस क्षेत्र में आगे बढ़ना है जिसे हम साझा करते हैं, तो हमारे स्कूलों और विश्वविद्यालयों को दूसरों के साथ सार्थक बातचीत करने के तरीकों के बारे में हमारी समझ को बढ़ाने में विचारपूर्वक योगदान देना चाहिए।

हार्वर्ड, कुछ मायनों में, देश का सबसे शक्तिशाली विश्वविद्यालय है। इसने वह दर्जा केवल अपनी उम्र और धन के माध्यम से हासिल नहीं किया; इसने मुख्य रूप से अपने संकाय और स्नातकों के विद्वतापूर्ण और पेशेवर प्रयासों के माध्यम से यह दर्जा प्राप्त किया। इसके द्वार से अपार बुद्धिमत्ता और जोशीले उद्देश्य वाले विद्वानों की पीढ़ियाँ आई हैं, जिन्हें भाग्य ने सफलता की उपाधियाँ प्रदान कीं। लेकिन यह महत्त्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय स्वयं अपने मूल्यों और कार्यों में उस उच्च उद्देश्य का अनुकरण करें जिसे वे अपने विद्वानों के कार्यों में देखने की आशा करते हैं।

उस सन्दर्भ में, हार्वर्ड की राष्ट्रीय चेतना के निर्माता और प्रबंधक दोनों के रूप में एक विशेष जिम्मेदारी है। यह पहाड़ी पर बैठ सकता है और अपने कौशल पर खुद को बधाई दे सकता है, लेकिन यह अपने विशाल कद का उपयोग विभिन्न समूहों द्वारा स्वतंत्रता और न्याय के व्यापक अंतर को दूर करने के लिए भी कर सकता है। मैंने पहले एचबीसीयू और अल्पसंख्यक सेवा संस्थानों के वीरतापूर्ण कार्य के बारे में बात की थी जो हमारे देश को खुला रखते हैं और समानता और पहुँच के उद्देश्य को आगे बढ़ाते हैं। फिर भी, उनमें से कई अपने इतिहास के अधिकांश भाग में अल्प वित्त की विरासत और उच्च शिक्षा की मुख्यधारा से अलगाव के कारण कमजोर रहे हैं।

मैं हार्वर्ड जैसे विश्वविद्यालयों से पिछले दशकों में इन संस्थानों पर लगाई गई सीमाओं को स्वीकार करने का आह्वान करती हूँ। जबकि हार्वर्ड जैसे विश्वविद्यालयों के पास बंदोबस्ती, मजबूत नामांकन, निरंतर पाठ्यक्रम विस्तार, बड़े पैमाने पर बुनियादी ढाँचे में सुधार और महत्त्वपूर्ण बंदोबस्ती वृद्धि से फलने-फूलने की हवा थी, एचबीसीयू में अक्सर तूफानी हवाएँ होती थीं जो उनके विकास में बाधा डालती थीं। हमारा देश आखिरकार एचबीसीयू की कम फंडिंग के परिणामों से जूझ रहा है, लेकिन अगर हमें समान शैक्षणिक अधिकारों की लड़ाई में निरंतर प्रगति का आश्वासन देना है तो हम वहाँ से बहुत दूर हैं जहाँ हमें होना चाहिए।

मैं उस विश्वविद्यालय से अनुरोध करती हूँ जिसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है कि वह इन ऐतिहासिक और अन्य अल्पसंख्यक सेवा संस्थानों के साथ खड़े रहकर, मजबूत साझेदारी बनाकर, अधिक फंडिंग की वकालत कर, और इनकी समता और न्याय की लड़ाई को स्तर तक पहुँचाकर जिसके ये हकदार हैं अपनी चमक बढ़ाए।

आइए सौ वर्षों में यह शिकायत न करें कि ऐतिहासिक रूप से पहुँच और अवसर से वंचित लोग पूछते रहते हैं कि राष्ट्र के प्रति उनकी सेवा को सम्मान, समावेश और समर्थन हासिल करने में कितना समय लगेगा।

कई अल्पसंख्यक सेवारत संस्थान गरीब, वंचित समुदायों के छात्रों को स्वीकार करते हैं जहाँ अक्सर कुछ करियर के लिए आवश्यक पूर्व-आवश्यकताओं का शैक्षिक तैयारी में अभाव होता है। उन समुदायों में बच्चों को नागरिक अधिकारों से पहले के युग के दौरान मेरे और मेरे साथियों की तुलना में उसी या उससे भी बदतर भाग्य का अनुभव हो सकता है। अल्प वित्तपोषित स्कूलों में भेज दिए जाने और पाठ्यक्रम से विमुख होने के कारण, उन्हें आश्चर्य होगा कि मैंने ऐसा किया कि उनके जीवन में क्या होगा। सार्वजनिक स्कूलों ने मुझे बचाया और उन पर अभी भी इस देश के लाखों बच्चों को बचाने का भार है। बहुत से मामलों में, ये संस्थान कई बच्चों और उनके परिवारों के लिए एकमात्र आशा हैं। इस समय सार्वजनिक शिक्षा के लिए समर्थन उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना देश के शुरुआती दिनों में था जब होरेस मान ने पहली बार सार्वभौमिक शिक्षा का आह्वान किया था। मान के लिए, यह मामला था कि हमारे युवा देश को क्या चाहिए; यह आज भी वैसा ही है क्योंकि नागरिक सद्गुण पर मान का आग्रह आज भी सच साबित हो रहा है।

इसके अलावा, ऐसे क्षण में, विश्वविद्यालयों और आप सभी को शिक्षण पेशे को बौद्धिक रूप से कम योग्य, कम ग्लैमरस और फाइनेंसरों और प्रौद्योगिकीविदों के ऊँची उड़ान वाले करियर की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण पद समझने की भावना को उलटने में नेतृत्वकारी भूमिका निभानी चाहिए। शिक्षकों की तैयारी और पाठ्यचर्या सामग्री पर ध्यान दे कर और निवेश कर विश्वविद्यालय और औसत नागरिक देश की भलाई में योगदान दे सकते हैं।

हममें से कोई भी अपने बच्चों को दिए जाने वाले भविष्य की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकते। हार्वर्ड की अपनी भूमिका है और इसी तरह आप सभी की भी। मैं आपसे यह पूछने आई हूँ कि जो आज स्नातक हैं, उन ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों और असमानताओं को स्वीकार करने और संबोधित करने के लिए क्या करने के लिए तैयार हैं, जिनका इतने सारे लोग लगातार अनुभव कर रहे हैं। क्या आपके कार्य हमें अधिक उत्थान की दिशा दिखाएँगे? क्योंकि, जिस तरह हम उन लोगों के नैतिक दिवालियापन का वर्णन करते हैं जिन्होंने क्रूरतापूर्वक दूसरों को गुलाम बनाया, हम उन लोगों की कहानी भी बताते हैं जो समान रूप से दोषी थे क्योंकि उन्होंने गुलामी की प्रथा को चुनौती देने से इनकार कर दिया था। भविष्य में, इस समय का इतिहास यह बताएगा कि हम हाशिए पर मौजूद समूहों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार को संबोधित करने के लिए क्या करते हैं और क्या करने में विफल रहते हैं। हार्वर्ड में आपने जो कुछ भी सीखा है, मुझे आशा है कि समानता के संघर्ष में आपकी

ज़िम्मेदारी की चेतना आपके साथ बनी रहेगी। जबकि दासता, नस्लवाद, भेदभाव और बहिष्कार की विरासत अभी भी समकालीन दृष्टिकोणों को प्रभावित करती है, हमें कभी भी यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि ऐसी विरासत पर काबू पाने के लिए बहुत देर हो चुकी है। क्योंकि न्याय करने में कभी देर नहीं होती।

आज, मैं आप सभी से यह घोषणा करने का आह्वान करती हूँ कि आप उन भेदभावपूर्ण कार्यों को मंजूरी नहीं देंगे जो दूसरों के लाभ के लिए कुछ समूहों को रोकते हैं। मैं आपसे धन, विशेषाधिकार और जनजातीयता के क्षेत्रों को न चुनकर समावेशन के लिए एक ताकत बनने का आह्वान करती हूँ, ताकि आप विविधता के अपने हार्वर्ड अनुभव से सीखे गए सबक को न त्याग दें। मैं आपसे यह सुनिश्चित करने के लिए अपनी भूमिका निभाने का आह्वान करती हूँ कि आने वाली पीढ़ियों को निष्पक्षता, सम्मान और समावेशन के लिए बाहर खड़े होकर संघर्ष नहीं करना पड़ेगा।

आज, अकादमी में दशकों के बाद, मेरा रास्ता मुझे वापस उस जगह पर ले गया है जहाँ छात्र वही लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं जो तब लड़ी गई थीं जब मैं किशोर थी–कट्टरता के सामने सुरक्षित रास्ता, वोट देने का अधिकार और शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों तक पहुँच में समानता। प्रेयरी व्यू की पूर्व छात्रा सैंड्रा ब्लांड को हमारे परिसर के प्रवेश द्वार पर एक मामूली यातायात अपराध के लिए रोका गया था। इस अपराध के लिए जेल में बंद होने के तीन दिन बाद वह अपनी कोठरी में मृत पाई गई। क्या हर पीढ़ी को नस्लीय नफरत के और भी दुखद सबूत जोड़ने चाहिए जिसने दुनिया को परेशान कर दिया है? हमारा काम तब तक पूरा नहीं होगा जब तक युवा लोग इस सोच के साथ बड़े हो रहे हैं कि उनका महत्व दूसरों से कम है। जब तक उनके पास कम और संकीर्ण शैक्षणिक अवसर हैं। जब तक उन्हें अपने जीवन के हर दिन, हर पल अपनी सुरक्षा का डर सताता रहेगा। जब तक समाज में उनकी पूर्ण भागीदारी उन नीतियों द्वारा सीमित है जो जानबूझकर उनके अधिकारों को छीनती हैं या अवरुद्ध करती हैं।

जिस तरह मैं हार्वर्ड से उन अल्पसंख्यक संस्थानों की ओर से आवाज उठाने के लिए कहती हूँ, जिनके साथ समय-समय पर गलत व्यवहार किया गया है, मैं आपसे कहती हूँ कि आप जहाँ भी जाएँ, न्याय के लिए अपनी आवाज उठाएँ। ज़रूरतमंद बच्चों की मदद करें, चाहे वे कहीं भी हों- कम वित्तपोषित सार्वजनिक स्कूलों में, संसाधनों से वंचित पड़ोस में, अपनेपन की तलाश में लगे लोगों की भी। यदि वे उनके और उनके महत्व की वकालत करने वाली आपकी आवाज़ नहीं सुनते हैं, तो उन्हें दुनिया में अपने स्थान के बारे में क्या निष्कर्ष निकालना चाहिए?

यदि आप इन बच्चों का मुद्दा उठाते हैं, तो आप सबसे बड़ा मुद्दा उठा रहे हैं—न्याय का। आज आप एक विद्वान के रूप में अपनी ख्याति अर्जित करें। न्याय का मुद्दा उठाते हुए, आप एक इंसान के रूप में अपनी ख्याति अर्जित करेंगे।

एक बार फिर बधाई!'

(1) यार्ड का केंद्र, जिसे टेरसेंटेनरी थिएटर के नाम से जाना जाता है, एक विस्तृत घास वाला क्षेत्र है जो वाइडनर लाइब्रेरी, मेमोरियल चर्च, यूनिवर्सिटी हॉल और सेवर हॉल से घिरा है। टेरसेंटेनरी थिएटर वार्षिक प्रारंभ अभ्यास और अन्य दीक्षांत समारोहों का स्थल है।

(2) अफ्रीकी-अमेरिकियों को गुलामी के दौरान और जिम क्रो के दौरान संतुलित, पौष्टिक आहार नहीं मिल पा रहा था। उनके पास ऑर्गन मीट और मारे गए जानवरों के वे हिस्से थे जिन्हें अन्य लोग नहीं खाते थे, और साग-सब्जियां जो उन्होंने खुद उगाई थीं।

(3) ट्रॉम्पे-एल ओइल त्रि-आयामी अंतरिक्ष और दो-आयामी सतह पर वस्तुओं के अत्यधिक यथार्थवादी ऑप्टिकल भ्रम के लिए एक कलात्मक शब्द है।

(4) अल्टा विस्टा, कर्नल जेरेड एलिसन किर्बी का पूर्व गुलाम श्रमिक शिविर, जो 1860 में, एक दशक के स्थिर संचय के बाद, शायद तत्कालीन ऑस्टिन काउंटी का सबसे धनी निवासी बन गया था।

(5) शाब्दिक अर्थ : खिड़की चाटना

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.- 9425079134

सखि देखन चलो नृप कुँवर भलो

- सूर्यकांत नागर

जन्म - 3 फरवरी 1933।
शिक्षा - एम.एससी., एल.एल.बी।
रचनाएँ - सत्रह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - म.प्र. साहित्य परिषद के सुभद्राकुमारी सम्मान सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मालवा अंचल में बोली जाने वाली मालवी में माधुर्य है, लोच है और माटी की सौंधी सुगंध है। इसकी समृद्ध शब्द-संपदा में ऐसे कुछ शब्द हैं, जिनकी जोड़ के शब्द अन्यत्र मिलना मुश्किल है। मालवा की भास्य-श्यामला भूमि उर्वरा है-साहित्य, संस्कृति और कृषि तीनों ही दृष्टि से। इसीलिए कहा गया है कि मालवा माटी गहन गंभीर/डग-डग रोटी पग-पग नांर। लोक-जीवन की जड़ें यहाँ बहुत गहरी हैं। लोक संस्कृति की छाप मालवी लोकगीतों, लोक कथाओं और लोक कलाओं में स्पष्ट दिखाई देती है।

लोक-संस्कृति के मूल में है जन-जीवन। मनष्य है तो समाज है और समाज के सामूहिक आचरण से बनता है लोक। मनुष्य ने प्रकृति के सान्निध्य में रहकर जीना सीखा है। इसलिए मनुष्य और प्रकृति में गहरा रिश्ता है। प्रकृति की पहचान के तहत ही धर्म, दर्शन और साहित्य के निर्माण को प्रोत्साहन मिला है। मालवा के नदी तट, पहाड़ियों की तलहटी वनों, सरोवरों, नदियों, गाँवों, कस्बों में रहने वाले मनुष्यों, कृषकों, आदिवासियों के रीति-रिवाजों, रूढ़ियों परम्पराओं, विश्वासों तीज-त्यौहारों और जीवन-शैली ने मिलकर ही लोक-संस्कृति का निर्माण किया है। यहीं से लोकगीतों और लोकवार्ताओं ने जन्म लिया। इसीलिए हमें लोक-साहित्य में लोक जीवन के विविध रंग मिलते हैं। मालवी में जन्म से लेकर मृत्यु तक हर संस्कार के गीत हैं। शादी-ब्याह, त्यौहार, धार्मिक आयोजन के गीत तथा बेटी की विदाई के गीत, फसल कटने के गीत, गुम हो गई गाय के मिल जाने पर गाए जाने वाले गीत, संस्कार-गीत और भक्ति गीत सभी रंग के गीत हैं। पनघट, अलाव, खलिहान, चौपाल जैसी लोक-सस्थाओं से लोकगीतों और लोकवार्ताओं को खूब प्रोत्साहन मिला। वाचिक परम्परा से वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती गईं।

राम-कथा से सम्बद्ध लोकगीत अवधि, भोजपुरी और बघेली में अधिक हैं। उत्तर प्रदेश में राम जन्म भूमि और उनकी कर्म-स्थली होने से वहाँ राम कण-कण में बसे हैं। अयोध्या में हाल ही में सम्पन्न रामलला का प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव प्रमाण है कि राम आज भी लोक जीवन के पूरे वृत्त में विद्यमान हैं। तुलनात्मक रूप से मालवी लोकगीतों में राम-प्रसंग कम हैं। कृष्ण, रुक्मिणी, द्रौपदी, राधा आदि प्रसंगों के बिम्ब और प्रतीक तो पर्याप्त मात्रा में है, क्योंकि जन्म से लेकर महाभारत तक विभिन्न रूपों में अपनी लीलाओं के माध्यम से कृष्ण की लोक में व्याप्ति रही, पर वैसी सीधी-सीधी बाल व अन्य लीलाएँ राम के साथ नहीं जुड़ी हैं। वे मर्यादा पुरुष थे। अत: स्वयं की उनके अपने काल में लोक के बीच उस तरह की साक्षात् उपस्थिति नहीं रही, जैसी कृष्ण की रही। यह अलग बात है कि बाद में राम के चरित्र ने लोक के बड़े वर्ग को प्रभावित किया और उनके आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरित भी। इस काम में तुलसी के रामचरित मानस ने अहम् भूमिका निभाई। तुलसीदास ने राम चरित्र का सामान्यीकरण कर सर्वसाधारण के लोकचित्त पर गहरा प्रभाव डाला। लोक मानस के इस निर्माण में राम, संस्कार गीतों में, विवाह और बिदाई गीतों में, कभी पुत्र, कभी जामाता, कभी वर और कभी अत्याचारी राक्षसों के विनाशक के रूप में चित्रित किए गए। विशेषत: जन्म और विवाह के अवसर पर राम-कथा को गाए बिना ये प्रसंग अपूर्ण से लगते हैं। इस प्रकार राम आज लोक जीवन के पूरे वृत्त में विद्यमान हैं।

मालवी लोकगीतों में बिम्बों और प्रतीकों की नवीनता है। गीतों के साथ संगीत है-नाद है, अक्षरात्मकता है, लय-प्रवाह है और कर्णप्रिय धुने हैं। तभी इन्हें गाना, गुनगुनाना और दोहराना पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी है। अधिकतर मालवी गीत स्त्री-कण्ठ से निकलने वाले गीत हैं। बेटी की विदाई के गीतों में करुणा अंतर्धारा की भाँति प्रवाहित है। इन गीतों मे जबरदस्त कल्पनाएँ हैं। रचनात्मक कल्पना जो गीत का सौंदर्य-बोध तो कराती ही है, उन्हें विश्वसनीय भी बनाती है। मालवा के लोकगीतों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। इन गीतों में सांस्कृतिक सुगंध है। परिवारों को बाँधकर रखने का संदेश है। मालवी गीत की प्रथम पंक्ति प्राय: हर पद के अंत में दोहरायी जाती है, जिसे 'टेक' कहा जाता है।

राम-जन्म से प्रारंभ कर, राम-सीता विवाह, वनवास, राम-रावण युद्ध और राम की अयोध्या वापसी के प्रसंगों से जुड़े कुछ लोकगीतों की बानगी देखिए। राम-जन्म पर अयोध्या में खुशी छा गई और बधाइयों का ताँता लग गया- '**राम जन्मा हो खुशी छई म्हारा मन में / चैत को मास आयो, खुशी को खजानों लायो / कौशल्या ने जन्म्या राम, बारा डंका बजा दन में / राम जन्म्या/ शूरज ने ताव फेक्यों, चंदा ने चाँदी बेरी (बिखेरी) / अयोध्या में ढोल बाज्या घर आंगणा चोक में/ राम जन्म्या।**'

(राम के जन्म से अयोध्या में खुशी छा गई, बारह डंके बजे, सूरज ने अपना ताप फेंका और चाँद ने चाँदनी बिखेरी। अयोध्या के घर आँगन में ढोल बजने लगे। इसी भाव का दूसरा गीत देखिए-'**आज की बधाई राजा दसरथ राय के / गंगा फूले, जमुना फूले, घणों सुख पाय के / सरजू माय असी फूले, रामचंदर न्हाय के। / चम्पों फुल्यो, चमेली फूली, घणों आनंद मनाय के / मेला (महल) में कैकई फूली राम बन जाय के।**'

एक और बधाई गीत देखिए-

'**खुशी हुई जी म्हारा मन में / आज बधाई सीरी (श्री) राम की / माता कौसल्या ने रामचंदर जन्म्या / सुनैना ने जन्मी सीता/ सुमित्रा ने जन्म्या भरतलालजी / पेली (पहली) बधाई मालन ले आई/लई हार-फूल मालजी।**

इस गीत में राम के साथ उनके भाइयों के जन्म की बधाई भी है। सबसे पहले मालन हार-फूल लेकर बधाई देने बधाई देने आई। रजवाड़ी (रतलामी) मालवी के लोकगीत में राम के जन्म दिवस को कंचन दन उगा' कहा है। एक सखि दूसरी सखि से कह रही है- '**सखि बोलो केसर लीपो आंगणजी। / सखि मोतीड़ा रा चोक पुराव/आज कंचन दन उगीयोजी / थें (तुम) तो बेठो कोसल्या माता चोकी पे जी / तमारा खोला (गोद) में रामचंदर पूत। थें करो वो सौहाद्राबाई आरती जी / आज कंचन दन उगीयोजी।**'

(आज राम का जन्म क्या हुआ मानो स्वर्ण दिवस उगा हो। सखि, आज केसर से आँगन लीपो और चौक को मोतियों से जड़ दो। कौशल्या माता आप चौकी पर बिराजो। तुम्हारी गोदी में पुत्र रामचंद्रजी हैं। सौहाद्राबाई तुम उनकी आरती उतारो। यहाँ सौहाद्राबाई कहने का भी विशेष अर्थ है जो सौहार्द से जुड़ा है। जानकी ने राम को पाने और उनके दरसन के लिए एकादशी का व्रत रखा है। प्राय: हर लड़की की इच्छा होती है कि उसे अच्छा वर मिले और इसलिए वह शिव की पूजा करती है। जानकीजी राम जैसे पति, कौशल्या जैसी सास, दशरथ जी जैसे ससुर, लक्ष्मण जैसा देवर और अयोध्या का राज पाने की कामना करती हैं-'**म्हें (मैं) तो करती ग्यारस उपवास राम थारा दरसन को/ म्हाने सेज में (सहज में) मिल्या हनुमान महादेव परसन को। यो तो पेलो वचन बोल्या जानकीजी म्हाने दीजो अयोध्या को राज/सरजु नित न्हावन को म्हें तो करती उपवास..... यो तो दूजो वचन बोल्या जानकीजी म्हारे दीजो कोसल्या सी सास/ ससुरो तो राजा दसरथजी, म्हे तो करती ग्यारस / यो तो अगल्यो वचन बोल्या जानकीजी म्हाने वर दीजो रघुनाथ / देवर लाला लक्ष्मणजी। म्हें तो करती ग्यारस ।**' आदि-आदि।

जब राम-लक्ष्मण विश्वामित्र मुनि के साथ जनकपुरी आते हैं तो सीताजी की एक सहेली दूसरी सहेली से कहती है कि चलकर रामचन्द्र को देखें। वह रामजी की सुंदर छवि का वर्णन करती है- '**सखी देखन चलो नृप कुँवर भलो, / मिथिलापति सजन सिया बनड़ो। अनियावर आँखन में कजरो / गले सोहत है मोतियन गजरो / नीला अम्बर पे नील जड्यो। तारा बीच चमके, चंदायो / छवि निरख रयो सारो जग यो। / कोसल्या को जायो दसरथ सुत यो। / लछमन, भरत, शत्रुघ्न भैयो। चित चाहत है उड़ी जाय मिलूँ। / सियाराम बिन झूठो झगड़ो।**'

(झगड़ो का यहाँ अर्थ संसार, भवसागर से है। ऐसा ही एक सुंदर बन्ना गीत और है। इसमें धनुष-भंग का प्रकरण भी शामिल है। यहाँ भी सखि कह रही है -

'**राम बना सखि हे सब में आला/कोसल्या का प्यारा दुलारा**
विश्वामित्र मुनिश्वर आया/संग में राम लखन को लाया
राजा जनक की खुशी है अपार/ये रावण वाणासुर भी आया
शिव धनुष तिलभर भी कोई नी हटावे
अब तो कन्या रेवेगी कुँवारी / विश्वामित्र मुनिवर बोल्या
राम उठो हवे झट आसन से/शिव धनु तोड़ो कठिन करारा
राम ने उठी ने शिव धनु तोड्यो / सब राजा ने मुख को मोड्यो
नभ में हुई जय जयकार / राजा जनक के खुशी हुई है
माता सुनयना की फिकर गई है/तुलसी का मन में बसी गया रामा
कौशल्या का प्यारा दुलारा।'

इसी प्रकार एक सहेली दूसरी सहेली से कह रही है कि हम बनड़े (दूल्हे राम) को देखने जा रही हैं। वे उन्हीं के बारे में चर्चा भी कर रही हैं-'**जार्या, जार्या सहेली मैं तो जार्या। / बनड़ा ने देखन जार्या, लाडीला ने देखन जार्या / चढ़ चौबारे झाँक झरोके राम की सोभा लेर्या चतुर बनाजी को रूप निखारता तो नैणा से विलग न हो.... दशरथ सुत. लक्ष्मणजी का बंधु/उनको नाम नी लेर्या / भरत, शत्रुघन देवर हमारा तो कोसल्या सासुजी के। बनड़ा ने देखन जार्यो।**'

एक अन्य बनड़ा गीत में सीताजी रामजी की पोषाक और आभूषण के सम्बन्ध में कह रही है-'**मेरो बनों (दूल्हा) अयोध्या वालो ठाड़ो मेरे अँगना मेरे बने को कंठा सोहे, और सोहे सांकला / मेरे बने को कुण्डल सोहे और सोहे मुरकी / मेरे बने को बेड़ी सोहे, और सोहे तोड़ा / मेरे बने को चूड़ा सोहे और सोहे छल्ला। / मेरो बनो अयोध्या वालो, ठाड़ो मेरे अँगना।**'

(मेरा वर तो अयोध्यावासी है और आज मेरे आँगन में खड़ा है। उसके गले ले में हार, पाँव में साँकलें, कानों में कुण्डल, हाथ में कड़ा

सुशोभित है। आदि-आदि।) गीत की तीसरी और चौथी पंक्ति में ग्रामीण जनता द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों का उल्लेख है। रामचंद्र जी को एक ग्रामीण दूल्हे के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। राम के जनकपुरी आगमन के ऐसे अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। जब रावण सीताजी को चुराकर ले आता है तो पत्नी मंदोदरी रावण को उसकी नादानी के लिए बार-बार समझाती है और उसके दुष्परिणामों के प्रति सचेत करती है कि भगवात राम से शत्रुता पालकर अपने प्राण खो दोगे-'**पिया के बार-बार समजावे राणी मंदोदरी सुजान/सिया चुरइ के लाया कंत, गुणवंत बन्या नादान/पिया के बार-बार समजावे / पढ्यो अकल पे ऐसो परदो, भूल्या ज्ञान ओर ध्यान / रूठी किस्मत लंकपति की, करने कुल की हाण/पिया के बार-बार समजावे / दाँव लगायो जिनी चोसर पे, रखणे अपनी शान/ सब पाँसा पिटी जावेगा बालम, लंक बणे समसाण / जिनकी तिरिया हरी (चुराकर) ने लाया वी हे भगवान/भेरू उन संग बेर बिसहूके, खोई बठेगा प्राण/पिया के बार-बार समजावे / राणी मंदोदरी सुजान।**'

ऐसे ही भाव-बोध का एक अनुनय भरा करुण गीत और है-(**करू**) **छी म्हारा कंता/थाने उलटी लगाई चिंता / जोगी को वेश घरे बालम थाने बरजू (मना मत रावण/मत फिर गई गले कंठ तीन लोक के नाथ विसंभर / छीन लेगो गढ़ लंका / रानी मंदोदर सुपनो आयो / नैना में नीर ढलता/ कोट कांगरा बांदर लूमे/करी रया शोर अनन्ता।)** मंदोदरी रावण से प्रार्थना कर रही है कि राम का विरोध मत करना। आपके इस संकल्प से में चिंतित हो गई हूँ। आपने गले में जो मोतियों का हार पहना है (अर्थात् ऐश्वर्यवान होने का जो प्रदर्शन किया है) उसने आपकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। मुझे स्वप्न में दिखा है कि लंका के कोट-कँगूरों पर वानर लटूम रहे हैं और दीन दयालु भगवान आपकी लंका को जीत रहे हैं)। रावण इसका उत्तर देते हुए कहता है कि मंदोदरी तुझे मुझ जैसे बलवान के आगे शत्रु का बखान करते हुए लज्जा नहीं आती? फिर वह अपनी शक्ति और पराक्रमी भाई, पुत्र और विशाल सेना का हवाला देते हुए कहता है कि वह बंदर सेना हमसे कैसे जीत पाएगी। वह पूँछ वाला हनुमान क्या कर लेगा। तू औरत जात, तू लाभ की बात नहीं जानती '**म्हने कई समझावे राणी, म्हारी बीस मुजा बलवान / सरम नी आने थारे, कई दुसमन को करे बखान/म्हारे कई समजावे / कुंभकरण सो भई है, बेटो मेघनाथ बलवान/एक लाख पुत्र, सवा लाख नाती, गढ़ लंका का स्थान। काल बली हे म्हारा बस में, जिसको तेज महान / धरती असमाँ (आसमान) दोई पलटी दूँ ऐसा मारूँ बाण कई जीतेगी बंदर सेना/पूँछवाला हनुमान/महाकाली का ग्रास बणेगा, मोत का सब मेमान। तिरिया जात बुद्धि की ओछी, लाभ नी जाणे हाल / सुरवीर का सामे भेरू, तुच्छ देवी अणजाण/म्हारे कई समजावे राण्णी म्हारी बीस मुजा बलवान।**'

युद्ध में मेघनाथ की मृत्यु के पश्चात् पत्नी सुलोचना विलाप कह रही है-'**वारी (अल्प) उमर म्हारी केसे कटे, नी टूट्या, दूध का दाँत/पेले ती पीपर (पीयर, मादूका) की मारी/ दूजे राम ने विपता डारी/तीजा पति लक्ष्मन ने मारा / विधवा कर डाली रे नाथ/म्हारी फटन लागी छाती/नी टूट्या दूध का दाँत/लंका में नी कोई हमारो, पीयर नहीं होत गुजारा/वारी फटन लागी छाती / नाथ म्हारी गोद री खाली, नी टूटे दूध का दाँत/नाथ मोहे विधवा कर डाली/ना टूटे दुध का दाँत।**'
(अभी मेरी अल्पायु ही है, शेष जीवन कैसे कटेगा। पितृग्रह में भी कोई सहायक नहीं। लक्ष्मण ने पति को मारकर मुझे विधवा कर दिया। लंका में भी हमारा कोई सहायक नहीं। मेरी गोद भी रिक्त है, आदि-आदि।) आशय कि भारतीय समाज में विधवा का जीवन कितना कष्टपूर्ण होता है।

रावण का वध कर रामजी, लक्ष्मण व सीता सहित अयोध्या लौटे तब का अत्यन्त मार्मिक चित्रण इस लोकगीत में है-'**बरखा हो रही रे फूलों की अवध में आई रया रे राम/राम बिना सूनी अयोध्या लक्ष्मण बिना ठकराई/सिया बिना सुनी रसोई कोन करे चतुराई / बरखा। आगे-आगे राम चले पीछे लक्ष्मण भाई। बीच में चले जानकी सोभा वरनी नी जाई। सावन वरसे भादों वरसे पवन चले पुरवाई /कोन झाड़ के नीचे ऊबा वेगा (खड़े होंगे) रामलखन सिया माई/बरखा / रावण मार राम घर आया घर-घर बंटत बधाई / माता कोसल्या करे आरती केकई मन पछताई / बरखा।**'

(श्रीराम अयोध्या जा रहे हैं, फूलों की वर्षा हो रही है, राम के बिना अयोध्या सूनी है और लक्ष्मण के बिना राजतत्व सूना हो गया है। सीता के बिना रसोईघर सूना है। आगे-आगे राम चलते हैं, पीछे-पीछे लक्ष्मण। उन दोनों के बीच में जानकी। इनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सावन बरसता है, भाद्रपद बरसता है। पूर्व की हवा चल रही है। राम, लक्ष्मण और सीता पता नहीं, किस पेड़ के नीचे खड़े होंगे। राम रावण का वध कर घर पधारे तो हर घर में मिठाई बँट रही है। माता कौशल्या आरती कर रही हैं और कैकयी मन ही मन पछता रही हैं)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम चरित्र के विविध रंग मालवी लोकगीतों में बिखरे पड़े हैं। श्रीराम के जनकपुरी आगमन और सीताजी के साथ विवाह के प्रसंग से जुड़े गीत तुलनात्मक रूप से अधिक हैं। इन लोकगीतों के सरक्षण का श्रेय ग्राम-संस्कृति और महिला कंठ को है। ऐसी अनेक महिलाएँ जिन्हें अक्षर ज्ञान भी नहीं है। किन्तु उन्हें कई लोकगीत कंठस्थ हैं। आज की कई विकसित संगीत शैलियों के मूल में लोकगीतों की धुने हैं। यदि हमें अपनी साहित्यिक-सांस्कृतिक धरोहर को बचाना है तो लोकगीतों और अन्य लोककलाओं के संरक्षण संवर्धन के लिए ईमानदारी से प्रयास करते रहना होगा।

'ज्ञानोदय'
81, बैराठी कालोनी नं.-2,
इंदौर-452014 (म.प्र.)
मो. 9893810050

आत्मा और उसका स्वरूप

- प्रमोद पुष्कर

जन्म - 14 अक्टूबर 1937।
शिक्षा - एम.ए., बी. कॉम., एलएल.बी.।
रचनाएँ - पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - सौ से अधिक सम्मान।

एक सामान्य मनुष्य प्राय: आत्मा और प्राण को एक जैसा ही समझता है जबकि वास्तविकता में दोनों में बहुत अन्तर है और इसे समझने के लिए हम वैदिक साहित्यि की ओर झाँकते हैं। हमारा छान्दोग्योपनिषद बताता है कि जितना हमारा भौतिक आकाश है वैसा ही आकाश हमारे हृदय के भीतर भी है। द्युलोक, पृथ्वी लोक, अग्नि, वायु, जल, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, विद्युत, नक्षत्र आदि जो कुछ भी इस लोक में स्थित है और जो नहीं भी है वह सब सम्यक् प्रकार से हमारे कमलाकार अन्तर आकाश में भी स्थित है। इसी प्रकार ब्रह्मरूपी हृदयाकाश में समस्त भूत और कामनाएँ भी सम्यक् रूप में स्थित हैं जो शरीर जीर्ण होने पर भी नष्ट नहीं होतीं, क्योंकि वहाँ जो आत्मा है वह धर्माधर्म से शून्य होकर सदैव ही मृत्युहीन, वृद्धताहीन, शोकरहित, पिपासाशून्य, सत्य संकल्पित होकर भोजनादिक इच्छाओं से रहित है। इस आत्मा को अव्यय पुरुष रूप में पंचकोषों के भीतर स्थित स्वीकारते हुए उसे अहम् की संज्ञा प्रदान की गई है।

इसी प्रकार वृहदारण्यकोपनिषद के अनुसार वह आत्मा प्राणों में बुद्धिवृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योतिस्वरूप पुरुष है जो लोक और परलोक दोनों में संचार करता है, चेष्टाएँ करता है और मृत्यु के रूपों का अतिक्रमण करता है और जन्म लेते ही शरीर को आत्मभाव से प्राप्त होता है। यद्यपि पापों से देह इन्द्रियों से वह संश्लिष्ट हो जाता है तथापि मृत्यु समय सबको त्याग देता है। वह सुषुप्ति में पुण्यों और पापों को देखता भर है और फिर पुन: अपने स्थान लौट जाता है और जो कुछ देखता है उससे सम्बद्ध नहीं रहता और वह पापरहित, कामरहित, आप्तकाम और शोक-शून्य होता है। इस प्रकार आत्मा ही ब्रह्म रूप है जो सर्वमय होकर भूमा के रूप में प्रतिष्ठित होता है और अन्तकाल में जब व्यक्ति ऊपर की साँस लेने लगता है तब सारे प्राण इसके अधिमुख होकर साथ चल देते हैं।
हम देख चुके हैं कि शरीर निर्माण के लिए अधिदेव, अधिभूत तथा अध्यात्म अर्थात् मन, बुद्धि, शरीर और आत्मा के समूह की तीनों धरातलों पर आवश्यकता होती है और इसलिए उन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। इन तीनों धरातलों पर आत्मा नियमन करता है। वृहदारण्यकोपनिषद (3/7) के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, आदित्य, दिशाएँ, चाँद, तारे आदि के भीतर रहकर आत्मा उनका नियमन करता है, क्योंकि इन शरीरों वाला आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। यह अधिदैव दर्शन है।

इसी प्रकार समस्त भूतों में स्थित रहने वाला भी वह आत्मा ही है, क्योंकि समस्त भूत ही उसका शरीर है। यह अधिभूत दर्शन है और इसी प्रकार वह प्राणों में रहने वाला प्राण है, प्राण ही उसका शरीर है। यद्यपि प्राण उसे जान नहीं पाता तथापि वह प्राणों का नियमन करता है और इसी प्रकार वह वाणी, क्षेत्र, मन, त्वक, वीर्य आदि का भी नियमन करता है यद्यपि वे भी उसे जान नहीं पाते। इस प्रकार दिखाई न देने वाला किन्तु देखने वाला, सुनाई न देने वाला किन्तु सुनने वाला, मनन का विषय न होने वाला किन्तु मनन करने वाला, अज्ञात किन्तु विशेष रूप से जानने वाला वह हमारी आत्मा ही होती है और इससे भिन्न सब नाशवान है। यह इसके अध्यात्म धरातल का दर्शन है और इस समग्र जानकारी से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि आत्मा ही परब्रह्म है और इसे सत्य का सत्य माना गया है। **(वृहदारण्य द्वितीय ब्राह्मण)**

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विद्वानों का मानना है कि यद्यपि लोक और परलोक दोनों ही आत्मा के स्थान हैं तथापि एक तीसरा स्थान भी है, जो सन्ध्य स्थान कहलाता है जहाँ से वह लोक-परलोक दोनों को देखता है, पाप-पुण्य पर नजर रखता है। उपरोक्त लोकों की मर्यादा भंग न हो इसलिए वह इनको धारण करने वाला सेतु है। वृहदारण्यकोपनिषद इसके आगे यह भी कहता है कि सर्वलोक, समस्त देवगण तथा समस्त भूतादिक रूप आत्मा से ही उत्पन्न हैं । **(वृहदा. 4/4)**

आत्मा सबको वश में रखते हुए सब पर शासन करने वाला अधिपति है। शुभ कर्म में वह बढ़ता नहीं और किसी के अशुभ कर्म में छोटा भी नहीं होता और चूँकि वह सर्वेश्वर है इसीलिए वह निस्सीम है अर्थात् ब्रह्म है। महोपनिषद (द्वितीय अध्याय) के अनुसार वह अनिर्वचनीय होकर आकाश से भी सूक्ष्म है जिसके भीतर ब्रह्माण्ड रूपी रेणुकाएँ उत्पन्न और विलीन होती रहती हैं। बाह्य शून्यता के कारण वह आकाश स्वरूप तथा चिद्रूपता के कारण अनाकाश रूप है।

वैसे वह अवस्तु रूप है किन्तु इसकी सत्ता होने के कारण यह वस्तु रूप है। एक ओर प्रकाशात्मक होने से चैतन्य तो शिला समान जड़ होकर भी नाना प्रकार से जगत् का उन्मेष करता है।

श्री नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद में भी लगभग इसी प्रकार का वर्णन किया गया है जिसके अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही आत्मा है अत: यह न शब्द है न वाणी, न रूप-रस-गंध है और न ही अनुभव और मनन का विषय है जबकि इसके विपरीत वह असंग, निर्गुण, निर्विकार, अनिर्देश्य होकर सत, रज और तम गुणों से रहित होकर माया से शून्य है। यह लक्षणा से जानने योग्य होकर विदित और अविदित से परे भी है और नहीं भी है।

गीता को आधार बनाकर आत्मा के बारे में विद्वान कहते हैं कि आत्मा में ही तीनों वेद ऋक्, यजु और साम के दर्शन होते हैं। उनके अनुसार सर्वव्यापक निस्सीम और निर्विशेष आत्मा अचिंत्य है और अव्यय तत्त्व के प्रादुर्भाव के पश्चात् उसमें उक्त वेदों के दर्शन होते हैं। उनके अनुसार आत्मा के दो भेद हैं- (1) ईश्वर प्रजापति और (2) जीव प्रजापति रूप आत्मा। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी प्रजापति रूप है फिर भले ही वह ईश्वर हो या कुछ और।

आत्मा के दो स्वरूपों के अन्तर्गत जो जीव प्रजापति रूप आता है, उसके चार पर्व होते हैं। इनके अन्तर्गत आत्मा, प्राण, वित्त और माया आते हैं। अब चूँकि प्राण और वित्त आदि आत्मा की महिमा कहलाते हैं अत: आत्मा भी इनमें पूर्णरूप से व्याप्त रहती है जबकि इसके विपरीत माया आत्मा का विरोधी तत्त्व होता है और आत्मा को ढकने का कार्य करता है।

उधर ईश्वर रूप प्रजापति के रूप में अनन्त बलों से भरा हुआ रस (ब्रह्म) जिसे परात्पर कहते हैं, उसके साथ अव्यय, अक्षर और क्षर अमृत भाव में स्थित रहते हैं। इस अमृत भाव में बल रूप अनन्त मृत्यु भी स्थित रहता है। इसमें रस (ब्रह्म) की अमृत रूप सत्ता रहती है और अमृत मृत्यु के संयुक्त होने पर सत्ता, चेतना, आनन्द जाग्रत हो जाते हैं और तीनों की एकरूपता ही परात्पर कही जाती है जो सर्वथा सीमारहित आवरणरहित होता है अत: भूमा कहलाता है। आत्मा के आकार, स्वरूप, कार्य तथा निवास स्थान के बारे में अनेकानेक विद्वानों द्वारा अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए गए हैं। उनमें से कुछ विचार नीचे दिए गए हैं। एक पुस्तक 'मूल सिद्धान्त प्रस्तावित' के लेखक श्री विद्यानन्द ने कुछ विद्वानों के विचार प्रस्तुत किए हैं। इनके अनुसार (1) ईश्वर ने आत्मा को बनाया है। कुछ विद्वानों का मानना है कि आत्मा केवल मनुष्यों में ही होती है अन्य जीवों में नहीं। कुछ कहते हैं कि आत्माएँ जीवन चाहती हैं, किंतु कर्म-बंधनों में बँधी रहती हैं और जैसे ही किसी शरीर का निर्माण होता है वहाँ करोड़ों आत्माएँ मँडराने लगती हैं और सबसे बलशाली आत्मा उस शरीर के मस्तिष्क में घुस जाती है। उक्त पुस्तक के लेखक महोदय तो आत्मा को निराकार तक नहीं मानकर अनेक तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। आत्मा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि इसके अन्तर्गत अव्यय पुरुष की पाँच कलाएँ अर्थात् पंचकोष (अन्नकोष आदि) अक्षर पुरुष के तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र (तीनों प्राण), क्षर पुरुष की भी पाँच कलाएँ (प्राण, आप, वाक्, अन्न अन्नादि व अहंकार) तथा अहंकार की पाँच तन्मात्राएँ, नाद, स्पर्श, तेज, रस और गंध (पंच महाभूत)। सभी मिलकर आत्मा के 18 स्वरूपों का निर्माण करते हैं। इसको ही सृष्टि का विस्तार कहा गया है और इसके केन्द्र में ब्रह्म का निवास माना गया है।

इसी परिप्रेक्ष्य में आदि शंकराचार्य द्वारा मण्डन मिश्र को दी गई समझाइश के अनुसार मनुष्य अथवा पशुओं आदि की देह तो जड़ के समान है जबकि आत्मा देहरूपी उपाधियों से परे शब्द, स्पर्श, गंध आदि से रहित है। शरीर का कोई न कोई दृष्टा होता है जो शरीर से पृथक् होता है। शरीर की इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं होकर उपकरण मात्र हैं, आत्मा का साधन है आत्मा नहीं। कोई यह नहीं कह सकता कि मैं आँख, कान, नाक आदि हूँ और तो और सुप्तावस्था में तो इन्द्रियों का व्यापार ही नहीं रह पाता किन्तु उनकी दृष्टा आत्मा अवश्य उपस्थित रहती है। इन्द्रियों का समुदाय भी आत्मा नहीं, क्योंकि इन्द्रियों के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। आत्मा सदैव बनी रहती है। प्रत्येक इन्द्रिय भी आत्मा नहीं मानी जा सकती अन्यथा शरीर के स्वामी भी अनेक हो जाएँगे और संचालन असम्भव हो जाएगा। मन को भी आत्मा नहीं कह सकते, क्योंकि मन चंचल है और सुप्तावस्था में लय हो जाता है जबकि आत्मा दृष्टा होकर सुप्तावस्था में भी मन का साथी होता है।

इसी प्रकार बुद्धि भी आत्मा का उपकरण है जो मन के समान वृत्ति मात्र होकर सुप्तावस्था में लय हो जाती है। अहंकार भी आत्मा न होकर क्रियावाची होकर आत्मा का उपकरण मात्र होता है। प्राण भी सुषुप्ति में रहते हैं इसलिए जड़ माने गए हैं और उनको चलाने वाली कोई सत्ता अलग है अत: प्राण आत्मा नहीं है। यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि आत्मा नित्य ज्ञान का आश्रय होने से, जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्तावस्था में भी ज्ञान बना रहता है और सुषुप्ति से उठकर भी स्मृति बने रहने से भ्रम ज्ञान नहीं होता। आत्मा में नित्य ज्ञान का आश्रय होने से इसमें पुन: इतर ज्ञान की सम्भावना नहीं रहती और भ्रम ज्ञान नहीं होता। चूँकि ब्रह्म चैतन्य का निवर्तक होता है, अत: अज्ञान निवृत्ति से आत्मा भी मुक्त रहती है। निष्कर्ष स्वरूप यही कहा जा सकता है कि आत्मा ही परमात्मा का प्रतिरूप है और आकारविहीन होकर सबमें व्याप्त है।

91, चित्रगुप्त नगर, कोटरा सुल्तानाबाद,
भोपाल 462003 (म.प्र.)
मो.- 7581052771

ब्रज लोकगीतों के विविध आयाम

- सतीश चन्द्र चतुर्वेदी 'शाकुन्तल'

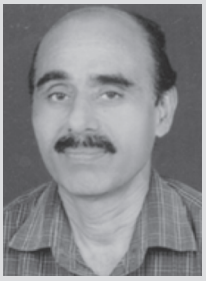

जन्म – 15 जनवरी 1960।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – नौ पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान – शब्द शिल्पी सम्मान सहित अनेक सम्मान।

राम भारतीय लोकमानस के प्राण हैं। मनुष्य सुखी हो तो 'हरे राम', दुखी हो तो हाय, राम, अभिवादन में 'राम राम।' जैसे 'राम' लोकजीवन की साँसों में अनुस्यूत है। लोक व्यवहार के प्रारंभ में राम और समापन में राम। इस लोक व्यवहार की जीवन पुष्टि होती है लोकगीतों से, जहाँ हमारे सभी संस्कार मुखरित हैं। राम हमारे जीवन की लय हैं, हमारे जीवन-संस्कारों के प्रतिनिधि हैं।

राम अपने जीवन के त्याग, मर्यादा, अनुशासन, आज्ञापालन के कारण लोक में प्रवेश कर गए इसलिए, वे जन जीवन के प्रतीक बन गए। उसकी लय बन गए।

राम अवधी लोक साहित्य में ही नहीं, बल्कि भारत के सभी अंचलों के लोकभाषा साहित्य में जीवन सहचर के रूप में मिलते हैं। यही बात ब्रज अंचल के साथ है। श्रीकृष्ण का कार्यक्षेत्र होने के बाद भी ब्रज लोक-गीतों में रामकथा के पात्र प्रसंगवश एकाकार होते चलते हैं। इस तरह जन्म से लेकर बड़े होने तक राम हमारे सहयात्री बनकर हमारी प्रेरणा बनते हैं।

अनेक लोकगीतों की तो टेक ही 'रामा हो रामा' से चलती है। यहाँ शिव, गौरी, गणेश की तरह राम भी लोकदेवता बन जाते हैं। सोहर के गीत में सीताजी के वनवास के समय कुश के जन्म का मार्मिक वर्णन यों मिलता है-

सीता ठाड़ी पछिताइ कुस बन में भए।
जो घर होती दाइ हमारी नारो देती कटवाइ।
जो घर होतीं सासु कौसिल्या चरुआ देवी धरवाइ।
जो घर होते लछमन दिवरा पल्लो देते सधवाइ।।
कुस बन में भए।

अन्य सोहर गीतों में प्रत्येक घर में बेटा राम या नंदलाल के रूप में जन्मता है और राजा दशरथ द्वारा हाथी, घोड़े, द्रव्य लुटाने का वर्णन मिलता है ।इनमें 'संचत' गीत में रानी कौशल्या राजा दशरथ से पुत्र की संचति (साध) करती हैं तो राजा दशरथ लोक में इस हेतु किए जाने वाले दान-पुन्य, तीर्थ आदि न कराने के कारण नि:संतान रह जाने की बात कह दुखी होते हैं। मैंने भांजे का पूजन नहीं किया। बाद में ये सब करने पर एक माली जंगल से जड़ी लाकर देता है उसे सिल पर पीसकर तीनों रानियों को दिए जाने से वे गर्भवती हो जाती हैं। इस प्रकार यह प्रसंग 'मानस' से भिन्न है क्योंकि लोक में संतान प्राप्ति के लिए जड़ी-बूटियाँ आज भी दी जाती हैं।

ब्रज के विवाह-गीतों में राम-सीता और शिव-पार्वती के ही विवाहों का स्वरूप-वर्णन मिलता है। बन्नी गीत में वन में राम-सीता की भेंट होती है-जिस प्रकार राधा-कृष्ण की भेंट होती है-

सीता कौ मंगल गाइये गावहु मन चित लाई।
राम अहेरें नीकरे लछिमन लागे हैं साथ।
उलट लछिमन लाड़िले लागैगी भूख पियास।
ना हमें भूख पियास है, चलि हैं तुम्हारे ई साथ।
ऊँचे चढ़ि जब देखते नीचें जो की है खेत।
कौन राजा की बेटियाँ, कौन राजा कौ है खेत।
राजा जनक की हैं बेटियाँ।

बन्ना गीतों में 'आय बैठे कौसिल्या की गोद रामचन्द्र बनरा बने।' स्वरूप मिलता है। विवाह में लगुन आने पर गाया जाने वाला यह गीत तो समूचे उत्तरी भारत में ढोलक की थाप पर गाया जाता है -

रघुनंदन तौ फूले न समाइँ लगुन आई मोरे अँगना हरे-हरे।
बाबा सजि गए, ताऊ सजि गए
सजि गई सबरी बरात,
रघुनंदन तौ ऐसे सजि गए जैसे के श्री भगवान।
लगुन आई हरे-हरे मेरे अँगना।

ब्रज की शादियों में ढोला गायन का बहुत महत्व होता है। इसे नारियाँ

सामूहिक रूप से चलते-चलते या विवाह वाले घर के द्वार पर खड़े होकर गाती हैं, इसलिए उसे 'नारी पथ गीत' भी कहते हैं। एक ढोला गीत में संजीवनी ले जाते समय भरत द्वारा हनुमान जी को बाण मारने के प्रसंग का वर्णन मिलता है-

ऐसौ मारयौ है भरत जी ने बाणु लगौ है हनुमंत कें रे।
बिनके मुख से निकरी है रामु ही रामु गिरयौ है गसु खाइकें रे।

एक अन्य ढोला गीत में रामकथा के एक बड़े भाग को किस प्रकार संक्षेप में समेट लिया गया है, यहाँ लोक की समीक्षा भी समाविष्ट है-

धरम धरती में समाय गयौ रे, पुन्य गयौ पाताल पाय दुनिया में छाय गयौ रे।
बुरौ जा कैकई ने कियौ रे,
चरत भरत को राज राम को वनोवास दियौ रे।
बुरौ जा रामण ने कियौ रे -
धरि जोगी कौ भेस सीया कौ हरण कर लियौ रे।
भलौ जा हनूमत ने कियौ रे -
लंका दई जराय सिया कौ पतौ लगा लियौ रे।'

इन लोकगीतों में रामचरिनमानस के नारी पात्रों के माध्यम से नारी की पीड़ा, परवशता एवं उसके प्रति संवेदनशीलता जागने वाले वर्णन दिखाई देते हैं। राम-रावण युद्ध में मेघनाद की पत्नी सुलोचना के सती होने का वर्णन इस ढोला गीत में है जिसमें वह पति के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत है -

सुलोचना ठाड़-ठाड़ी रोबै, पति को रही है समझाय।
पति मेरौ कहनौ मानौ, राम लड़ाई मति लेउ।।
राम के चलत गोपियाँ, लछिमन के चलि रहे सक्तीबान।।
नारि तू धोकौ देमी, पति मैं धोकौ न दऊँगी,
संग चलाऊँ तलवार।।

बनरा गीतों में राम के बन्ना रूप का सुंदर वर्णन है, साथ ही जनक लली को ब्याहकर अयोध्या लाने का वर्णन मिलता है। इन गीतों में या तो घनश्याम बनरा बनते हैं या राम -

रघुनंदन बने हैं बन्ना, ब्याहन लगे जनक लली।
मात कौसिल्या करत आरती, बहिन उतारें राई नोंन।
सुमित्रा कैकई मात तुम्हारी बार-बार बलि जाँय,
ब्याहन चले जनक लली।

ब्रज के ब्याह गीतों में 'कूकरा' को अनिवार्य रूप से गाया जाता है। इसके पीछे एक कथा ब्रज लोक में प्रचलित है। रावण सोने की लंका में राज्य करता था। वह बड़ा बलवान और बुद्धिमान था। उसके एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती थे। उसने अपने काल का भी पता लगा लिया था कि दशरथ-कौशल्या के पुत्र राम उसको मारेंगे इसलिए उसने शादी से पहले कूकरा नामक दैत्य को कौशल्या का अपहरण कर मारने के लिए भेजा। उसने हल्दी चढ़ी कौशल्या को अपहरण कर ताबूत में बंदकर एक नदी के किनारे गाड़ दिया था। राजा दशरथ की बरात वहीं से गुजरी और वहीं विश्राम भी किया। दशरथ ने अपनी कटार से जमीन कुरेदते हुए दुल्हन कौशल्या को पा लिया और दोनों का विवाह हो गया। उसी समय से हर कन्या को कौशल्या समझकर कूकरा दैत्य से बचाने के लिए 'कूकरा' गीत गाया जाता है-

अरे अब सुन दारी के कूकरा गुन मानूँगी तेरौ।
अरे रुगतौ रे चुगतौ मेरे बागन में अइयौ,
तू बागन में चुक चैक मचइयौ, सोती मलिनियाँ जगइयौ
अरे सुन दारी के कूकरा।

पुत्र-पुत्रियों के विवाह में बरात के भोजन के लिए मुहल्ले की स्त्रियाँ पूड़ियाँ बेलती हैं और हलवाई सेंकता है। इस समय स्त्रियाँ अनेक शृंगारिक एवं हास्य विनोद के गीत गाती हैं, इससे उन्हें अपने श्रम की थकान का आभास नहीं होता। एक गीत में शिवजी के ब्याह की बरात का वर्णन है। गौरा की माँ नागों को लिए, लटाधारी दूल्हा को बूढ़े नंदी पर बैठा देखकर दुखी होकर नारद जी को कोस रही हैं-

रोबै मैना रानी, सिर धुनि-धुनि बारम्बार।
वारी गौरा बेटी, तेरो लटधारी भरतार।।
ऐसी बरात स्वामी काऊ की न आई।
बूढ़े नाँदिया पै बैठौ ऐ जमाई।।
बूढ़ौ वर ढूँढ़ौ है, यों कहि देगौ संसार। वारी गौरा
अपनी सुता कूँ लैके कुँआ में गिरूँगी।
शादी शुदा मैं तौ हरगिज न करूँगी।
नासु जा नारद कौ जाबै, हरि कूँ दियौ बताय। वारी गौरा।

लोक में बेटी के लिए वर सुंदर, अच्छे घर-परिवार वाला, संपन्न ढूँढ़ा जाता है, अत: इसमें बेटी की माँ की पीड़ा भी प्रत्यक्ष है। तुलसी भी मानस में मैना की पीड़ा को हृदयविदारक शब्दों में व्यक्त करते हैं-

'कत विधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।' (बालकांड)

बरात की अगवानी के गीतों में हर्ष और उमंग का वातावरण चित्रित है जहाँ 'राम रंग बरसता' भाँवर पड़ते समय भी गीतों में राम-सीता के विवाह एवं जनकपुर के धनुष यज्ञ का वर्णन मिलता है -

1. गावें मंगल चतुर नारि, भाँवर श्री रघुवर की,
माथे मुकुट पीता पट जामा, स्याम गात रघुवीर।
सिय के सीस विराजत मौहरी, झलकत पचरंग चीर।

न तिय सिय पटतर की। गावें।
2. भयौ जनकपुरी में सोर सिवधनुष न टूटौ काहू पै।
अब दुखी भए सब नर-नारी, विधना से देन लगे गारी।
ये विधना बड़ो कठोर। सिव धनुष।
3. खुस हैं जनकदुलारी, श्रीवर राम मिले।
सीता ने पूजन किया गौरी का, कीन्हीं थी सेवा भारी।
श्री वर राम मिले। खुस हैं।

इस प्रकार स्त्रियाँ गीत गाकर पुष्पवाटिका में सीता जी द्वारा गौरी पूजन एवं धनुर्भंग के पश्चात् सीता को वर के रूप में राम के मिलने को उमंग के साथ याद करके भाँवर के समय गीत गाती हैं और वातावरण को उल्लासमय बना देती हैं। ज्यौनार के समय गारी गाई जाती हैं। लोक में होने वाले हास-परिहास का तुलसीदास जी ने भी संकेत किया है -

छरस रुचिर बिंजन बहुजाती। एक-एक रस अगनित भाँती।।
जेवँता देहिं मधुर धुनिगारी। लै लै नाम पुरुषअरु नारी।।

वधू पक्ष की स्त्रियाँ वर पक्ष के मुख्य-मुख्य नामों का पता कर उनके लिए मधुर गाली गाती हैं। समधी-समधिन के लिए गाई जाने वाली गालियों में आत्मीयता एवं प्रेम व अधिकार स्पष्ट झलकता है -

तुम सुनौ राम घनस्याम हमारी गारी प्रेम भरी।
ननना तुम्हारे कौसिल राजा तिनकौ सुनौ हवाल।
कौसल्या कौ रचै स्वयंबर व्याहन गए भूपाल।
बीसभुजा दस सीस हरी। तुम सुनौ।
नृप दसरथ ने यज्ञ रचायौ दई मुनीस्वर खीर।
खीर खात रहौ गर्भ छिनार के तब जाए रघुवीर।
गजब की बात करी। तुम सुनौ।
यह कुलरीति तुम्हारे लालन ऐसी कहीं न होय।
दसरथ भूप जनम के हिजरा, खीर खाय जने जाये।
छिनरियाँ अति बिगरी। तुम सुनौ।
बहिन तुम्हारी नाम सांता, अति छवि रूप अपार।
सो सृंगी ऋषि संग सिधारी निकसी बड़ी छिनार।
तनक मन में न डरी। तुम सुनौ।

इस प्रकार राम जन्म के प्रसंग को स्त्रियाँ बिना किसी लाग लपेट के खुले मन से गाती हैं। रतजगे और ज्यौनार के गारी गीतों में लोक मानस स्वच्छंदता से काम लेता है। रामकथा के पात्र राजा, रानी, राजकुमार होते हुए भी लोक के पात्र होते हैं, उसी धरातल पर उन्हें आत्मीयता के साथ याद किया जाता है। तुलसी ने केवल एक चौपाई में परंपरा का निर्वाह सूचित कर दिया। वे जिन पक्षों को बचा गए हैं इन गीतों में उन्हें खुलकर कहा गया है, क्योंकि लोक जिन बातों को अपनी समझ से परे समझता है उन्हें पचा नहीं पाता है, वही बातें लोक के विपरीत समझ कर उनकी अभिव्यक्ति लोकगीतों में करता है। इसी प्रकार इन गीतों में विष्णु, इंद्र, कुंती, सुभद्रा, द्रौपदी, अंबा, अंबिका, यशोदा, नंद किसी को (लोक के विपरीत कार्य के कारण) नहीं बरूषा गया है। विवाह के उपरांत राम सीता को लेकर अयोध्या आते हैं। वधु के गृह-प्रवेश के समय यह लोकगीत गाया जाता है, जिसमें वर राम हैं और वधू सीता -

रघुनंदन बरना आज, ब्याहि लाए जनक लली।
सिर सोने कौ मौर बिराजै, कानन कुंडिल साजें।
गल बैजंती माला सो है, बनि आए भगवान,
ब्याहि लाए जनक लली।

वधू के घर आगमन पर उसके स्वागत में महिलाओं द्वारा उसके निमंत्रण किए जाते हैं। घर में नाच-गाना होता है। मांगलिक आयोजन होते हैं। कुलदेवी कुल देवता की पूजा होती है। इस अवसर के एक मार्मिक लोकगीत में वनवासी होने के कारण राम केवट को गंगा पार कराने के लिए निवेदन कर रहे हैं और उसे अपना पूरा परिचय दे रहे हैं। केवट प्रसंग दृष्टव्य है-

अरे केवट से कहि रहे राम नेंक नाव सिदौसी लै अइयौ।
अरे न्यों मति जानै रे मैं बिना गाँव कौ-
अवधपुरी सुखधाम। नेंक नाव सिदौसी लै अइयौ।
अरे न्यों मति जानै रे मैं बिना मात कौ।
कौसिल्या सी मेरी मात। नेंक नाव सिदौसी लै अइयौ।
अरे न्यों मति जानै रे मैं बिना भ्रात कौ।
लक्ष्मण से मेरे भ्रात। नेंक नाव सिदौसी लै अइयौ।
अरे न्यों मति जानै रे मैं बिना नारि कौ।
सीता सी मेरी नारि। नेंक नाव सिदौसी लै अइयौ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत का कोई भी अंचल हो वहाँ के लोक भाषा साहित्य में रामकथा गुँथी हुई है। कृष्ण का लीला क्षेत्र होने के बाद भी लोकमानस ने अवतारों को लेकर आंचलिक भेद नहीं किया, यह भारतीय लोक मानस की उदारता भी है और रामकथा की लोकप्रियता भी कि उसने अपनी गहरी पैठ बना ली और स्वयं को उसके साथ एकाकार करके उसका सहचर बना लिया।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
शास. कस्तूरबा कन्या महाविद्यालय,
बी-113, शहीद पार्क के पास, सिसौदिया कॉलोनी,
गुना-473001 (म.प्र.)
मो. 9425618652

सिनेमा और सामाजिक उत्तरदायित्व

– मनीषा शर्मा

जन्म – 07 मई।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रीय साहित्यांचल शिखर सम्मान सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

सिनेमा एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। सिनेमा में बहुत ताकत होती है और वह समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को प्रभावित करता है। यह मानव जीवन को गति, तारतम्यता एवं कलात्मकता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। सिनेमा के पास साहित्य और कला की किसी भी विधा से ज्यादा संप्रेषणीयता है। इसके संप्रेषण का घेरा बहुत विस्तृत है। अपने आप में अन्य कलाओं को समाए हुए यह एक स्वतंत्र और स्वयं में संपूर्ण विधा है। जो लोग सिनेमा के निर्माण से जुड़े हैं उनके लिए यह अनुभव और अन्वेषण का माध्यम है। सिनेमा एक शिक्षक भी है जो बहुत कुछ सिखाता है। 'फिल्में अपने नैतिक और भावनात्मक जुड़ाव के कारण समाज में अपना एक अलग स्थान रखती हैं। समाज में नित हो रहे बदलावों का चित्रण करने में फिल्म आज एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में उभरकर आती है।'

'सिनेमा बुनियादी रूप से समाज से अलग नहीं होता। समाज का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव सिनेमा पर पड़ता ही है। कभी फिल्मों के जरिए समाज में बदलाव आए हैं तो कभी सामाजिक बदलावों ने फिल्मों को बदला है। समय के साथ बदलाव होते रहे हैं। सिनेमा चाहे मनोरंजन के लिए हो या व्यवसाय के लिए या कला के उत्कर्ष की अभिव्यक्ति के लिए उसमें अपने दौर का समाज किसी न किसी रूप में व्यक्त हुए बिना नहीं रह सकता। यह अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और अतिरंजित रूप में भी हो सकती है और प्रत्यक्ष और रचनात्मक रूप में भी।' साहित्य और सिनेमा मनुष्य की संवेदना को अभिव्यक्त करने में अन्य कला माध्यमों के अतिरिक्त अधिक सक्षम है। मनुष्य जीवन में जो घटता है उसको आधार बनाकर साहित्य सृजन होता है इसलिए कहा जाता है साहित्य समाज का दर्पण है। 'फिल्मों का निर्माण भी सामाजिक घटनाओं को आधार बनाकर ही किया जाता है। समाज की विभिन्न समस्याओं, घटनाओं और सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को सिनेमा में स्थान मिला है। समाज के विकास में साहित्य की जितनी भूमिका होती है, उससे अधिक भूमिका सिनेमा की होती है क्योंकि सिनेमा एक सहज माध्यम है।'

भारतीय सिनेमा के जनक दादा साहब फाल्के द्वारा बढ़ाया गया एक कदम आज कई पड़ावों को पार कर मीलों की दूरी तय कर चुका है। समय के साथ कदमताल करते हुए भारतीय सिनेमा ने उन सभी बदलावों को अपनाया जो वक्त के साथ लाजमी थे। सन 1913 से प्रारंभ हुआ सिनेमा आज सन 2024 में प्रवेश कर चुका है। इस बीच हिंदी सिनेमा में कई बदलाव हुए हैं। कई सकारात्मक तो कई नकारात्मक परिवर्तन आए। नए-नए विषय समक्ष आए, समस्याएँ व चुनौतियाँ सामने आईं। इन सभी परिवर्तनों को सिनेमा ने करीब से देखा और कुछ रूपांतरण कर जनता और समाज के सामने रखा।' दरअसल भारतीय सिनेमा ने यहाँ के समाज और साहित्य को बहुत कुछ दिया है और उससे लिया भी है। सिनेमा ने साहित्य से कहानी कहने का ढंग लिया और समाज से इसने रिश्तों पर आधारित घटनाएँ ली है। मानवीय मूल्यों का आधार लिया है और आम मनुष्यों से उनकी खुली आँखों का सपना लिया है। समय-समय पर यह इन सारी उपलब्धियाँ को अपने-अपने ढंग से तराश कर, मनोरंजन की चमचमाती पोशाकों से सजा-सँवारकर दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है। लोगों की खुली आँखों के सपनों को उन्हीं के सामने कुछ इस चालाकी से पेश करता है जिससे उनके अंत:करण की भूख-प्यास बुझती रहे और सिनेमा का सफर चलता रहे।'

'फिल्में एक ऐसी कला माध्यम के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं जिसमें अनेक कलाओं का पड़ाव दिखाई देता है। साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण, सिनेमा में बोलियों और आंचलिकता की अनुगूँज, गीतों का निर्माण एवं प्रसार, भाषा-भाषी समाज की कलात्मक अभिरुचि एवं कला मानकों का विकास, सांस्कृतिक रंगों ध्वनियों की उद्‌भावना और संदेश-संप्रेषण तथा शिक्षण प्रक्रिया के द्वारा भाषा-साहित्य और संस्कृति का गठन फिल्मों का महत्त्वपूर्ण अवदान माना जा सकता है।'

'अधिकांश हिंदी फिल्में महज व्यावसायिक सफलता को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। उन्हें किसी फार्मूले की तलाश रहती है जो बॉक्स ऑफिस पर किसी तरह क्लिक कर जाए। दर्शक क्या पसंद करेंगे इस बारे में अटकलें निरंतर लगी रहती हैं। लेकिन इसके बावजूद समय-समय पर समाज सुधार के प्रति जागरूक फिल्म निर्माताओं ने सार्थक बदलाव में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाली फिल्में भी बनाई हैं। बिमल राय, वी.शांताराम, ऋषिकेश मुखर्जी, राजकपूर, के.अब्बास, चेतन आनंद, महबूब ऐसे अनेक फिल्मकारों ने निरंतरता से ऐसी फिल्में बनाईं।'

सिनेमा ने समय-समय पर सामाजिक मुद्दों पर आधारित फिल्में भी बनाई हैं जिसने लोगों को जागरूक कर उन्हें प्रोत्साहित किया। भारत एक समृद्ध फिल्म उद्योग वाला देश है, लेकिन दुर्भाग्य से, भारतीय फिल्मों में महिलाओं का चित्रण लंबे समय से चिंता का विषय रहा है।' भारतीय फिल्मों में महिलाओं को हमेशा वस्तुनिष्ठ और कामुक बनाया गया है और यह अपवाद के बजाय एक आदर्श बन गया है। देश की तीव्र सामाजिक और आर्थिक प्रगति के बावजूद, फिल्म उद्योग लैंगिक असमानता, स्त्री-द्वेष और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को कायम रखे हुए।'

संदीप रेड्डी द्वारा निर्देशित एनिमल फिल्म एक ऐसी कहानी जिसके अतिरंजित कथानक में पिता और पुत्र के रिश्ते को रेखांकित किया गया है। संदीप रेड्डी वेगा के नायक कुछ अलग ही तरह के होते हैं कुछ विशेष अधिकार वाले, अत्यधिक बुरे व्यवहार वाले पुरुष ही इन्हें नायक के रूप में चाहिए होते हैं। अर्जुन रेड्डी ने इससे पूर्व 2019 में कबीर सिंह बनाई थी और अर्जुन रेड्डी 2017 में। वैसे ही नायक का यह और ज्यादा नया और खतरनाक वर्जन है। अत्यधिक क्रोधित और धूमपान करने वाले डॉक्टर को नायक के रूप में कबीर सिंह में उन्होंने नायक बनाया और इसके बाद वे इस एनिमल के साथ अपनी इस फिल्म में लौटते हैं।

फिल्म का नायक रणविजय (रणबीर कपूर)दिल्ली का अमीर लड़का है जो अपने पिता बलवीर (अनिल कपूर) को आदर्श मानकर बड़ा होता है। बलवीर के प्यार न मिलने के कारण बचपन से ही रणविजय बिगड़ जाता है और इसी गड़बड़ी के साथ वह अल्फा मेन बन जाता है। यह पूरी फिल्म प्रेम की विकृत धारणा से प्रेरित दिखाई देती है। कबीर सिंह की भी एक स्त्री के प्रति असंवेदनशील और विषाक्त मर्दानगी को प्रमोट और ग्लैमराइज करने के लिए काफी आलोचना की गई थी। यह फिल्म उससे बढ़कर और उससे अधिक हिंसक है। फिल्म में एक संवाद है जिसमें रणविजय गीतांजलि (रश्मिका मंडाना) से कहता है कि 'दो तरह के आदमी होते हैं अल्फा और बाकी सभी कविता लेखन करने वाले मूर्ख।'

इस फिल्म को सेंसर बोर्ड ने ए प्रमाण पत्र दिया है। इस फिल्म में जिस तरह की हिंसा है वह हमें व्यथित करती है। पूरी फिल्म घटनाओं व भावनाओं की एक शृंखला सी प्रस्तुत करती है और लगता है यह बहुत ही जल्दबाजी में बनाई गई है। यह फिल्म आपको एक वीभत्स, रक्त रंजित और हिंसक यात्रा पर लेकर जाती है जहाँ कई बार मेरे जैसे कमजोर दिल वाले अपनी आँखें बंद कर लेते हैं। यह फिल्म अपनी रिलीज के साथ लगातार चर्चा में है। एक तबका फिल्म को पसंद कर रहा है वहीं कई लोग फिल्म की लगातार आलोचना भी कर रहे हैं। अपने ट्विटर अकाउंट पोस्ट वीडियो के द्वारा लोग इस फिल्म से जुड़ी अनेक प्रतिक्रियाएँ सामने ला रहे हैं। स्वानंद किरकिरे ने अपने ट्विटर अकाउंट पर फिल्म और कहानी के वीडियो की कड़ी निंदा की। उनका मानना है कि यह फिल्म पुरुषों की एक अलग नस्ल है। अल्फा पुरुष के लिए रास्ता बनाने की दिशा में एक कदम है जो महिलाओं के लिए होगा। यह फिल्म जिसमें प्रारंभ से लेकर अंत तक सिर्फ हिंसा और खून ही नजर आता है। हिंसा भी सामान्य नहीं वीभत्स।

कहानी को एक तरफ रखते हैं लेकिन रश्मिका और रणबीर के बीच फिल्माए गए कुछ सीन को नजर अंदाज करना सही भी नहीं है। फिल्म का एक सीन है जिसमें जोया की एंट्री होती है। फिल्म में रणविजय अपने पापा को बचाने के लिए इसके साथ रिलेशनशिप बनाते हैं। जो कहीं भी ठीक नहीं है क्योंकि कुछ भी सही करने के लिए हम गलत रास्ते को नहीं चुन सकते और अगर चुनते हैं तो उसे किसी भी हाल में सही नहीं ठहरा सकते। इसके बाद में जब रणविजय रश्मिका अर्थात् उनकी पत्नी को आकर इस बारे में बताते हैं तो वह गुस्सा होती है और दोनों के बीच लड़ाई होती है। जिसमें रश्मिका कहती हैं वह भी ऐसा करेंगी। यह सुन रणबीर अपनी पत्नी पर बंदूक तान देते हैं। फिल्म में रणबीर रश्मिका के वस्त्र को पीछे से बार-बार खींचते दिखाई दे रहे हैं। यह फिल्म स्त्री को एक वस्तु के रूप में दिखाती है। मानो स्त्री सिर्फ हाड़-माँस का पुतला है उसमें कोई भाव नहीं, उसका कोई सम्मान नहीं, कोई अस्तित्व नहीं, उसकी कोई मर्जी नहीं। नारी के प्रति इतना असंवेदनशील रवैया, इतना विद्वेषपूर्ण चित्रण और फिल्म सुपर डुपर हिट। एनिमल एक ऐसा आदमी है जो स्त्री का सम्मान नहीं करता बल्कि उसे वश में कर दबाना जानता है। इसी में उसका अल्फा मेल अत्यधिक गर्व का अनुभव करता है। रणबीर का वह डायलॉग जिसमें वह अल्फा पुरुष को दर्शाने के लिए कहते हैं 'जो पुरुष अल्फा नहीं बनते वह महिलाओं को आकर्षित करने के लिए कवि बन जाते हैं या फिर उनके लिए चाँद-सितारे लाने का वादा करते हैं।' क्या यह मर्दानगी है? और इसे

कैसे अल्फा मेल का टेक दिया जा रहा है? ऑक्सफोर्ड लर्नर्स डिक्शनरी के अनुसार–'किसी खास समूह का वह शख्स जिसके पास सबसे अधिक ताकत हो वह अल्फा मेल कहलाता है'। अब आप ही सोचिए क्या इस तरह के अल्फा मेल को समाज में जगह मिलनी चाहिए? इस अल्फा मेल के लिए खून-खराबा और हिंसा मामूली और रोज का काम है। उसे न पुलिस का डर है न ही किसी देश की सीमाओं का। वह कहीं भी काम-क्रीड़ा कर सकता है। पत्नी से बेवफाई कर उसे बेशर्मी से स्वीकारता है, जो 'लिक माय शूज' की मानसिकता से ग्रस्त है। ऐसे अल्फा मेल जानवर नहीं बल्कि जानवर से भी बदतर कहे जाते हैं।

सही शब्दों में कहा जाए तो एनिमल कबीर सिंह की विरासत को आगे ले जाने वाली फिल्म है न केवल आगे ले जा रही है बल्कि कई गुना बढ़ा रही है। भारतीय फिल्मों में महिलाओं के चित्रण का वास्तविक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। महिलाओं को सिर्फ फिल्मों में ही नहीं बल्कि समाज में भी एक वस्तु की तरह पेश किया जाता है। फिल्मों में महिलाओं का वस्तुकरण युवा लड़कों और लड़कियों को एक संदेश देता है कि महिलाओं को एक वस्तु के रूप में व्यवहार करना स्वीकार्य है। इससे लिंग आधारित हिंसा, उत्पीड़न और भेदभाव होता है।

आज सिनेमा हमारी लोक संस्कृति व लोक-चेतना का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुका है। फिल्मों के प्रदर्शित होने के पूर्व व बाद में होने वाली विविध चर्चाएँ, फिल्मी सितारों के प्रति लोगों का जुनून और आकर्षण, उनकी फैशन स्टाइल, केश सज्जा का अनुकरण इस बात को प्रमाणित करता है कि सिनेमा का हमारे समाज में क्या स्थान है। कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल के अनुसार 'सिनेमा न केवल अन्य कला माध्यमों से सीधे अपना रिश्ता बनाता है बल्कि वह अन्य कला माध्यमों के गुणों को भी आयात करके अपना विस्तार कर सकता है।'

किसी भी देश में बनने वाली फिल्में वहाँ के समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब होती हैं। भारतीय समाज इन फिल्मों के प्रभाव से नहीं बच सकता क्योंकि फिल्में समाज में रहने वाले दर्शकों के लिए बनाई जाती हैं। चाहे फिल्म का उद्देश्य विशुद्ध मनोरंजन, व्यवसाय या कलात्मक अभिव्यक्ति हो। आमतौर पर लोग यह मानते हैं कि सिनेमा सिर्फ मनोरंजन का माध्यम है और उसके कोई सामाजिक सरोकार नहीं हैं। लेकिन यह बात गलत है क्योंकि सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम होने के कारण कला के अन्य रूपों की तुलना में मानव मस्तिष्क पर तुरंत और व्यापक असर डालता है जिससे सिनेमा को सामाजिक उत्तरदायित्व के सबसे पुख्ता उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

यदि हम गंभीरता से विचार करें तो आज सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है बल्कि यह विभिन्न तरीकों से जीवन व दुनिया के प्रति हमारी सोच बनाने में, हमारी भावनाओं को प्रभावित करने में, लोगों के साथ हमारे व्यवहार जोड़ने में, हमें चिंतन करने में एक आधार प्रदान करता है। इसका हमारे व्यक्तित्व और हमारे अवचेतन मस्तिष्क पर गहरा और दीर्घकालीन प्रभाव होता है।

अभिव्यक्ति की आजादी और रचनात्मक प्रयोग के नाम पर ऐसी फिल्मों को किसी भी हाल में प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा ही चलता रहा तो समाज को बहुत ज्यादा हिंसक जानवरों का सामना करना पड़ जाएगा। मनोरंजन के साथ में सामाजिक दायित्व भी कोई चीज होती है। फिल्मों में इस तरह की हिंसा, वीभत्सता और स्त्री के प्रति इतना असम्मानजनक चित्रण समाज को कहाँ ले जाएगा इस पर भी चिंता करने की जरूरत है। हमारे समाज में क्या चल रहा है? हमारी सोच को क्या हो गया है? हम कैसे इस तरह की निगेटिविटी को प्रदर्शित करने वाली फिल्म को करोड़ों रुपए का व्यापार दे रहे हैं और महिमामंडित कर रहे हैं। इस तरह की हिंसा, अश्लीलता और मानसिक विकृतियों को मनोरंजन के नाम पर किसी भी तरह से सही नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसी हिंसा जिसमें मुख्य चरित्र ही खलनायक हो, हिंसक हो तो युवा वर्ग पर क्या संदेश जाएगा, उसकी मानसिकता पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इस पर चिंतन करने की अत्यधिक आवश्यकता है। डर युवा पीढ़ी का है जो अल्फा मेल बनने के लिए इस मानसिकता को फॉलो न करने लगे। अभिव्यक्ति की आजादी और मनोरंजन के नाम पर इसे भूल जाना किसी भी मायने में बुद्धिमानी नहीं कही जाएगी।

एक तरफा प्यार को जायज ठहराना, बदला लेने को जायज ठहराना, नायकों का अल्फा मैन के रूप में महिमामंडन यह समाज के लिए कितना घातक है इस पर मनन करने और ठोस कदम उठाने की जरूरत है। ताबड़तोड़ कमाई कर रही इस तरह की फिल्में प्रश्न खड़े करती हैं कि कैसे हम हिंसा और वीभत्सता के रसिक हो गए हैं हम। हिंसा, महिलाओं के अश्लील, असंवेदनशील, विद्रूप प्रस्तुतीकरण पर कोई प्रतिक्रिया नहीं कर रहे। सिनेमा एक शिक्षक भी है जो बहुत कुछ सिखाता भी है। फिल्में न केवल वैचारिक विमर्श वरन् सांस्कृतिक मूल्यों के प्रसार-प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि सिनेमा अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को समझे और अपनी संस्कृति, भारतीय मूल्यों से पूरित, सार्थक सन्देश देने वाली फिल्मों का निर्माण करे।

क्वार्टर नं. 410, ब्लॉक 1,
टाइप 4, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
परिसर, लालपुर, अमरकंटक-484886 (म.प्र.)

विकृत मानसिकता या कन्टेंट की कंगाली

- संदीप अवस्थी

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।

रचनाएँ - आठ पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान - देश-विदेश से पुरस्कृत।

हर इंसान के अंदर आदिम प्रवृत्ति, एक राक्षस या जानवर छुपा होता है। जो कभी-कभी बाहर आता है। परंतु परिवार के संस्कार, शिक्षा और अच्छे माहौल के साथ धीरे-धीरे डायल्यूट होकर बहुत ही कम इंपैक्ट रह जाता है। और किसी-किसी की आदिम-हिंसक प्रवृत्ति नहीं जाती, लगातार, तो उसका इलाज दिमाग के डॉक्टर, पागलखाने में होता है। और साथ ही हिंसा करने पर कानून सजा देता है। जिससे वह बेहतर बन सके। इसी एनिमल की बात उठाते हुए उसे ग्लोरीफाई और उसकी हिंसा को जस्टिफाई करने का वीभत्स प्रयास हैं निर्देशक वांगा की फिल्में। 'देखे हुए एक दृश्य का प्रभाव चेतन और अवचेतन पर लंबे समय तक रहता है। और कहीं न कहीं वह हमारे व्यवहार में उतर ही आता है। भला कम और बुरा ज्यादा।'

क्या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ भी अनर्गल, बेसिरपैर का दिखाना जायज है? क्या विरोधाभासों को बिना तर्क के बस पर्दे पर उतार देना उचित है? और नए के नाम पर हर सामान्य स्त्री-पुरुष के प्रणय की बातों को खुले में कह देना जायज है? अतिरेक हिंसा की तो बात ही नहीं की अभी तक। क्योंकि वह तो फायर में खून के रंग और आँखों के रंग को एक कर देती है। आने वाले वक्त में कितनी जानें जाएँगी समाज में और कितने लोग महिला को पाँव की जूती समझेंगे और विरोध करने पर उसके साथ हिंसा करेगे, यह सामने आने भी लगा है। भारतीय घरों के कोई भी माता-पिता अपने बच्चों को कभी भी अपराध करने को नहीं कहते। बल्कि वह तो अपना अपमान या अन्य बात को भी दबा जाते हैं कि परिवार में बिना बात के क्लेश होगा। इस फिल्म में अनेक छोटे-छोटे बहानों, कारणों से अपराध, हिंसक व्यवहार हैं जिनकी कोई गिनती नहीं है। बात हो रही है फिल्म 'एनिमल' की और उसके विकृत मानसिकता के निर्देशक, जिसे तुरंत मनोचिकित्सक की लंबी निगरानी की जरूरत है, संदीप रेड्डी वांगा की। संवाद, कहानी तो आजकल जैसी निर्देशक चाहता है वैसी ही लिखी जाती है और यहाँ तो खुद वांगा, निर्देशक, ने ही कहानी लिखी है। लिखी क्या और कैसे तोड़-मरोड़ की है, यह एक कहानीकार होने के नाते आगे बताएँगे। और इन जैसे नए निर्देशक जो बना रहे जवान, पुष्पा केजीएफ आदि फिल्म, क्या करें अपने को हिट बनाने के लिए? क्योंकि दक्षिण, सभी प्रमुख पाँच राज्यों का फिल्म मध्यम एक बड़ा उद्योग है और निर्देशक शंकर, राजामोली, मणिरत्नम, कमलहसन, लॉरेंस आदि जो पुराने और जमे जमाए हैं, सभी सक्रिय हैं। तो इन नए लोग जो असिस्टेंट डायरेक्टर, जिसका कार्य स्पॉट ब्वॉय से थोड़ा ही बेहतर होता है, बने रहते ही दस-दस साल निकाल देंगे तो फिल्म कब बनाएँगे? ऊपर से सफल होने और फेम जल्दी। फिल्म मेकिंग, कहानी, पटकथा और सबसे बढ़कर आलवार संतों और भक्ति आंदोलन की भूमि दक्षिण भारत से सब नहीं तो कुछ तो सीखना समाज, मानव और एक सकारात्मक मनोरंजन के लिए। पर नहीं जल्दी-जल्दी, अर्थात् मुश्किल से दो चार सालों की रगड़ाई और उसमें भी जोड़-तोड़ बैठाना सीखते हुए जो कुछ अधकचरा मिला, समझा उसे लेकर फिल्म मेकिंग कर दी। एक भी किताब और अच्छी कहानियों, भाषा जानी न सीखी। सीखा यह कि किसी भी तरह सक्सेस मिल जाए। हिंसा का अतिरेक, उन्मुक्त यौन दृश्य, संवाद और हर चीज को ग्लोरिफाई करके दिखाओ। भले ही स्त्री-पुरुष के संबंध हों, भाइयों में तकरार हो या अपराध हो।

दरअसल यह दक्षिण, जहाँ इतने अच्छे-अच्छे कथाकार, विद्वान हुए वहाँ की वह पीढ़ी है जो बाजारवाद और भूमंडलीकरण में ही पली, बढ़ी हुई। जिसके लिए मूल्य, मानवीयता, प्यार, अपनापन आदि कोई मायने नहीं रखते। और असफल होने से डरते हैं, घबराते हैं। यह इनके मन की हालत है। मनोविकार और सोच है जहाँ निरंतर और बिना रुके इतनी फिल्में बनती हैं कि मौलिक विषय, दृश्य और संवादों का अकाल हो गया है। तो अधिकतर उनकी फिल्मों और निर्देशकों के मन में विकृति घर कर गई है। चाहे कंटारा हो, केजीएफ

1, 2 पुष्पा, एनिमल आदि हो सभी में आपको जो दृश्य या हरकतें नई लगी वह दरअसल विकृत थीं। अत्यधिक हिंसा, बिना कोई तर्क के। यह नायक हैं या मनोरोगी? और बेहद चौकाने वाली बात यह भी है कि महिलाओं, लड़कियों की बेहद अपमानजनक स्थिति। मानसिक विकलांग नायक और निर्देशक मिलकर ऐसा वितान, नेरेटिव रच रहे, कोई भी दृश्य हो। एनिमल फिल्म में ही चार महिला पात्र मुख्य हैं। नायक की माँ, जो पति से लेकर पुत्र तक को कभी भी रोकती, समझाती नहीं दिखती बल्कि एक निर्जीव वस्तु की तरह पड़ी हुई है घर में। उसकी दो बहनें, जिन्हें सिर्फ खिलौने, पैसा देकर इस तरह पाला की वह गुड़िया सी बन गई।

विकृत मानसिकता का वांगा का नायक अपनी बहन के पति की भी हत्या कर देता है और बहन को दूसरे विवाह की सलाह इस अश्लील संवाद, 'तू अभी तीस की है, अच्छी जवान दिखती है, दूसरी शादी कर लेना' कहकर देता है। ऐसे भाई-बहन जिस फिल्म मेकर की सोच में है उसे आप क्या कहेंगे? तीसरी नायिका है, यह बड़ा दिलचस्प पहलू है निर्देशक का। या कहो दुखती रग है। वह भी सजावटी गुड़िया है जो नायक पति के हिंसक व्यवहार पर चुप ही नहीं रहती उसे अबाध सैक्स की आपूर्ति भी हर वक्त बिना उसके करती है। वह तो आखिर में कि कैसा बेसिरपैर का मैं दिखा रहा हूँ, तो वह थोड़ा विरोध करती है दूसरी औरत के साथ दस पन्द्रह दिन रहने पर। फिर कमजोर कारण, घर के भले के लिए दूसरी औरत के साथ हूँ, से वह मान भी जाती है। चौथी प्रमुख औरत खल पात्र है तो उसका कितना अधिक शोषण, यौन और मानसिक हुआ होगा, यह आप सोच सकते हैं। तो यह बेहद अपमानजनक, रीढ़विहीन महिलाओं का चित्रण कर फिल्मकार अपनी सोच स्त्रियों के प्रति दिखा देता है। इसी में नहीं बल्कि वांगा की पहली दो फिल्मों में भी महिला पात्र, दयनीय ही हैं।

असफलता हम सभी को मिलती है और हम उससे हिम्मत लेकर आगे बढ़ते हैं, परंतु इतने अधिक निगेटिव ही हो जाएँ, वह गलत है। एक सामान्य आदमी से लेकर राजकुमार हिरानी, (अभी-अभी डंकी अच्छी नहीं गई), आमिर, लालसिंह चड्ढा, सभी होते हैं पर उसका अर्थ यह नेरेटिव बनाना तो नहीं। आम आदमी तक हिम्मत दिखाता है और अच्छाई, मूल्यों का रास्ता नहीं छोड़ता। पर यह फिल्मकार, अतिरेक हिंसा आदि से असुरक्षित और मानसिक बीमार दिखते हैं। अभी इस चक्कर में कितना नुकसान सामाजिक ताने-बाने और खासकर स्त्रियों के प्रति सोच का हुआ है, उसकी गिनती ही नहीं है। हर फिल्म नायक लार्जर देन लाइफ है। भले ही वह अनाथ, राह चलता, अशिक्षित और अनपढ़ है। उसके अनुभव सीमित से भी कम हैं। लेकिन हमारे यह नई पीढ़ी के साउथ के निर्देशक, इतनी जल्दी में हैं कि कुछ भी एडवांस फिल्म तकनीक से ग्लोरीफाई करके, मीडिया से एक हाइप बनाकर फिल्म को पहले तीन दिनों में ही हिट, सुपरहिट बना लेते हैं। पर क्या कामयाब होने का दिखावा करने के लिए अतिरेक, उन्माद और महिलाओं से दोयम से भी नीचे दर्जे का व्यवहार दिखाना जायज है? यह कैसे फिल्मकार और क्या इनकी सोचा जल्द सफलता, बेशुमार पैसा और फेम इस सबके लिए एक फॉर्मूला बन गया है। अतिरेक हिंसा परिवार का बहाना महिलाओं का उपयोग, कठपुतली जैसे विकृत यौन व्यवहार। एनिमल में, बताते हुए सिर पकड़ लो, पुरुष अंडर गारमेंट्स पर चार दृश्य, फूहड़ यौन विकृति के दस दृश्य जो इतने वीभत्स ढंग से फिल्माए हैं कि उबकाई आती है और अनगिनत कसाई खाने जैसे दृश्य। इतनी कमजोर पटकथा है कि पूछो मत। जो पिता बचपन में हर गलती पर बेटे को टोकता, सजा देता, मारता है उसी बेटे को दिनदहाड़े गर्ल्स स्कूल में रायफल ले जाने पर कुछ नही कहता? माँ का पात्र, तक इसमें निर्देशक ने कमजोर दिखाया। फिर चूक पटकथा की। यह माँ सब जानती हैं। बेटी बताती होंगी पर वह बेटे को समझाना तो दूर पिता से भी नहीं कहती। वांगा जी, ऐसे घर कहाँ देखे आपने? महिला पात्र से जूते चटवाने की बात कहने की पराकाष्ठा को तो जावेद अख्तर तक शर्मनाक और लताड़ लगा चुके। पर इसके अलावा भी दूसरी महिला पात्र के साथ कैद रख के अनगिनत सेक्स वह भी हीरो द्वारा शर्मनाक है। पटकथा बताया न जानकर ऐसी बनाई है। अन्यथा दुश्मन से मिली महिला से राज निकलवाने के लिए महीना भर उसके ऊपर फिदा होना दिखाना जरूरी नहीं! ऊपर से पिता की सुरक्षा की आड़ लेकर भयावह हिंसा को जायज करना। उसी पिता के बार-बार मना करने पर भी अनगिनत खून करते जाना। वह भी एक तथाकथित हाई क्लास घर में थर्ड क्लास से भी बदतर सोच और व्यवहार रखना। यह ऐसा व्यक्ति है जिसका बचपन में ही, जब वह बहन के स्कूल में छेड़ने वाले लड़कों को गन लाकर डराता है, तभी इलाज करवाना चाहिए था। और उसी वक्त हिंसा के जुर्म में थाने में। पर वांगा जैसे निर्देशक अमूर्त रूप से कहना चाहते हैं, बेहद अमीर पिता के पुत्र होने से उसे इन सबकी छूट मिली है। पर ऐसा नहीं होता। जब तक पिता या घर में अन्य कोई भी हिंसक और गैंग वाला हो। पिता, अनिल कपूर, एक अच्छे अभिनेता ने खूब निभाया और बेबसी, क्रोध लाचारी प्रकट की परंतु एक्शन नहीं लिया।

यह निर्देशक, जो कहानीकार भी है की कमजोरी या काहिली कहो पूरी फिल्म में अपराधी मानसिकता के पुत्र को सुधारने, इलाज कराने की नहीं सोचता। सोचता तो फिल्म ही खत्म हो जाती। लॉ एंड ऑर्डर, कानून, पुलिस का कहीं कोई नामोनिशान नहीं। यह वे चंद फिल्मकार हैं जो बाहर से पढ़कर आए हैं। हॉलीवुड के थर्ड क्लास, हिंसक, विकार युक्त, खलल वाले सिनेमा को भारतीय माहौल में ढालकर परोस रहे हैं। कहाँ होता है यह सब? फिल्मकार यह भी नहीं कह सकते अब तो यह समाज में है, हम उसे ही दिखा रहे। तो फिर? फिर यह की विकृति निर्देशक के दिमाग में है जो सफल होने के लिए किसी भी हद तक जाता है। विकृत सोच परदे पर विकृति दिखाती है। निर्देशक का अप्रोच प्रारंभ से ही विकृत रहा। चाहे वह अर्जुन रेड्डी, 2016, फिर उसका हिंदी रीमेक कबीर सिंह, 2018, और अब एनिमल तीनों (पर दूसरी पहले वाली की कार्बन कॉपी थी, तो दो ही फिल्म मूल रूप से) बताती हैं–

1.स्त्रियों की बेहद लाचार, कमजोर और भोग्या दशा।

2.माता–पिता की कोई भूमिका नहीं।

3.समाज, नैतिक मूल्य और धवलता की कोई जिम्मेदारी नहीं।

4.स्टोरी लाइन और संवाद कोई भी प्रभावशाली या आज तक याद रखने लायक नहीं। यह खुद निर्देशक वांगा ने लिखे हैं।

5.हिंसा, यौन विकृति के पात्रों को बढ़ा चढ़ाकर बताना।

पहली दोनों फिल्मों में पुरुष पात्र, इसे नायक कहना भी शर्मनाक है, लड़की को बिना उसकी सहमति के जबरन हासिल करता है। छोड़ता है और जब मर्जी हो लौटकर उसे विवाहित होने पर भी पुन: ले जाता है। कबीर सिंह, अर्जुन रेड्डी यही सी ग्रेड की कहानी कहती है। बेहद चतुराई और शातिर तरीके से निर्देशक वांगा पुरुष को मेडिकल जैसे व्यवसाय में दिखाकर बचने की असफल कोशिश करते हैं। पिता माता, भाई यहाँ भी न होने के बराबर हैं। फिल्में हिट हुईं पर आज पोर्न साइट्स इंटरनेट पर सबसे अधिक देखी जाती हैं तो क्या उसे हम सिनेमा, क्लासिक फिल्म या सफल हैं तो सब देखें, मान सकते हैं क्या? नहीं और न ही यह होना चाहिए। और जिस वर्ग की स्त्री की वांगा बात करते हैं जो मेडिकल पढ़ रही या उच्च शिक्षित परिवार, एनिमल की है वहाँ ऐसी बिना दिमाग की, हर गलत बात, थर्ड क्लास व्यवहार, यौन हिंसा को खुद के साथ होते देख भी चुप रहने वाली तो कोई नहीं होती। सिवाय निर्देशक के खाली दिमाग की कोठरी के। यह अपमानजनक, बकवास, फूहड़ और नारी की छवि को तार–तार करती फिल्में नहीं बल्कि रचनात्मकता की कंगाली का प्रतीक हैं।

सदियों पहले भी नारी ऐसी नहीं थी। चूँकि दोनों एक ही कहानी का तमिल और हिंदी रीमेक हैं तो उनके बिंदु एक ही हैं। देखें और सोचें यह क्या है नहीं बल्कि क्यों है? यह सब हो क्यों रहा है? इसके पीछे सोच क्या है? और धन कौन लगा रहा है इन फिल्मों में? इनका विश्लेषण करते ही बात साफ हो जाती है। सोच तो है किसी भी तरह सफलता प्राप्त करना भले ही शॉर्टकट के चक्कर में मानसिक दिवालियापन दिखे। क्योंकि दक्षिण में वांगा जैसे औसत निर्देशक से कहीं बेहतर निर्माता निर्देशक आज अनेक हैं। मणिरत्नम, शंकर, कमल हासन, केटी राजू, बाहुबली 1, 2 आदि तक। तो ऐसे में इन कल के आए लोगों चाहे एटली, जवान फिल्म, हो या वांगा क्यों पूछेंगे? तो इन्हें यह लगा शॉर्ट कट। भले ही इस चक्कर में फिल्म माध्यम का दुरुपयोग हो जाए। इन फिल्मों में कलात्मक, याद रखने वाले दृश्य, इमोशंस, कहानी, संवाद, मजबूत पटकथा, मेलोडी कुछ भी नहीं। बस वीएफएक्स (बनावटी दृश्य जो अवास्तविक हैं की ही भरमार है)। बाजार पैसा लगा रहा है क्योंकि वह भावना शून्य है। चाहता भी यही है कि भावी, वर्तमान पीढ़ी मनमानी करे, किसी बड़े की न सुने, खुलकर यौन गतिविधियाँ करके उसके गिल्ट, अपराधबोध से मुक्त होने के लिए उसके बाजार के कब्जे में आ जाए। और जैसा बाजार कहता जाए वैसे ही वह करती चले। कोई मूल्य, संस्कार, संस्कृति और अपनेपन की भावनाओं से बाजार को कोई लेना–देना नहीं। भले ही ऐसी फिल्में उत्तरी अमेरिका के थर्ड क्लास सिनेमाओं में वर्षों पहले लगती हों पर भारत जैसे खुली अर्थव्यवस्था के देश में यह अब आ रहीं हैं। रणवीर कपूर जैसे नायक क्या सोचकर ऐसे पात्र चुनते हैं यह समझ के बाहर है।

आखिर में एक ब्रिटेन के फिल्म क्रिटिक्स की बात याद आती है, 'फिल्म खराब होती है तो निर्देशक की विकृति परंतु खराब फिल्म चल जाती है तो यह बाजारवाद के बढ़ते दखल को बताती है।' अब हमें यह देखना है कि हम अपने घर से इस बाजार और उसके दखल को कितनी जल्दी और कैसे दूर करते हैं। किताबें, विचार और सेमिनार के साथ स्त्रियों का सम्मान भी प्रभावशाली जरिया है। स्त्री को सम्मान, साथी और बराबरी का दर्जा, वास्तव में देने वाला पुरुष चाहिए और यह नहीं मिलता है तो वह अकेली ही सहजता से जीवन में आगे बढ़ती है मुस्कुराती हुई। उसे एनिमल नहीं चाहिए न ही वांगा जैसों के नायक।

804, विजय सरिता एनक्लेव,
बी ब्लॉक, पंचशील अजमेर–305001
मो.– 8279262900

रामायण महाकाव्य में संगीत के तत्व

- श्रुति जौहरी

जन्म - 15 जुलाई 1969।
जन्म स्थान - जबलपुर (म.प्र.)।
शिक्षा - स्नानकोत्तर, पीएच.डी.।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - क्षेत्रीय सम्मानों से सम्मानित।

अभी कुछ दिन पहले ही नवनिर्मित राम मंदिर में प्रभु श्री राम लला मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा अयोध्या नगरी में संपन्न हुई। इस दौरान पूरा देश भक्तिमय हो गया एवं राममय संगीत चारों दिशाओं में गुंजायमान हो गया था। कुछ भजनों का श्रवण निरंतर होता रहा।

एक संगीत संवेदनशील मन के अधिकारी होने के नाते, इन भजनों को सुनते-सुनते मेरे मन मस्तिष्क में कई तरह के विचारों की रेलमपेल लग गई। रामकथा हमारी सांस्कृतिक सभ्यता की सबसे लोकप्रिय कथा है जिसका पठन, मनन, गायन, वादन भारतीय इतिहास के हर काल खंड में साधारण जनमानस, संत एवं विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। इनमें महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण सर्वोत्तम कृति है, जिसमें श्री राम के जीवन-काल का न केवल संवेदनशील चित्रण किया गया है अपितु काव्य और संगीत की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ उत्कृष्ट है। परिणामस्वरूप रामायण अर्थात् श्री राम की जीवन गाथा को लेकर प्राचीन काल से अनेक काव्य, नाटक, भजन, ध्रुपद, ठुमरी, कीर्तन इत्यादि की रचना एवं गायन किया गया है। भारतवर्ष ही नहीं, भारत के उपनिवेशों-सुमात्रा, जावा, बाली आदि देशों में भी श्री राम के मंदिर उपस्थित हैं। यद्यपि इनमें से बहुत से देशों के नागरिक धर्मान्तरित होने के पश्चात् इस्लाम धर्म का पालन करने लगे हैं। तथापि इनके नाटक, नृत्य एवं गान इत्यादि आज भी रामायण एवं महाभारत पर आधारित होते हैं। इसी प्राचीनतम राम-कथा अर्थात् वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण एवं संगीत की संगम गाथा के कुछ उद्धरण आपके समक्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा इस लेख में की गई है।

रामायण में 'समाज' शब्द का प्रयोग :- रामायण में 'समाज' शब्द का तात्पर्य वर्तमान से भिन्न है। रामायण काल में गीत, वाद्य, नृत्य का सामुदायिक रूप से उत्सव होता था। ऐसे उत्सव की पारिभाषिक संज्ञा 'समाज' है। वैसे तो समाज शब्द का साधारण अर्थ मनुष्यों का समुदाय है। किन्तु विशिष्ट अर्थ में गीत, वाद्य, नृत्य और उत्सव के लिए जो समुदाय एकत्र होता था उसे 'समाज' कहते थे। समाज शब्द के अर्थ को दर्शाता हुआ निम्न श्लोक अयोध्याकाण्ड के 51 वें सर्ग के 23 वें श्लोक, जिसमें लक्ष्मण अयोध्या का वर्णन करते हुए कहते हैं -

आरामोद्यानसम्पन्नां समाजोत्सव शालिनीम्।
सुखिता विचरिष्यन्ति राजधानीं पितुर्मम्॥

श्री रामचंद्र जब वन में रात्रि प्रहर सो रहे थे तब लक्ष्मण जाग कर उनकी रक्षा कर रहे थे। गुह ने लक्ष्मण से कहा कि आप भी सो जाइए तब लक्ष्मण गुह से कहते हैं कि वे सो नहीं सकते। राम के बिना पिताश्री दशरथ और माता कौशल्या जीवित न रहेंगे। यदि पिताश्री जीवित रहे तो उनको और उनकी राजधानी अयोध्या को हम लोग पुन: देख पाएँगे। बाग बगीचों से संपन्न 'समाज' उत्सव से संयुक्त मेरे पिता की राजधानी अयोध्या में वहाँ के सुखी निवासी विचरण करेंगे।

रामायण में संगीत इतिहासकारों ने रामायण महाकाव्य की रचना का काल ईसा से लगभग 500 वर्ष पूर्व का बताया है। इस काल को वीरगाथा काल भी कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इक्ष्वाकु वंश के वीर महाराजा, श्री राम की वीरता संबंधी गाथाएँ अयोध्या के 'चारण एवं सूत' (गायक समुदाय) पद्य में निबद्ध कर वर्षों से गाते रहे होंगे। महर्षि वाल्मीकि ने इन कथाओं का विस्तार किया और 24,000 श्लोकों को एक अत्युत्तम महाकाव्य का रूप प्रदान किया। संस्कृत विद्वान आर्थर एंथोनी मैक्डोनल (A Vedic Grammar for Students) ने मुक्त कंठ से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि समस्त विश्व के साहित्य में भी ऐसा ग्रंथ नहीं है जिसने लोगों के जीवन एवं चिंतन को इतना प्रभावित किया है जितना रामायण ने किया।

इस महाकाव्य की अप्रतिम ख्याति, उसका गायन, नृत्य एवं नाट्य कलाओं में नित दर्शन, इस बात का प्रतीक हैं कि इस महान कृति में न केवल चिंतन अपितु कला सौंदर्य भी भरपूर था एवं समस्त कला साधकों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण विषय था।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के प्रमुख महानायक जैसे स्वयं श्री रामचंद्र, लंका-नरेश रावण, महावीर हनुमान, किष्किंधा-नरेश सुग्रीव इत्यादि को संगीत विद्वान के रूप में प्रस्तुत किया है। समस्त महाकाव्य में ऐसे अनेक प्रकरण हैं जहाँ गीत-संगीत, वाद्य-वृन्द, नृत्य-नाटिकाओं का सुन्दर चित्रण एवं सांगीतिक तत्वों का सूक्ष्म विवरण है।

किष्किन्धाकाण्ड के 28 वें सर्ग में श्लोक 36 और 37 इस प्रकार हैं-

षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवंगमोदीरीतकण्ठतालम्।
अविष्कृतं मेघमृदमृदङ्गनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ।।
क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः
व्यालम्बबहा‌र्भरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्।।

(श्री रामचंद्र किष्किंधा-वन का वर्णन करते हुए लक्ष्मण जी से कहते हैं-'हे लक्ष्मण, देखो भ्रमरों का गुंजार वीणा के मधुर स्वर जैसा है। मेंढक मानो अपने कंठ से ताल के बोल-बोल रहे हैं। मेघ का गर्जन मृदंग के नाद जैसा सुनाई दे रहा है। लगता है वन में संगीत चल रहा है। और भी देखो, ये मयूर संगीत का कैसा दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। इन लम्बी-लम्बी चोटियों वाले मयूरों में से कुछ तो नाच रहे हैं, कुछ गा रहे हैं, कुछ वृक्षों के अग्रभाग में बैठे हुए इस नृत्य और गान का आनंद ले रहे हैं। लगता है वन में संगीत चल रहा है।)

इसी प्रकार लंकापति रावण के संगीतानुराग से संबंधित अत्यंत सुन्दर वर्णन महाकाव्य में दृष्टिगोचर होते हैं।

जब हनुमान पहली बार लंका गए तो रात्रि भ्रमण में लंका नरेश के शयनकक्ष के वृत्तांत का रामायण में सुन्दर चित्रण है। लंकापति नरेश एवं भार्या मंदोदरी अपने शयनकक्ष में संगीत का आनंद ले रहे थे। दासियों द्वारा वीणा वादन एवं गायन से वातावरण सुमधुर ध्वनियों से परिपूर्ण था। कुछ दासियाँ वीणा वादन करते-करते वीणा को ही शैया बनाकर निद्रालीन थीं। सुन्दरकाण्ड के 10वें सर्ग के 41वें श्लोक में इस प्रकरण का उल्लेख कुछ इस प्रकार किया गया है -

विपञ्चीं परिगृह्‌ यान्या नियता नृत्यशालिनी।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनि।।

हनुमानजी ने लंका जाकर रावण के महल को देखा। इस स्थल पर महर्षि वाल्मीकि जी ने महल का अति-सुन्दर वर्णन किया है। साथ ही रावण के महल की उन सुन्दरियों का भी वर्णन है जो भिन्न-भिन्न वाद्यों को लिए सोई हुई थीं।

युद्धकाण्ड के 44वें सर्ग के 12वें श्लोक में भेरी, मृदंग और पणव तीनों एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। इसलिए इस श्लोक का उदाहरण पर्याप्त होगा -

ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां व निःस्वनः।
शंङ्खनेमिस्वनोन्मिश्रः संबभूवाद्धुतोपमः॥

भेरी, मृदंग और पणव वाद्यों का भी दुंदुभि के समान रण में योद्धाओं के उत्साहवर्धन के लिए प्रचुर उपयोग होता था। मृदंग और पणव का गान के साथ भी प्रयोग होता था।

इसी प्रकार किष्किन्धाकाण्ड में एक सांगीतिक वर्णन ऐसा आया है कि जब लक्ष्मण सुग्रीव को अपने कर्तव्य की याद दिलाने जाते हैं तो उनको उसके महल में मधुर संगीत सुनने को मिलता है। किष्किन्धाकाण्ड के 33 वें सर्ग में श्लोक 21 इस प्रकार है -
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम्।
तंत्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम्॥

अर्थात् सुग्रीव के महल में घुसते ही लक्ष्मण ने वीणा के साथ उसके मधुर स्वरों में मिले हुए गीत सुने जिसके शब्द और ताल उन स्वरों से समायुक्त थे। रामायण काल में संगीत की दो धाराएँ प्रचलित थीं- देशी संगीत एवं मार्गी संगीत।

देशी संगीत :- भिन्न-भिन्न प्रदेश में वहाँ के लोगों की रुचि के अनुसार अथवा उस प्रदेश की रीति के अनुसार गाया जाता था और वहाँ के लोगों का मनोरंजन करता था, वह देशी-संगीत के नाम से प्रचलित था।

मार्गी संगीत :- मार्ग संगीत रामायण काल में उच्च्य स्थान पर था और यहाँ मार्ग संगीत को समझना अनिवार्य होगा। हमारे मन मस्तिष्क को अध्यात्म की ओर आकृष्ट करता हो वह मार्गी संगीत है। यह विद्या मात्र इन्द्रियों की तृप्ति हेतु नहीं है। इसके गायन में विज्ञान और चिंतन का सम्मिश्रण है। यह विद्या वेदों के मंत्रोच्चार से उपजी है। अत: जो देवताओं के लिए अत्यंत इष्ट हो, गंधर्वों को प्रिय हो, वह मार्ग अथवा गन्धर्व संगीत है।

ऐसा सर्वविदित है कि महर्षि वाल्मीकि के रामायण महाकाव्य की रचना मूलत: गद्य रूप में थी, जिसमें मार्गी संगीत के समस्त तत्त्व जैसे छंद, श्रुति-स्वर, मूर्छना, ताल, लय इत्यादि समाहित थे। उन्होंने स्वयं राजा राम के दोनों सुपुत्र 'लव-कुश' को गीत-संगीत की विद्या में पारंगत कर रामायण महाकाव्य का प्रचार-प्रसार किया। ऐसी मान्यता है कि 'लव-कुश' की रामायण स्तुति की सांगीतिक परंपरा तत्पश्चात् 'कुशीलव' नामक 'रामकथा कारों' की प्रेरणा रही।

इस तरह उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रामायण महाकाव्य उत्कृष्ट संगीत से परिपूर्ण था। यह मार्गी संगीत था जो सुनने वाले को रामकथा के साथ-साथ भक्ति, अध्यात्म और मोक्ष की ओर अग्रसर करता है।

हाल ही में हुए राम मंदिर में रामलला की मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के अवसर पर सारा देश भक्ति संगीत से ओतप्रोत हो गया था। जगह जगह राम-भजन सुने-गाए गए। अगर हम इन्हें सांगीतिक दृष्टि से देखें तो इनकी गद्य एवं गेय सामग्री-साधारण ही थी। अधिकतर भजन शब्दों की तुकबंदी का एक संग्रह थे जो तरन्नुम (simple melody) में निबद्ध थे। यद्यपि इस संकीर्तन का भी भक्ति संगीत में अपना स्थान है, किन्तु रामकथा से संबंधित नृत्य, नाट्य एवं संगीत की अन्य उत्कृष्ट शैलियाँ को भी पुनर्स्थापित करने का यह सुनहरा अवसर है और अयोध्या नगरी इसका केंद्र बने तो पुन: मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के सत्चरित्र का यश समस्त विश्व में समरसता से प्रतिध्वनित हो जाएगा।

सी -1 /603, पारस अर्बन पार्क,
ई -8 एक्सटेंशन, गलु मोहर कॉलोनी,
भोपाल-462039 (म. प्र.)
मो.-98400 83400

दिनकर के साहित्य में आध्यात्मिक पक्ष

– गौरव कुमार गुप्ता

जन्म – 3 फरवरी 1994।
जन्मस्थान – भोपाल (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – एक पुस्तक प्रकाशित।

मनुष्य के अंतस में जब से सोचने-समझने की शक्ति का आविर्भाव हुआ है, तभी से उसे अपने पास एक परालौकिक शक्ति का आभास भी हुआ, जो उसे बाहरी जगत में भी अपने भीतर की ओर देखने की ऊर्जा देती है। इसी शक्ति को वह कभी अपने अंतस के गहन तिमिर में खोजने का प्रयास करता है तो कभी बाहरी जगत में संसाधनों के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करता है। मनुष्य द्वारा तरह-तरह के क्रियाकलाप उस अदृश्य शक्ति के साक्षात्कार के लिए आदिकाल से किए जाते रहे हैं। आत्मा और परमात्मा के मिलन की जिजीविषा हर समय का आदमी करता ही है। और जब कोई चिंतक उस विशेष स्थिति का साक्षात्कार कर लेता है तब वह स्थिति उस चिंतनकर्ता मनुष्य के लिए मोक्ष की स्थिति होती है। विभिन्न भाषाओं में इस 'मोक्ष' की स्थिति को अलग-अलग शब्दों, अलग-अलग परिभाषा में बाँधने का प्रयास किया गया है परंतु उसका मुख्य उद्देश्य एक ही होता है। उस अगोचर, अदृश्य शक्ति जिसे ईश्वर भी कहा जाता है, को साधने के प्रयास में मनुष्य एक कारक के ऊपर विशेष रूप से निर्भर करता है जिसे 'अध्यात्म' कहा जाता है। यह अध्यात्म, बाहरी जगत से भीतरी मन तक की यात्रा करने का सबसे बड़ा साधन है। क्योंकि आत्म और परमात्म एक दूसरे के पूरक होते हैं तब अध्यात्म आत्म को जानने में सहायक कारक सिद्ध होता है, और जब मनुष्य आत्म को जानने में सफल होता है तब परमात्मा को स्वयं सिद्ध भी कर लेता है।

चूँकि पृथ्वी पर मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जिसकी सोचने समझने की शक्ति अन्य प्राणियों से बहुत आगे तक गति प्राप्त कर चुकी है और मनुष्य ही ऐसा प्राणी भी है जो दैनिक क्रियाओं के अलावा अन्य बाहरी और भीतरी तत्त्वों के बारे में चिंतन भी कर सकता है। हम जानते हैं कि आदिकाल से ही मनुष्य द्वारा विभिन्न कलाओं का विकास भले ही बाहरी जगत में आर्थिक एवं सामाजिक संसाधन जुटाने के लिए किया जाता रहा हो, परंतु उसका भीतरी कारण मात्र एक ही होता है और वह भीतरी कारण 'आत्म-संतुष्टि' होती है। यह आत्मीय संतुष्टि मनुष्य को इस कला के आध्यात्मिक पक्ष के द्वारा प्राप्त होती है। मानवीय सभ्यता में लगभग हर दर्शन, हर कला अपने अंतिम छोर पर आध्यात्मिक पक्ष से जुड़ती हुई ही दिखाई देती है।

भारतीय सभ्यता का जब से सुगठित रूप से विकास हुआ है तभी से उसने ज्ञान एवं कलाओं की परंपराओं को स्थापित करने का कार्य किया है और आदिकाल से भारतीय ज्ञान एवं कला परंपरा मुख्य रूप से सदैव ईश्वर प्राप्ति का साधन ही रही हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि भारत का आध्यात्मिक पक्ष पूरे विश्व में सबसे ज्यादा प्राचीनता को प्राप्त है। लगभग 3000 वर्ष पूर्व से ही वैदिक साहित्य में आध्यात्मिकता के संदर्भ लिखे जाने लगे थे और यह आध्यात्मिक यात्रा वर्तमान साहित्य तक अनवरत जारी है। उस अज्ञात के प्रति जिसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, उसे प्राप्त करने के लिए तरह-तरह की साधना, तरह-तरह के ज्ञान, तरह-तरह के चिंतन भारत में समय-समय पर लिखे जाते रहे हैं। और यह चिंतन, दर्शन वर्तमान में भी उसी गति से अपना कार्य कर रहे हैं।

जैसा हमें ज्ञात है कि साहित्य पक्ष ही वह सबसे प्रबल साधन है जिसके द्वारा विभिन्न तार्किक-वाद, विभिन्न दर्शन, विभिन्न चिंतन

लिखे गए हैं एवं उन्हें मानव ने ईश्वर प्राप्ति का साधन बनाया है। साथ ही इसी लिखित साहित्य के द्वारा आम जनमानस तक अपनी बुद्धिमत्ता को पहुँचाया भी है। आधुनिक भारत में ऐसे कई विशिष्ट साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने अपने अंतस को जाग्रत करने हेतु आध्यात्मिक पक्ष पर अपनी लेखनी को बहुत सटीक रूप से चलाया है, और आम जनमानस जिसे बाह्य जगत की भागदौड़ से तनिक भी विश्राम नहीं, उस तक पहुँचाया भी है। उनमें से वर्तमान साहित्य के एक प्रबल हस्ताक्षर श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' जी हैं जिन्होंने न केवल अपने साहित्य लेखन को भारतीय समाज में सिद्ध किया है बल्कि आध्यात्मिक रूप में भी अपनी कविताओं, गीतों, पदों, छंदों को लेकर आसान भाषा में ईश्वरीय तत्व को प्राप्त करने के साधन सरल भाषा में समझाए भी हैं। उनके कविता संग्रह 'प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ' से उद्धृत 'उलझन' कविता की निम्न पंक्तियाँ देखने पर यही समझ आता है–

'नील नभ में हँसता यह कौन
तिमिर की मदिरा का कर पान?
तरल सोने की वर्षा बीच
प्रकृति करती क्यों हँस-हँस स्नान।' (प्रण-भंग तथा अन्य कविताएँ 1928-29, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 156)

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि अपनी जिज्ञासा जो कि किसी 'उलझन' से जन्मी है, को प्रकट करता है। वह जानना चाहता है कि जो भी प्रत्यक्ष है, वह अप्रत्यक्ष की भावनाओं से क्यों भरा है। वह जो भी प्राकृतिक क्रियाकलाप देखता है वह उसे किसी अन्य अदृश्य घटक की ओर ही इंगित करते हुए क्यों दिखाई देते हैं। दिनकर का आध्यात्मिक पक्ष इतना विस्तृत रूप लेकर चलता है कि वह कहीं अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं, तो कहीं उपासक के रूप में लिखते हैं–

'इधर सोच में रहा कि खोलूँ पट किस देवालय के?
जीवन यान उधर भागा जाता है निकट प्रलय के' (वही, पृ.157)

अपनी उपासना में अपने जीवन की क्षण-भंगुरता का उन्हें आभास बना रहता है इसलिए वे भाव-विह्वल हो उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखते हैं। दिनकर कभी याचक बन अपने परमात्मा को प्रियतम रूप में मानकर उससे याचना करते हुए भी दिखाई देते हैं। वे अपने नयनों में अपने प्रिय ईश्वर के स्वप्न रूपी साक्षात्कार प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए लिखते हैं–

'दृग बंद हों तब तुम सुनहले स्वप्न बन आया करो
अमितांशु! निद्रित प्राण में प्रसरित करो अपनी प्रभा?
प्रियतम! कहूँ मैं और क्या?' (रेणुका 1934, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 159)

जहाँ उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि के याचक भाव को इंगित करती हैं वहीं अग्रलिखित कविता में दिनकर अपने इष्ट देव से कुछ माँगते हुए भी अपनी कशेरुक सीधे रखना चाहते हैं। वे उलाहना भरे भाव में अपना संबोधन भी बिना याचक के भाव का ही रखते हुए निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखते हैं :-

'क्या दोगे देवता मनुज को?
स्नेह शक्ति या सोना
तन में मन का विलय कि
मन में ही तन का लय होना।' (प्रण-भंग तथा अन्य कविताएँ 1928-29, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 167)

दिनकर कभी उस अगोचर ईश्वर को प्राप्त करने के लिए स्वयं के मन को ही शांतिपूर्वक बोध कराने का प्रयत्न करते हैं। वे अपने अन्त:करण को आमंत्रण देते हुए उसे क्षण भर रुकने का कहते हैं। वे अपनी कविता में लिखते हैं –

'चलना ही चलना केवल क्या
सुन लो कुछ जब तब रुक कर
निर्झरिणी कहती कि देख लो
अपने को मुझ में झुक कर।' (मृत्ति तिलक 1949, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 167)

उपर्युक्त पंक्तियों में दिनकर के अंतस में बैठा वाचाल यात्री स्वयं को किसी अप्रकट प्रेरणा से रुकने के लिए कह रहा है और उसे शांति रूपी नदी अर्थात् अंदर बैठे हुए ईश्वर में झाँक लेने को कहता है। वह स्वयं को संबोधित कर भागदौड़ भरे जग में क्षणभर रुक कर अपने पास की जीवंत शक्ति को समझ लेने उसे अनुभव करने का प्रयास करने के भाव प्रकट करता है।

मनुष्य सभी रसों का स्वामी है कभी वह शांति में अध्यात्म देखता है, कभी वह अपने अंतस के ओज स्वर के द्वारा उस अगोचर को देखने का प्रयत्न करता है। कभी याचक हो जाता है तो कभी विवश होकर थका-हारा ईश्वर को अप्रत्यक्ष रूप से उचारता है व उसे उलाहना भी देता है। दिनकर की निम्न लिखित पंक्तियाँ देखने पर यही समझ आता है कि वे किसी निराश भाव से अपने ईश्वर को पुकारते हुए प्रतीत हो रहे हैं :-

'तुम बसे नहीं इनमें आकर

ये गान बहुत रोये।' (नील कुसुम 1953, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 175)

कभी उन्हें आनंद का अतिरेक होता है और वह किसी असीम-आनंद की पराकाष्ठा का अनुभव करते हैं और इसी मन:स्थिति को उनकी कविता यह भाव प्रकट करने का प्रयास करती दिख रही है -

'मीठा बहुत उल्लास यह

मादक बहुत अविवेक यह

निस्सीम नभ सागर अगम

आनंद का अतिरेक यह।' (नील कुसुम 1954, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 177)

अपने गीतों, छंदों, पदों, कविताओं में दिनकर की आध्यात्मिक प्रकृति बहुत जगह देखी जा सकती है परंतु दिनकर अपनी आध्यात्मिकता छंद मुक्त कविता एवं क्षणिकाओं में भी व्यक्त करते रहे हैं। अग्रलिखित उदाहरण इसका सटीक प्रमाण है -

'हमारे आध्यात्मिक व्यक्तित्व का / केंद्र कहाँ है?
वह गहराई कौन सी है, जहाँ / संत बैठकर परम ध्येय को साधते हैं
समस्त सृष्टि के साथ अपने को / अदृश्य धागों में बाँधते हैं?' (प्रण-भंग तथा अन्य कविताएँ, क्षणिकाएँ 1969, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ.181)

ईश्वर को कबीर जैसे अप्रतिम साहित्यकार द्वारा कभी निर्गुण रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, तो कभी तुलसीदास, सूरदास जैसे महाकवियों के द्वारा सगुण रूप में राम, कृष्ण जैसे महामानवों में अवतारवाद की भावना तिरोहित कर देखा जाने लगता है। भारत को राम का पर्याय कहा जाए या राम को भारत का पर्याय कहा जाए तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी। राम के नाम में अध्यात्म भी है, दर्शन भी है और अनूठा चिंतन भी। यही बात सभी प्रमुख कवियों की भाँति दिनकर ने भी दोहराई है। उनकी निम्न लिखित पंक्तियाँ राम नाम की महिमा का कम शब्दों में बृहद बखान करती हुई दिखाई देती हैं :-

'आँख मूँद बेखौफ/ राह तय किये चलो

कदम कदम पर नाम / राम का लिये चलो।'? (प्रण-भंग तथा अन्य कविताएँ 1969, दिनकर रचनावली-3, सं. नंदकिशोर नवल एवं तरुण कुमार, पृ. 182)

उपर्युक्त उदाहरणों से हम देख सकते हैं कि रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं, गीतों, छंदों में आध्यात्मिक पक्ष प्रखर रूप से दिखाई देता है। जिस प्रकार क्षितिज में सूर्य उदीयमान होकर पृथ्वी को अपना ताप भेजता है जिससे जीवन घटित होता है। उसी प्रकार दिनकर जी भी अपनी आध्यात्मिक कविता रूपी ऊष्मा आम जनमानस तक पहुँचाते हैं। उनके आध्यात्मिक पक्ष हर रस, हर मन:स्थिति से जुड़े हुए होते हैं। वे कभी जिज्ञासु बनकर ईश्वरीय प्रकृति के प्रति अपनी उलझन प्रकट करते हैं, तो कभी याचक बनकर अपनी प्रार्थना करते हुए दिखाई देते हैं। कभी वह प्रखर साधक के रूप में अपनी माँग स्पष्ट रूप से लिखते हैं, तो कभी निराश रूप दिखाकर अपने मन का रुदन प्रकट करते हैं। कभी वे सबकुछ आनंद समझ लेते हैं तो कभी सब कुछ नश्वर कहकर सारी मानवीय चेष्टाओं को धता-बता देते हैं। हिंदी साहित्य में आदि कवि वाल्मीकि से लेकर रामचरितमानस के रचयिता महाकवि तुलसीदास, सूरदास जी की आध्यात्मिक-दृष्टि जिस प्रकार सुदृढ़ रूप से दिखाई देती है, उसी प्रकार दिनकर जी की विभिन्न रसों, विभिन्न भावों से परिपूर्ण आध्यात्मिक-दृष्टि उन्हें एक महाकवि की श्रेणी में लाकर खड़ा करती है।

हिन्दी विभाग
अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय
मुंगलिया कोट, सूखी सेवनिया, विदिशा रोड
भोपाल - 462038 (म.प्र.)
मो . 9074166883

जनजातीय जीवन में राम

- निशा यादव

जन्म स्थान - अलवर (राज.)
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।

सहस्त्राब्दियाँ बीत जाने के बाद आज भी आदर्श की प्रतिमूर्ति रघुवंशी राम भारतीय संस्कृति के निकष के रूप में विराजमान हैं। ऐसा क्यों है? इसके पीछे कोई गहरा रहस्य नहीं छुपा है। सिर्फ राम की 'सर्वजन हिताय' दृष्टि, समन्वयात्मक दृष्टिकोण, विवेकशीलता, नैतिकता, कर्तव्यपरायणता व कर्मठता है जो आज भी मानव-मात्र के लिए अनुकरणीय है एवं राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम बनाती है। यही कारण है कि आज सदियों बाद हम सभी प्रकार की भौतिक एवं आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित होकर भी त्रेतायुग में राम द्वारा संस्थापित और संचालित राम-राज्य को अपना आदर्श मानकर आगे बढ़ते हैं जिसमें हमें राम प्रदत्त सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, भौगोलिक समन्वय और एकता के अभूतपूर्व एवं विराट प्रमाण मिलते हैं। जनजातीय जीवन में भी राम तथा रामकथा विभिन्न रूपों में प्रचलित है जो सांस्कृतिक विविधता का परिचय देती है। इन जनजातियों में रामकथा की अभिव्यक्ति वाचिक परम्परा, लोकगीत, जनश्रुतियों व चित्रकला विभिन्न माध्यमों से तो हुई ही है साथ ही कथानक के आधार पर भी जनजातीय समाज में प्रचलित रामकथा में वैविध्य देखने को मिलता है जिससे कि भारतीय संस्कृति को समझने का एक नया दृष्टिकोण भी मिलता है क्योंकि भाषा, संस्कृति व रहन-सहन में भिन्नता रखते हुए भी ये जनजातीय समुदाय भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं।

जनजातीय जीवन में राम :-धार्मिक, सांस्कृतिक व भाषिक विविधता की आगार इस भारत भूमि पर कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों का है। देश के उत्तरी-पूर्वी, मध्य क्षेत्र व दक्षिण क्षेत्र में मुख्यत: इन जनजातियों का बाहुल्य देखने को मिलता है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीनकाल में विदेशी बर्बर आक्रमणकारियों से बचने के लिए जंगल व पहाड़ इनकी शरण-स्थली बने इसीलिए इनको वनवासी अथवा गिरिजन भी कहा जाता है। 'देश के प्रत्येक भाग में ये आदिम जातियाँ किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं। इन जातियों को विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे गिरिजन, आदिवासी, वनवासी, कबीले, जनजाति, आदिम जाति आदि।' **(आर. डी. सोनकर, उत्तर भारत की आदिम जातियाँ, विषय प्रवेश, पृ.-1)**

जनजातियों को लेकर एक मत यह भी है कि आर्यों के आने से पूर्व यहाँ द्रविड़, ऑस्ट्रिक व नेग्रीटों आदि जातियाँ निवास करती थीं। समय-समय पर आर्यों से हुए संघर्ष से इनका अधिकांश भाग जंगलों में जाकर रहने लगा और उसी को अपना निवास स्थान बना लिया। रामधारी सिंह दिनकर इन जनजातियों का संबंध सिर्फ ऑस्ट्रिकों से बताते हुए 'संस्कृति के चार अध्याय' में उल्लेख करते हैं कि 'हमारे देश में जो भी वनवासी जातियाँ हैं संभावना यही है कि वे आग्नेय खानदान की हैं।' जंगलों में रहने वाली यह बड़ी आबादी शिकार करके, कंद-मूल खाकर व खेती-बाड़ी कर जीवन-यापन करती है। इनकी भाषा, संस्कृति व रीति-रिवाज मुख्यधारा के समाज से भिन्न होते हैं। आधुनिक शिक्षा, चिकित्सा व कृषि तकनीक से परे ये प्राकृतिक संपदा से ही जीवनयापन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करते नजर आते हैं। खान-पान, रहन-सहन व जीवनयापन के अलग तौर-तरीकों के बावजूद भी कुछ ऐसी धार्मिक, सांस्कृतिक परंपराएँ व मानव मात्र की स्वभावगत आस्थाएँ इस आदिवासी समाज में अवस्थित हैं जो मुख्यधारा के समाज में भी देखने को मिलती हैं।

आदिवासी समाज और मुख्यधारा के समाज दोनों में जो कुछ समानताएँ मिलती हैं उनमें एक तत्व 'राम' भी है। भारतीय या हिन्दू संस्कृति में आज जो सामासिकता एवं समन्वयात्मकता देखने को मिलती है राम-कथा उसका अप्रतिम उदाहरण है। रामायण जहाँ एक ओर भौगोलिक एकता को प्रकट करती है वहीं संस्कृतियों का मिलन भी इसमें झलकता है। अयोध्या से लेकर लंका और किष्किंधा तक को एक सूत्र में पिरोते हुए आदिकवि वाल्मीकि तीन कथाओं के, जिनके पात्र क्रमश: राम, रावण और हनुमान हैं माध्यम से तीन संस्कृतियों के मिलन का महाकाव्य रचते हैं। 'महाकाव्यों की रचना तब संभव होती है, जब संस्कृतियों की विशाल धाराएँ किसी संगम पर मिल रही हों। भारत में संस्कृति-समन्वय की जो प्रक्रिया चल रही थी, ये दोनों

काव्य (रामायण व महाभारत) उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। रामायण में इस प्रक्रिया के पहले सोपान हैं।' **(रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ.-76)**

रामकथा अथवा राम के चरित का प्रकाश भारत के गाँव, कस्बों अथवा नगरीय सभ्यता तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसकी किरणें उन गहन गिरि-कानन में भी पहुँचीं जहाँ आदिवासी आबादी निवास करती है। राम और रामकथा आदिवासी लोकगीतों, नृत्यों, एवं दंतकथाओं में गहराई से व्याप्त है, यहाँ तक की कुछ आदिवासी जनजातियाँ अपने आपको रामायण के विभिन्न पात्रों के वंशज के रूप में भी स्वीकार करती हैं। 'सिंहभूमि के भुइयाँ अपने को हनुमान का वंशज बताते हैं। कोल शबरी को अपनी पूर्वजा मानते हैं। रायपुर के गोंड रावण को अपना पूर्वज बताते हैं। कारबी जन अपने को बाली-सुग्रीव की संतान बताते हैं साथ ही असम की तीवा जनजाति अपने को सीता की संतान बताती है।' **(डॉ. मोहन गुप्त, जनजातीय जीवन और साहित्य में राम, साक्षी, अंक 48, अयोध्या शोध संस्थान की अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका, पृ.-98)**

'जो उराँव जाति के लोग हैं, वे रामायण के उप-नायक महाराजा सुग्रीव आदि वानरों के ही वंशज हैं। इतिहासकारों ने भी अनेक खोजों के पश्चात् लोगों के इस काल्पनिक कथन की पुष्टि की है।'

(जनक अरविन्द, भारत के आदिवासी, पृ.-125)

राम के विराट व्यक्तित्व का यश चहुँओर ईस्वी पूर्व फैल चुका था। इसके प्रमाण हमें बौद्ध एवं जैन धर्म-ग्रंथों में मिलते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि राम या रामायण प्राग-बौद्ध हैं। रघुपति राम के चरित ने न केवल देशकाल की सीमाओं को ही लाँघा बल्कि उनके विराट एवं कांतिमय व्यक्तित्व ने धार्मिक एवं भाषाई सीमाओं को लाँघते हुए वैश्विक पटल पर अपने पुरुषोत्तम होने को सिद्ध किया। जैन धर्म में राम 63 श्लाका पुरुषों में गिने जाते हैं। बौद्ध धर्म की जातक कथाओं में भी रामकथा को स्थान मिला है जिसमें राम बोधिसत्व माने गए हैं और बुद्ध को राम का पुनरावतार माना है। राम-चरित को लेकर आर्य-आर्येत्तर सभी भाषाओं में काव्य-महाकाव्यों की रचना तो हुई है, लेकिन जिस प्रकार विभिन्न भाषाओं व धर्मों में रचित रामायण, कथानक के आधार पर वाल्मीकि रामायण से भिन्न हैं ठीक उसी तरह आदिवासियों में प्रचलित रामकथा में भी कथानक व पात्रों के आधार पर भिन्नता देखने को मिलती है जैसे कोरकू जनजाति में रावण व मेघनाथ को लेकर अलग तरह की मान्यता है-'इनकी मान्यता है कि रावण के कहने पर ही महादेव ने इनकी सृष्टि की इसलिए ये 'होली' त्यौहार पर रावण की पूजा करते हैं और त्यौहार में रंग खेलने के लिए आमंत्रित भी करते हैं। कोरकू जनजाति मेघनाथ-पूजक भी है। प्रत्येक गाँव में मेघनाथ की पूजा के लिए मेघनाथ खम्भ होते हैं।' **(वसंत निरगुणे, महेश चंद्र शांडिल्य, कोरकू, मध्यप्रदेश की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य, सम्पदा, पृ.-45)**

भारत के सबसे बड़े त्यौहार 'दीपावली' के नायक हैं 'राम।' दीपावली 14 वर्षों के बाद राम के अयोध्या लौटने की खुशी में मनाई जाती है लेकिन, देश के विभिन्न हिस्सों में फैले जनजातीय समूह अपनी प्राचीन मान्यताओं व परंपराओं के अनुरूप विविध प्रकार से दीपावली मनाते हुए अपनी अद्भुत संस्कृति का परिचय देते हैं। छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्र में जहाँ दीपावली को 'देवारी' कहा जाता है वहीं दण्डकारण्य के बस्तर में 'दियारी' कहा जाता है जो पूरा डेढ़ महीना मनाई जाती है। यहाँ के आदिवासी 'दियारी' पर लक्ष्मी की मूर्ति पूजा न करके, खड़ी व पकी फसल को लक्ष्मी के रूप में पूजते हैं। हल्बी या हल्बा छत्तीसगढ़ में निवास करने वाला एक आदिवासी समुदाय है। इस जनजाति की भाषा हल्बी है। बस्तर निवासी लाला जगदलपुरी ने हल्बी बोली में कविता व लोककथाएँ लिखी हैं। लाला जगदलपुरी 'दियारी तिहार' के बारे में कहते हैं 'बस्तर भूमि के वनवासी समाज की अपनी अलग दीपावली मनती है, जिसे 'दियारी तिहार' कहा जाता है। बस्तर में 'दियारी तिहार' के अंतर्गत लक्ष्मी पूजन नहीं होता। उनका लक्ष्मी पूजन अलग होता है। धान की तैयार फसल को वे लोग लक्ष्मी मानते हैं और धूमधाम के साथ धान की बालियों को खेत से लाकर उस फसल-लक्ष्मी का विधि पूर्वक विवाह रचाते हैं नराएन राजा के साथ। इस प्रथा को 'लछमी जगार' कहते हैं। बस्तर के ग्रामीण परिवेश में 'लछमी जगार' प्रतिवर्ष क्वार महीने से प्रारम्भ होकर अगहन पूस तक चलता रहता है और 'दियारी तिहार' फसल कट जाने के बाद प्रतिवर्ष पूस मास से लेकर माघ पूर्णिमा तक मनाते रहते हैं।' **(डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर, पृ.-116)**

कर्नाटक के कोप्पल जिले के अलवंडी में आदिवासी परिवार में जन्मे प्रो. टी.वी कट्टीमनी अपनी पुस्तक 'जंगली कुलपति की कथा' में मुख्यत: अमरकंटक में निवास करने वाली जनजातियों की समस्या व एक कुलपति के रूप में अपने संघर्ष व चुनौतियों को चित्रित करते हैं। इस पुस्तक में वे प्रसंगवश अपने गाँव में मनाए जाने वाली दिवाली यानी 'हट्टी हब्बा' का भी जिक्र करते हैं-'हमारे यहाँ परिवार के साथ अमरकंटक में हट्टी हब्बा (दिवाली) मनाने की पद्धति रही है। मेरी माँ गाँव में गोबर से पांडवों को बनाकर, होन्नंबरिकेका फूल, दूब, उत्तराणी का कँटीला पौधा, उत्तराणी पौधों से सजाकर, धागे से उनको चारों ओर से लपेटकर, हर पांडव के सामने चूने की दो पादुकाएँ बनाती थी। देखने वालों को लगता कि पांडव चलकर आएँगे।' **(टी वी कट्टीमनी, अनुवादक डॉ. रेशमा नदाफ, जंगली कुलपति की कथा, पृ.-85)**

इसके पीछे यह माना जाता है कि दीपावली पांडवों के वनवास और अज्ञातवास के बाद हस्तिनापुर लौटने की खुशी में मनाई जाती है। उत्तराखंड के देहरादून जिले के चकराता, कालसी, त्यूणी व लाखामंडल का क्षेत्र जौनसार-बावर के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर निवास करने वाली जौनसारी जनजाति अपनी सांस्कृतिक विविधता के कारण जानी जाती है। जौनसारी अपने को पांडवों का वंशज मानते हैं। जौनसारियों में 'पांचाल प्रथा' के अनुसार बहुपति व बहुपत्नी प्रथा तो प्रचलित रही ही है साथ में यहाँ दीपावली के एक महीने बाद 'बूढ़ी दीवाली' के नाम से दीपावली मनाई जाती है। इसके पीछे जो पौराणिक आख्यान है वो यह है कि यहाँ के लोगों को भगवान राम के अयोध्या लौटने की जानकारी पूरे एक महीने बाद मिली थी। इस खुशी को यहाँ के निवासियों ने चीड़ व देवदार की लकड़ियों की मशाल बनाकर, रोशनी उत्पन्न कर 'बूढ़ी दीवाली' के रूप में मनाया। तब से यह परम्परा अनवरत चली आ रही है। 'बूढ़ी दीवाली' के साथ ही उत्तराखंड के गढ़वाल मंडल में दीवाली को 'इगास-बग्वाल' के रूप में भी मनाया जाता है। दिवाली के 11वें दिन यानी कि एकादशी को 'इगास-बग्वाल' (दिवाली) धूमधाम से मनाया जाता है।

इसकी विशेषता यह है कि इस दिन आतिशबाजी न करके ढोल-नगाड़ों पर लोकनृत्य के साथ 'भैला खेल' होता है। 'भैलों को चीड़ की लकड़ी को तार या रस्सी से तैयार किया जाता है। रस्सी में चीड़ की लकड़ियों की छोटी-छोटी गाँठें बाँध दी जाती हैं। जिसके बाद गाँव के ऊँचे स्थान पर पहुँचकर लोग भैलों को आग लगाते हैं। भैलों को सावधानीपूर्वक अपने सिर के ऊपर से घुमाते हुए नृत्य किया जाता है। इसे ही भैलों खेलना कहते हैं। मान्यता है कि ऐसा करने से माँ लक्ष्मी सभी कष्टों को दूर कर सुख-समृद्धि देती है।' **(अंतरजाल)**

देशभर की जनजातियों में दीपोत्सव के इस वैविध्य के साथ ही एक विशेषता यह भी मिलती है कि कई जनजातीय समुदायों में प्रचलित रामकथा में लक्ष्मण व सीता को काफी महत्व दिया गया है। 14 वर्षों के वनवास के दौरान राम ने ऋषि-मुनियों व जनजातियों को राक्षसों के अत्याचार से मुक्त तो किया ही साथ में इन जनजातियों को संगठित कर इनको जीवन यापन करने की एक दिशा भी प्रदान की। गुणों की खान सीता 'हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता' और वन से खाद्य सामग्री एकत्रित करने वाले लक्ष्मण 'लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद' अपने रहन-सहन व खान-पान में आदिवासी जीवन को पूर्णत: अपनाते हैं। यही कारण है कि जनजातियों में प्रचलित रामकथा पर इसका गहरा प्रभाव देखने को मिलता है तथा सीता व लक्ष्मण को भी ज्यादा महत्व दिया गया है। अपने को महादेव का वंशज मानने वाली भील जनजाति मुख्यत: राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र में निवास करती है। आदिवासी साहित्य (गुजरात भील) पर गहन शोध कार्य करने वाले भगवानदास पटेल अपनी पुस्तक 'भीली लोकाख्यान रोम सीतमानी वारता' में उल्लेख करते हैं कि रावण का वध राम नहीं लक्ष्मण करता है।

'दसवें ग्रह के उकसाने से सीता का हरण करने वाले रावण का वध अकर्मण्य राम नहीं, अपितु लक्ष्मण करता है। लक्ष्मण मंदोदरी का छद्म वेश लेकर रावण की मृत्यु का रहस्य जान लेता है...तब लक्ष्मण सोचता है, राम तो ऋषि जैसे हैं, उनसे कुछ नहीं होगा। यह कार्य भी मुझे ही करना होगा।' **(डॉ. भगवानदास पटेल, रोम-सीतमानी वारता, साक्षी, अंक 48, अयोध्या शोध संस्थान की अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका, पृ.-7)**

दशपुर अंचल के भील समुदाय के लोकगीतों व वाचिक परम्परा में व्याप्त रामकथा में भी लक्ष्मण व सीता को लेकर गहरी आस्था देखने को मिलती है। 'सीताजी ने हमारी बेटियों व बहुओं को घरों को लीप-छापकर सुन्दर बनाना सिखाया। चित्रावण करना सिखाया। शस्त्र चलाना सिखाया। स्वयं अपनी रक्षा करना सिखाया। लक्ष्मणजी ने हमारे युवकों को शस्त्र चलाना सिखाया। अपने गाँवों की रक्षा करना सिखाया। गाँवों के चारों ओर कोट बनाना सिखाया। सबके मन में से रामजी ने राक्षसों का भय दूर कर दिया। तब लक्ष्मण को राक्षस जनजाति और भील जाति कैसे भूल सकती है।' **(डॉ. पूरन सहगल, आदिवासी जनजीवन में रामपरक साहित्य की सांस्कृतिक अवधारणा, साक्षी, अंक 48, अयोध्या शोध संस्थान की अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका, पृ.-32)**

मध्यप्रदेश के पूर्व में स्थित अमरकंटक जंगल मुख्य रूप से आदिवासियों का घर है। प्रमुख रूप से गोंड और बैगा जनजाति के लोग यहाँ रहते हैं। कहा जाता है कि शबरी ने यहीं श्रीराम को बेर खिलाए थे। जनजातियों में जनसंख्या की दृष्टि से बाहुल्य रखने वाली, मध्यप्रदेश की गोंड जनजाति की 50 से अधिक उपशाखाएँ हैं। इनमें से एक उपशाखा 'परधान' है जो गोंडों में प्रचलित गोंडवानी, पंडवानी और रामायणी गीत कथाएँ गाती हैं जिनमें क्रमश: गोंड राजाओं की वीरता, पांडवों की कथा जिसके नायक भीम हैं तथा गोंडों की रामायणी जिसका नायक भी राम न होकर लक्ष्मण है, का वर्णन मिलता है। 'गोंड रामायनी का आरम्भ वहाँ से होता है जहाँ रामायण की मूल कथा का अंत होता है। इस कथा के नायक राम न होकर लक्ष्मण हैं। गोंड रामायनी 'लछमन चरित' व 'लछमन सत परिच्छा' के नाम से भी जानी जाती है। गोंड रामायनी कभी भी पूर्ण रूप में एक बार में ही नहीं गाई जाती। इसके गायक, परधान गोंड, अपने यजमान, जो किसान गोंड के नाम से जाने जाते हैं, की रुचि के अनुसार कोई भी एक कथा को उठा लेते हैं और रात भर उसका गायन करते हैं।' **(संपादक मौली कौशल एवं कपिल तिवारी, गोंड रामायनी परधान गीत कथा, भूमिका)**

फादर कामिल बुल्के **(शामराव हिवाले, दि परधान्स ऑव दि अपर नर्मदा वैली के संदर्भ से)** 'राम-कथा, उत्पत्ति और विकास' में उल्लेख करते हैं कि नर्मदा घाटी की परधान जाति में एक दन्त कथा प्रचलित है जिसमें सीता लक्ष्मण के संयम की परीक्षा लेती है और लक्ष्मण खरे उतरते हैं। बिर्होर जाति में भी लक्ष्मण के संयम की कथा प्रचलित है जिसके अनुसार लक्ष्मण 12 वर्षों तक सिर्फ मिट्टी खाते हैं।

आजीवन संघर्ष, परीक्षा व चुनौतियों से जूझने वाली सीता के संयम, धैर्य एवं त्याग ने भी जनजाजीय जीवन को प्रभावित किया, यही कारण है कि लक्ष्मण के साथ ही बहुत सी जनजातियों में सीता को महत्व देने वाली दंतकथाएँ, जनश्रुतिव पौराणिक आख्यान भी व्याप्त हैं। जिस तरह वेदों में सीता को कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में देखा गया है उसी तरह की मान्यता बैगा जनजाति में भी देखने को मिलती है कि ये लोग सीता को कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में मानते हैं। छत्तीसगढ़ के कोरिया जिले में सीता की लटों को लेकर जनश्रुति है कि वनवास के दौरान राम ने खरबत पर्वत पर सीता के लिए गुफा बनाई थी (जो वर्तमान में सीतामढ़ी हरचौका नाम से है। राम-मंदिर निर्माण के दौरान ये फिर चर्चा में है और राम के वनगमन मार्ग के पड़ाव के रूप में इसकी चर्चा हो रही है।)

राम-लक्ष्मण शिकार पर जाते हैं तो सीता खरबत झील में स्नान कर बालों में ककई (कंघी) कर, टूटे बालों को थूककर फेंक देती हैं जिससे बाल सजीव हो, साँप में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि 'सीता की लट' नाम की साँप की प्रजाति असल में सीता की लटें हैं जो किसी को हानि नहीं पहुँचाते और न ही वहाँ के निवासी इन्हें कोई हानि पहुँचाते हैं। इस जनजातीय क्षेत्र में बहुत सी वनस्पतियों का नाम भी सीता से जोड़कर रखा गया है। 'सीता छत्तीसगढ़ के कोरिया, चांगपरवार, सरगुजा के वन्य अंचल में इतनी तदरूप हो गईं लगती हैं कि वहाँ की जनजातियों ने वहाँ की वनस्पतियों, वहाँ के जीव-जंतुओं का नामकरण सीताजी के साक्ष्य पर कर लिया है। सीता की लट फॉना, सीताफल फ्लोरा, सीता खेत में हल की लकीर। सीता छीता स्त्रियों के उदर में प्रसवोपरांत पड़ने वाली धारियाँ। सरगुजिहा में भिंडी को रमकेरिया कहते हैं। राम जिनसे केलि करते थे।' **(प्रो. कांतिकुमार जैन, चौमासा, मार्च जून 2020, अंक 112, पृ. सं. 128)**

मध्यप्रदेश के डिंडौरी जिले का पाटणगढ़ 'गोंड चित्रकला' का प्रमुख केन्द्र है। एक तरह से चित्रकला इनकी रोजी-राटी का मुख्य जरिया है। परधान-गोंड चित्रकला को आधुनिक व अंतर्राष्ट्रीय जगत में स्थापित करने में 'जनगढ़ सिंह श्याम' व 'वेंकटरमन सिंह श्याम' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 'परधान-गोंड कलाकार अपनी पेंटिंगों के लिए विख्यात हैं। वेंकटरमन सिंह श्याम की पेटिंग 'सीता की लट' शीर्षक वाली पेंटिग भारत के सबसे अधिक प्रिय चरित्र की पौराणिक गाथा है।' **(रोमा चटर्जी, अनुवाद डॉ. के जी व्यास, परधानों की वाचिक परम्परा में रामकथा, साक्षी, अंक 48, अयोध्या शोध संस्थान की अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका, पृ.-41)**

सहरिया जनजाति राजस्थान व मध्यप्रदेश में निवास करती है। राजस्थान के कोटा जिले की शाहबाद तहसील की सीताबाड़ी में 'सहरिया जनजाति के कुंभ' नाम से विशाल मेला लगता है। ऐसा माना जाता है कि राम द्वारा सीता का त्याग करने पर सीता इसी स्थान पर रही थी।

सहरिया जनजाति के लोग खुद को वाल्मीकि के वंशज मानते हैं इसलिए ये लोग वाल्मीकि को अपना प्रथम पितृ पुरुष मानते हैं। वसंत निरगुणे अपने लेख 'सहरिया' में उल्लेख करते हैं कि सहरियाओं में पहेलियों का संसार अत्यंत समृद्ध एवं विस्तृत है। मुख्यत: इस जनजाति में तीन तरह की पहेलियाँ प्रचलित हैं-फैरी, गूढ़ और दत्तकूट। इनमें जो गूढ़ है उसे रामाणी भी कहते हैं। 'गूढ़ कथात्मक पहेलियाँ हैं जिसका अर्थ लम्बे कथा प्रसंगों में समाप्त होता है, जिसे रामाणी भी कहते हैं। पहेलियों के बहाने सहरियाओं को पुराण, रामायण, महाभारत आदि की अनेक कथाएँ मुखाग्र हो जाती हैं। जैसे-**जाति रुद्र करे तरुवर सुनै, निकला मैं बड़ी दूरि।**
हनुमान बैरी भये, तो, लाये संजीवन मूरि।

लक्ष्मण राम के आदेश से सीता को वन में छोड़ने जा रहे हैं, लक्ष्मण सीता जी से कहते हैं- सब कुछ भगवान शिव के हाथ में है, मेरी यह बात पेड़-पौधे सुन रहे हैं। मुझे जब बैरी के हाथों शक्ति लगी थी, तब हनुमान ही संजीवनी बूटी लाए थे। पिछली कथाएँ कहकर लक्ष्मण सीता जी का मन बहलाते हैं।' **(वसंत निरगुणे, सहरिया, मध्यप्रदेश की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य, सम्पदा, पृ.-555 व 564)** उपर्युक्त विवरण के पश्चात् ये कहा जा सकता है कि राम एवं रामकथा जनजातीय जीवन में गहराई से व्याप्त है। जनजातीय भाषा, संस्कृति एवं समाज में रामकथा को वाचिक परम्परा, चित्रकला, पहेलियों व जनश्रुतियों के माध्यम से सुंदर व सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। देशभर के अनेक हिस्सों में निवास करने वाली इन जनजातियों में रामकथा के विभिन्न रंग बिखरे पड़े हैं आवश्यकता है तो बस इन इंद्रधनुषी रंगों को सहेजकर रखने की।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय,
हरिद्वार, उत्तराखंड कन्या गुरुकुल परिसर,
देहरादून, 47-सेवक आश्रम रोड,
देहरादून-248001 (उत्तराखंड)
मो.- 9917750501

ठीकरे की मँगनी : नासिरा शर्मा

- सिराजुल हक

जन्म - 5 मार्च 1992।
जन्म स्थान - बर आरिकाटि, कामरूप (असम)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास स्त्री से संबंधित एक ताज़ी दास्तान है। महरूख उपन्यास की एकमात्र अभागिन लड़की है, जो जन्म से एक असहज टोटके की रस्म का शिकार होती है। यह रस्म ही उसकी जिंदगी की बहुत-बड़ी दीवार बनती है। उस दीवार को लाँघ नहीं पाई थी, जो असंभव था। इसलिए वह उसे स्वीकार करने पर मजबूर हो जाती है। जो उसके जीवन का सबसे बड़ा हादसा था। जिससे निकलना उसे बहुत मुश्किल था, इसलिए वह उसे आत्मसात कर लेती है। इसके अतिरिक्त उपन्यास में पारंपरिक संस्कृति और आधुनिक संस्कृति की टकराहट भी है। यह टकराहट महरूख के जैदी खानदान के बुजुर्गों (पारंपरिक संस्कृति) और उनके बाल-बच्चों (आधुनिक संस्कृति) के साथ होती है, जिसमें बुजुर्गों की जीत होती है, किंतु जिसका परिणाम महरूख को आजीवन भुगतना पड़ा। महरूख परिवेश के साथ-साथ दुनिया का भी जाँच-पड़ताल करने की कोशिश करती रही। लेकिन वह थकती नहीं, निरंतर अपने कार्य करती गई। कालांतर में उसे अकेला होना पड़ा। मगर उससे महरूख को बहुत-कुछ सीखने को मिला और उसके खिलाफ़ खड़े होने के लिए एक मजबूत औज़ार बनी। जो आनेवाली पीढ़ी का एक प्रेरणा-स्रोत होगा।

उपन्यास की प्रमुख पात्र महरूख है। चार पुश्तों के बाद जैदी खानदान को खुदा ने लड़की की नियामत से नवाजा था। महरूख के पिता अमज़द और माता खालिदा हैं। महरूख की पैदाइश के बाद उसकी कानपुर वाली खाला ने चाँदी का चमचमाता रुपया फेंक कर कहा- 'खालिदा, आज से यह लड़की मेरी हुई।' **(नासिरा शर्मा-ठीकरे की मँगनी, पृ-17)** यह एक टोटके की रस्म थी, ताकि लड़की जी जाए, इसके ददिहाल में तो लड़कियाँ जीती ही न थीं। आगे जाकर यह टोटका ठीकरे की मँगनी में बदल डाला था।

जैदी खानदान में बुजुर्गों का सामाजिक रीति-नियम चलता था। महरूख को पढ़ने के लिए बाहर भेजना था। सबसे राय माँगी, अलग-अलग राय दी, मगर उसके ताया ने अंतिम फैसला सुनाते हुए कहा- 'सर का बोझ हलका करना है, तो कायदे से करो, लड़की को कुएँ में तो मत ढकेलो। सुनो अमजद, अव्वल तो महरूख हम पर बोझ नहीं है मगर दुल्हन से कहो कि लड़की शादी के बाद ही आगे पढ़ने बाहर जाएगी, वरना बहुतेरे लड़के हैं। हाथ पीले ही करने हैं, तो हो जाएँगे। लड़कों का अकाल नहीं पड़ा है इस खानदान में।' **(वही, पृ-24)**

इधर महरूख के परिवार में रोना-धोना शुरू, उधर शाहिदा खाला अपने बेटे को शादी को लेकर समझाते-समझाते थक चुकी थीं, इस खबर की पूरी कहानी रफत के कानों में पड़ी। रफ़त का कहना था कि-'मुझ पर एतबार न करने की वज़ह क्या है? सारे जहान की लड़कियाँ बाहर जाकर पड़ती हैं। आप लोगों को दुनिया की कोई खबर है भी या नहीं? जहाँ हर दूसरी लड़की किसी न किसी क़स्बे या गाँव से भाई या रिश्तेदार के साथ आकर पढ़ रही है वहाँ आप लड़की को आगे पढ़ाने से झिझक रहे हैं। कुर्बानी का बकरा बनने में मुझे कोई एतराज नहीं है। बुलाएँ मौलवी साहब को, पढ़वा दें हमारा निकाह।'**(वही, पृ-25)** इसमें आधुनिकता और परांपरा की तकरार हुई। आखिर परंपरा की जीत होती है। सलाह-मशवरे के बाद शादी का दिन-तारीख तय हुई, फिर महरूख ने सामान बाँधा और दिल्ली में पढ़ाई के लिए निकल पड़ी।

ट्रेन में गजब की भीड़ थी। ट्रेन रेंगने लगी थी। पास में रफत भाई बैठा था, जिसके साथ महरूख की मँगनी हुई थी। वह कान के पास मुँह ले जाकर कहा-'मिस महरूख ज़ैदी बी.ए. फ़र्स्ट क्लास, अब जरा यह नकाब अने रूखे़ रोशन से हटा दीजिए। बस्ती कब की गुज़र चुकी है।' **(वही, पृ-28)** फिर महरूख बुर्का खोल देता है और सिर पर बड़े सलीके से दुपट्टा जमा लिया। वह ट्रेन में खामोश बैठी रही। फिर रफत मियाँ ने ज्ञान का पिटारा खोल दिया कि 'इस बढ़ती-भागती दुनिया में वह खुलकर जीना चाहते हैं। कुएँ का मेढक बनना उन्हें कतई पसंद न था। इस वजह से वह अपनी भावी पत्नी को उस कुएँ से निकाल कर एक ऐसी दुनिया में ले जा रहे थे, जहाँ जिंदगी

आधुनिकता पर कायम है। बोसीदा रस्मों के आगे घुटने नहीं टेकती है, बल्कि पुख़्ता इरादों के अंगारों पर चलती ज़िंदगी हँसती है। यह जातीय भेदभाव, यह अमीर-गरीब का फर्क, मजहब के नाम पर दकियानूसी ख्यालात, यह सब ज़िंदगी के बहाव में पड़ने वाले रोड़े हैं इन पत्थरों को हमें तोड़ना होगा, इन्हीं हाथों से। इन बाजुओं को कमजोर मत समझो महरूख!' **(वही, पृ-29)**

रफत ने महरूख के सिर पर पड़ा दुपट्टा बाएँ हाथ से उसके कंधों पर गिरा दिया। और कहा, 'सही तरीके से जीना सीखो, महरूख, इन पुरानी बेड़ियों को काट फेंको, दकियानूसी तौर-तरीकों को खुदा हाफिज कहो! आज से तुम्हारा नया सवेरा शुरू हुआ है। उठो, इस सूरज को खुशामदीद कहकर उसकी किरणों का स्वागत करो! मैं तुमको एक सिसकती, बेबस औरत के रूप में नहीं देखना चाहता हूँ, बल्कि एक मज़बूत इरादों की तरक्कीयाफ्ता औरत के रूप में फलता-फूलता देखना चाहता हूँ। यह मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी तमन्ना है। तुम सारे समाज के लिए एक नमूना होगी। तुम्हारी रोशनी से खानदान का ही नहीं, हिन्दुस्तान का नाम रोशन होगा और जाने किनती बेकस मजलूम औरतें घरों का पर्दा चाक करके तुम्हारे चले रास्ते पर निकल पड़ेंगी। इंकलाब की, इस शुरुआत की सरगना तुम होओ। वह परचम तुम्हारे हाथ में होगा, महरूख।' **(वही, पृ-31)** इतने में ट्रेन दिल्ली स्टेशन पर रुकी। दोनों उतरे।

महरूख विश्वविद्यालय के पाश्चात्य व आधुनिकता से ओत-प्रोत वातावरण से घबराई, क्योंकि वह सामान्य परिवार तथा मुसलमान समाज की पर्दा-दारी थी। लेकिन रफ़त ने उसे अथाह समुन्दर में छोड़ दिया और खुद एम.फिल. की थीसिस लिखने लगा। उसे यकीन था कि डूबने के डर से महरूख हाथ-पैर मारते-मारते तैरना तो सीख लेगी। महरूख मानसिक तनाव से बेचैन रहती। इसी स्थिति में उसने दिल्ली में अपनी पढ़ाई जारी रखी। नवंबर में घर लौटी। फिर घर से जाने का मन नहीं था, खर्चा भी बहुत होता था। रिजल्ट सेकेंड डिवीजन आया और ऊपर से नानी को खो दिया। इस समय उसके घर पर लोगों की अच्छी-खासी भीड़ थी। सब आकर उसको ननिहाल में जमा हुए। शाहिदा खाला ने महरूख की तारीफ़ करते हुए कहा-'पूरे खानदान में मेरे बहू का कोई मुकाबला नहीं है। लोग चिराग लेकर भी ढूँढ़ें तो ऐसा चाँद का टुकड़ा नसीब होने वाला नहीं है।' **(वही, पृ-36)**

उसके घर में दो मौतें हुईं, इसलिए दोनों की दिसंबर की शादी टाल दी गई। महरूख अपनी अम्मी से कहती है कि अम्मी, हमारा दिल वहाँ नहीं लगता। आप हमें अपने पास रहने दें। लेकिन उसकी माँ समझाते हुए कहा-'महरूख, तुमसे हमारी बहुत उम्मीदें लगी हैं, बेटी, खूब दिल लगाकर पढ़ना। अपने अब्बू का सिर नीचे न होने देना। देख रही हो, किसी को तुम्हारा जाना भाया नहीं है। मेरी लाज रखना, बेटी।' **(वही, पृ-40)**

जब वह अपनी अटैची लेकर निकल रही थी उसके अब्बू ने कहा-'महरूख, बेटी, 'बहना' ही जिंदगी कहलाती है और 'ठहरना' मौत की निशानी है, इसलिए जैसा देस वैसा भेस होना चाहिए। वक्त के साथ आदमी को चलने की आदत डालनी चाहिए। रफत मियाँ ठीक कहते हैं कि हम अपने खोल को नहीं तोड़ पाए, इसलिए कहीं नहीं पहुँच पाए।' **(वही, पृ-41)**

फिर से महरूख पढ़ने के लिए दिल्ली पहुँच गई। उसे घुटन, उलझन, बौखलाहट और उकतायापन आदि काफी बातें शुरू-शुरू में महसूस हुई थीं। धीरे-धीरे परिवेश के साथ घुल-मिल जाने लगी। महरूख की सालगिरह में रफ़त ने तोहफ़े। जीन्स व स्कीवी का जोड़ा दिया था। इसी स्थिति में महरूख ने एम.ए. पास की। एम.फिल. में दाखिला मिला। रवि उसका क्लास फेलो था। दोनों फील्ड वर्क के बहाने साथ-साथ जाते थे, इसी के फायदे में रवि ने महरूख को अपनी बाँहों में भर लिया। महरूख तड़प कर पीछे हटी। और कहा, 'क्या हो गया? रफत की अमानत।' रवि भी अचंभित-सा रह गया और महरूख भी शेरनी की तरह घूर रही थी। फिर महरूख ने असहज अनुभव करते हुए कहा-'इस विश्वविद्यालय में भी औरत को देखने वाली नजरों का वही पुराना दृष्टिकोण हो तो, फिर यह किस अर्थ में अपने को स्वतंत्र, प्रगतिशील और शिक्षित कहते हैं?' **(वही पृ-49)**

महरूख पूरी तरह साम्यवादी हो गई थी, वह अपने घर-परिवार को बदलाना चाहती थी। उसके अब्बू ने कहा-'जमाना बदल रहा है हम नहीं बदले, तो इसलिए कि हमारा गुजरा हुआ हमें बहुत मजबूती से बाँधे रहा, मगर तुम्हारे पास ऐसा कोई मजबूती नहीं है, जो हम तुम्हें मुस्तकबिल के लिए दे सकें। हमारी बातें, हमारे हालात तुम्हें अच्छे नहीं लगते हैं। सच पूछो, तो हमें भी अपनी तबाही, यह बिखराव कहाँ अच्छा लगता है! अब इस उम्र में हम क्या सीखेंगे और कितना बदल पाएँगे अपने को! हमारी तो कट गई, जो बाकी है, वह भी कट जाएगी।' **(वही, पृ-53)**

महरूख को घर में आए हुए छः मास गुजरे थे। इधर रफ़त अमेरिका में जाकर पीएच.डी. कर रहा था। यहाँ तक ठीक था, जिस दिन से खबर मिली कि रफ़त अमेरिका में 'लिविंग टुगेदर' जैसी जिंदगी गुजार रहे हैं। पहली बार विश्वास नहीं हुआ, जब उसने 'वेलरी' और रफत की तस्वीरें देखीं, महरूख दंग रह गई। जहाँ पर यकीन की मोहर लगी

थी, सब चकनाचूर हुआ। महरूख को महसूस हो रहा था कि–'इंसानी रिश्ते भी कागज की नाव की तरह होते हैं, जो सारी एहतियात के बाद हालात के समन्दर में डूब जाते हैं।' (वही, पृ-61)

अब उसे कुछ भी सही नहीं लग रहा था। इधर महरूख दिल्ली जाने के लिए राजी नहीं हुई, अधूरी थीसिस को छोड़कर नौकरी की धुन सवार हो गई थी और नौकरी भी मिली। जहाँ पर नौकरी कर रही थी, वहाँ पर कहार, लोहार, पासी, धोबी, मल्हार आदि ज्यादातर थे। चन्द मुसलमान के घर थे। वहाँ से महरूख का संघर्ष शुरू हुआ। स्कूल में भी संजय और इशरत की तरह अध्यापक भी थे जो उसे चिढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। संजय कहता है कि–'इस नौकरी के साथ साइड बिजनेस महरूख जी, बहुत जरूरी है।'(वही, पृ-77) यहाँ तक सीमित नहीं रहा, वे रात में महरूख के रहने वाला कमरे का दरवाजा नॉक कर भाग जाया करते थे, ये सब परेशानियाँ थीं।

महरूख घर आकर सोच में डूब गई कि–'इन्सान हमेशा अपनों का ख्याल रखता है, फिर अपने बेगाने क्यों बन जाते हैं? कभी–कभी पत्थर दिल भी?'(वही, पृ-74) उसे केवल सन्नाटा दिखाई देता रहा। महरूख अपने घर गई, ऐन मौके पर रफत मियाँ घर आया, सबसे मिल लिया, लेकिन महरूख से मिलने का मौका नहीं मिल पा रहा था, इधर महरूख की स्कूली छुट्टियाँ खत्म हो रही थीं। रफ़त ने मौका देखकर महरूख के कमरे में जाकर कहा, 'मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।' महरूख के कमरे में रफ़त बैठ गया और हालचाल पूछा। रफ़त ने कहा, 'तुम्हारी नाराजगी मेरे सिर–आँखों पर। तुम्हें हक भी है। वहाँ मैं अजीब मुसीबत में फँस गया था। करता भी क्या? हालात का तकाजा यही था। वरना छः साल गुजारने मुश्किल हो जाते और फिर पता नहीं डिग्री मिलती भी या नहीं। मैं बिना डिग्री के वापस नहीं लौटना चाहता था। तुम्हें क्या मुँह दिखाता? वह किस्सा कब का खत्म हुआ। वह तो एक 'वे ऑफ लाइफ' था वहाँ का। उसे छोड़े हुए अब तीन साल गुजर गुए। तुम मुझे समझने की कोशिश करो। हालात का अन्दाजा तुम्हें यहाँ बैठकर नहीं हो सकता कि मैं किस भँवर में फँस गया था। यह सब कुछ जान पर खेल कर मैंने तुम्हारे लिए किया है और तुम्हें जाने क्या हो रहा है?'(वही, पृ-116)

महरूख कहने लगी कि–'मैंने आपका क्या बिगाड़ा था, जो आपने मेरे मासूम–बेगुनाह जज्बात को रौंदा, कुचला और मुझे अकेला छोड़ दिया। मैं हालात से लड़ते–लड़ते दम तोड़ गई थी। मुझे मेरी ही नज़रों में जलील कर आपने मुझे ख्वाहिशों के जाल में फँसा कर मेरे अंदर की महरूख के परखचे उड़ा दिए थे। मैंने कितना सहा, कितना टूटी। मेरा सुकून और सब कुछ मुझसे दूर चला गया था। आपकी ख्वाहिशों के पुल से गुजरती हुई मैं जिस हाल को पहुँची थी, वहाँ सिर्फ दलदल था, सिर्फ दलदल! मौत और ज़िंदगी के बीच में लटकती वह मैं थी। मैं जगह, चीज या मकान नहीं थी, रफ़त भाई, जो वैसी–की–वैसी ही रहती। मैं इंसान थी, कमजोरियों का पुतला। मैंने आपको जिस भरोसे भेजा था, आप भी वैसे कहाँ रह पाए? कुछ चीजें कितनी बेआवाज टूटती हैं। मैं बेआवाज टूटी थी, किरच–किरच होकर बिखरी थी। बड़ी मुश्किल से अपने को चुना है, समेटा है, जोड़ा है, तब कहीं जीने के काबिल हुई हूँ। मुझसे अब मेरी यह जिंदगी वापस मत छीनिए।'(वही, पृ-117) महरूख ने कभी किसी के सामने अपना दुःख व्यक्त नहीं किया। उसकी स्कूल की छुट्टी खत्म होने के बाद कर्मक्षेत्र की ओर वापसी हुई।

कुछ दिन बाद रफ़त मियाँ ट्रेन से महरूख के रहने वाले गाँव पहुँच गए। दोनों में युग्म जीवन तथा शादी की बात हुई। किंतु महरूख उसके अतीत की घटना को भूल नहीं पा रही थी। जिसकी वज़ह से रफ़त को बार–बार ठोकर खाना पड़ा। महरूख ने कहा, 'आपकी शादी की बात सुनकर मैं टूटी थी, बिखरी थी और उस गम की दीवानगी में मैं मरते–मरते बची थी, फिर मेरा ज़िंदगी का सबसे खूबसूरत लम्हा सबसे बदसूरत और डरावना होकर मेरे सामने खड़ा हो गया था। जिसके बारे में मैंने सोचा नहीं था और मेरे अन्दर की औरत उसी लम्हे मर गई थी, रफत भाई।'(वही, पृ-127) फिर रफ़त दो दिन तक खामोश रहा। तीन–चार दिन बाद रफत ने महरूख से चलने की इजाजत माँगी। महरूख के वाद–विवाद के सामने रफ़त हार गया। रफ़त की नियुक्ति दिल्ली कॉलेज में हुई। उसे खाने–पीने की दिक्कत हो रही थी। साल–भर बाद महरूख की बहन गुलनार की शादी में सब इकट्ठा हुए। महरूख भी आई हुई थी। इसी सिलसिले में रफ़त की माँ शाहिदा ने बहन खालिदा को महरूख की शादी बात कही, फिर यह महरूख के अब्बू तक पहुँचाई। इस बात की भूमिका बाँधते हुए रफ़त ने कहा–'देखो, महरूख, कहीं–न–कहीं पर हम दोनों हालात के शिकार हुए हैं। हम एक जमीन पर खड़े होकर नई ज़िंदगी शुरू कर सकते हैं। तुमने मुझे माफ किया या नहीं, मगर मैंने तुम्हें माफ किया, महरूख।' (वही, पृ-131)

रफ़त के अंतिम वाक्य से महरूख काँप गई। लेकिन महरूख ने अपनी मजबूरी का इज़हार करते हुए कहा–'आपने मुझे माफ़ कर दिया, मगर मैं तो अपने को नहीं माफ़ कर पाई, रफ़त भाई, बिना रूह का ज़िस्म मुर्दा होता है और बिना अहसास का रिश्ता ठण्डा समझौता। जहाँ सब कुछ होगा, मगर ज्ञान नहीं होगा, ज़िन्दगी नहीं होगी। ऐसी मुर्दा के साथ भी ज़िंदगी गुजारना नहीं चाहेंगे और हमारी ज़िंदगी के लक्ष्य और उद्देश्य एक नदी के दो किनारे हैं। पता नहीं आप इस फर्क को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं?' (वही, पृ-131-32) रफ़त ने इस फ़र्क को भी मिटाना चाहा, फिर भी कामयाब नहीं हुआ। महरूख ने

अंतिम फैसला सुनाते हुए कहा–'आखिरी बार अब मैं सबके सामने, खासकर, अब्बू, मैं आपसे कह रही हूँ कि रफ़त साहब सिर्फ़ मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनको अपने बुजुर्ग की तरह देखती हूँ, बस!' (वही, पृ-133) काफ़ी देर तक सब खामोश बैठे रहे। बाद में सब एक-एक करके सिमटने लगे। इस प्रकार ज़ैदी खानदान पर कयामत टूट पड़ी थी।

महरूख स्कूल की प्रिंसिपल बनी। वह स्कूल के सिलसिले में दिल्ली गई थी। इसलिए रफ़त को खत लिखा है कि वह दिल्ली आ रही है और फोन भी किया, लेकिन किसी का कोई रिस्पान्स नहीं मिला। गेस्ट हाउस में ठहरी और दूसरे दिन स्कूल का काम खत्म होने के बाद रफ़त से मिलने पहुँच गई। किन्तु रफ़त इतना व्यस्त था कि महरूख की खैर-खैरियत लेने का समय नहीं था। बात तो दूर की रही। महरूख को सामने देखते हुए रफ़त ने अपनी पत्नी सुरैया को कहा–'हाँ सुनो जल्दी से तैयार हो जाओ ज़रा ठीक से मेकअप वग़ैरह करना। गवर्नर साहब के यहाँ पार्टी पर जाना है। कुछ फ़ॉरेन गेस्ट वग़ैरह भी होंगे।' (वही, पृ-176) जब एकाएक महरूख निकल रही थी, तब रफ़त ने ठहरने की बात कही।

बस्ती में लौटकर महरूख को अच्छा लगा। उस घर को उसकी जरूरत थी—सारे बुजुर्ग बूढ़े और माजूर हो रहे थे। वह जिस सुख की तलाश कर रही थी, उसे मिलने के बाद भी पहाड़ लगते जो गुजारे नहीं गुजरते थे। सारे दिन एक कमरे से दूसरे कमरे, एक दलान से दूसरे दलान चलती फिरती थी। फिर किताबों में भी चिपकी रहती थी। उसकी छोटी चाची कहती थी कि–'ये किताबें ही तेरी दुश्मन बनी हैं महरूख—अब तो बेटी, इनका पीछा छोड़ दे, मुई में ऐसा क्या रखा है जो रात-दिन उन्हीं में चिपकी रहती है नन्हीं सी जान!' (वही, पृ-188)

उसकी छोटी चाची को 'वसवास' की बीमारी ने आ घेरा था। उसकी माँ भी बुढ़ापा बन चुकी थी। महरूख सबका ख्याल रख रही थी। महरूख साठ साल से ऊपर हो चुकी थी, तब उसके दिमाग में केवल सवाल ही सवाल उठना शुरू हो गए थे उसने अपने आपसे पूछा कि–'क्या मुझे आज अपने हक की पहचान हो गई है? मान्यताओं की सूली पर चढ़कर इन्सान किस तरह से ग़ैर इन्सान हो जाता है? जिंदगी में वह क्या पाना चाहता है? क्या वह माहौल की नाजायज़ औलाद है जो उसे एक तरफ से सबने न समझने की कसम खा रखी है?' (वही, पृ-190) इस तरह सवालों के बीच महरूख जिंदगी गुजार रही थी।

महरूख की छोटी चाची के इंतकाल पर सारे भाई-बहन इत्तिफ़ाक से जमा हो गए। जिस मकान में लोगों की भीड़-भाड़ थी। अब उस मकान का हिस्सा सबको चाहिए। उसके लिए मकान को बेचना पड़ेगा। नासिरा शर्मा लिखती हैं–'कानून के मुताबिक तो लड़कियों का हिस्सा रुपये में सिर्फ़ चवन्नी-भर होता है। उनके अपने हिस्से वाला मकान सात बच्चों में बँट जाएगा, फिर लड़की का चवन्नी भर हिस्सा पाँच लड़कियों बँट गया तो महरूख के हिस्से में क्या आएगा?' (वही, पृ-192)

इस चिंता में उसकी अम्मी को नींद नहीं आई। वह कह उठती, 'यह तेरा कैसा इन्साफ है मेरे माबूद।' महरूख बिस्तर पर लेटी चुपचाप उसकी अम्मी की यह बेकली देख रही थी। महरूख अपनी अम्मी से कहा–'हालत की मार से पैदा हुई लड़की, जिसका नाम महरूख है, उसकी जिंदगी को आप नहीं जानती, नहीं पहचानती हैं। उसकी हर बात, हर खयाल, हर अहसास आपसे छुपा हुआ है।' (वही, पृ-193) उसकी अम्मी अस्सी साल ऊपर हो रही थीं। सौ बीमारियों की एक बीमारी बन गई हैं। इसी सिलसिले चल बसीं। इधर मकान भी बिक गया। सब अपने-अपने हिस्से लेकर फरार हुए। महरूख ने भी सामान बाँध लिया और बाँधा हुआ सामान लेकर निकल रही थी, भाई-बहन सब ताज्जुब से देख रहे थे। महरूख ने बड़े इत्मीनान से कहा, 'एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो। मेरा अपना घर वही पुराना है, जहाँ मैं पिछले तीस साल रही हूँ। तुम लोग अपने-अपने घर लौट रहे हो, मैं अपने घर लौट रही हूँ। इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है?' (वही, पृ-197)

इस तरह महरूख अपना सामान समेटते हुए स्टेशन की तरफ जा रही थी। महरूख गाँव पहुँच गई और उसके दिमाग में कौंधा कि–'यह मिट्टी, यह हवा, यह पानी, यह जमीन मेरी पहचान है!' (वही, पृ-199) महरूख ने बत्ती बुझाई और बिस्तर पर आकर लेट गई और गहरी नींद में डूब गई।

नारी जाति के आत्मविश्वास तथा यकीन पर पुरुष प्रधान समाज किस प्रकार ठेस पहुँचाता है? जिसकी छवि हमें देखने मिली। केवल इतना ही नहीं नारी का फायदा लेते हुए तरह-तरह के अत्याचार का शिकार बनाया जाता है। किंतु आज नारी जगत् ईंट का जवाब पत्थर से देने लगी, जो उपन्यास की नायिका महरूख के माध्यम से स्पष्ट हुआ। यह नारी समाज की एक प्रेरणात्मक दास्तान है और जिससे नारी समाज को आत्मनिर्भर बनने में सहायता मिलेगी। इसके साथ-साथ नारी समाज को सहानुभूति, कर्मठता, साहसी, वाक्-पटुता, तार्किक आदि विविध गुणों से विभूषित करते हुए अन्याय के खिलाफ़ नारी समाज को जाग्रत करने, लड़ने तथा संघर्ष करने का मार्गदर्शन मिलेगा। अत: महरूख नारी समाज की आँखों का तारा है, जो नारी जगत को अंधकारों से प्रकाश की रोशनी दिखाती है। अकेले जीने की राह दिखाती है।

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
बंगाईगाँव कॉलेज,
बंगाईगाँव-783380 (असम)
मो.- 7598608859

किंवदंतियों से घिरा जीवन-सत्य : त्रिलोचन

- चारु गोयल

जन्म - 29 मार्च 1984।
जन्मस्थान - दिल्ली।
शिक्षा - एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

त्रिलोचन किंवदंती पुरुष के रूप में ख्यात हैं, संभवत: इस विशेषण से पहली बार उन्हें नागार्जुन ने नवाजा था। अब नागार्जुन के कुछेक सहृदय उनको ही किंवदंती पुरुष कहने लगे हैं। नागार्जुन किंवदंती पुरुष थे अथवा नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता है, मगर त्रिलोचन निर्विवाद रूप से किंवदंती पुरुष कहे जाते थे और कहे जाते भी हैं। अपने जीवन काल में ही किंवदंती पुरुष बन जाना अद्भुत बात है, यह सौभाग्य या दुर्भाग्य आधुनिक युग में निराला को प्राप्त था जो त्रिलोचन के अकादमिक ऐंकर थे। 'जीवन की लय में मुक्ति का राग' शीर्षक निबंध में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं-'नागार्जुन कहते हैं कि त्रिलोचन किंवदंती-पुरुष हैं, निराला के बाद सबसे अधिक किस्से त्रिलोचन के बारे में कहे-सुने गये हैं, उनको किंवदंती-पुरुष बनाने में सबसे अधिक योगदान उनके मित्रों का है, लेकिन कुछ सहयोग उनका भी है। वे अपने बारे में किस्से सुन कर या तो चुप रहते हैं या मुस्कुरा देते हैं जैसे कि उन किस्सों से उनका कोई संबंध ही न हो'।

(त्रिलोचन के बारे में, सं. गोविंद प्रसाद, पृ.146)

पाण्डेय जी की यह टिप्पणी बिल्कुल सटीक है। इसमें कोई शक नहीं कि त्रिलोचन को किंवदंती-पुरुष बनाने में उनके कुछ मित्रों एवं कुछेक परम मित्रों की भी महती भूमिका थी। ऐसे मित्रों में शुकदेव सिंह, काशीनाथ सिंह, नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, परमानंद सिंह इत्यादि। सरीखे आलोचकों तथा नामचीन साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। जैसे, इन सभी का उद्देश्य मात्र रस रंजन होता था। जब वाराणसी में त्रिलोचन को दो जून की रोटी के भी लाले पड़े थे और कई-कई दिनों तक चूल्हा रोता था और चक्की उदास रहती थी तब शुकदेव सिंह के यहाँ नामवर सिंह और केदारनाथ सिंह की गोष्ठी होती थी और उस गोष्ठी में त्रिलोचन रस-रंजन के मुख्य विषय हुआ करते थे। इसी तरह 'त्रिलोचन का नया पता' बताते हुए श्री राधेश्याम तिवारी लिखते हैं-

'उन्होंने बीच गंगा में / बुढ़वा को धर दबोचा और देर तक पानी के भीतर उससे करते रहे मल्ल युद्ध। / अंत में, वह पछाड़ खाकर गिर गया और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा / जब तब जाकर उसे छोड़ा गया। / फिर उसे साफ-साफ समझा दिया कि पहचान लो इस त्रिलोचन को!' (आधार शिला, त्रिलोचन विशेषांक, 2011, सं-दिवाकर भट्ट, 2009, अंक 88, वर्ष-26, हल्द्वानी, उत्तराखंड, पृ.42-43)

इसमें कोई शक नहीं त्रिलोचन औसत आदमी से ज्यादा शक्तिमान थे और जीवट के आदमी थे जिसकी चर्चा उन्होंने अपने जीवन-संघर्ष के क्रम में बार-बार की भी है, मगर यह अतिरंजना उनके मिथकीय व्यक्तित्व की ही सृष्टि करती है, संघर्षशील व्यक्तित्व की नहीं। उनकी जीवन-शैली में भी कुछ ऐसी खासियत थी जो उनके मिथकीय व्यक्तित्व की आधारभूत सामग्री बन जाती थी।

एक साक्षात्कार में परमानंद श्रीवास्तव भी स्वीकार करते हैं कि 'त्रिलोचन किंवदंती तो हो ही गए थे, अपनी जीवन-शैली से। त्रिलोचन मीलों पैदल चलते थे, घड़ों पानी पी जाते थे। निराला की लंबी कविताएँ त्रिलोचन की स्मृति में रहती हैं, मेस का महाराज उन्हें देखता है तो पाँच आदमियों का खाना बढ़ा देता था, वे गंगा तैर जाते थे' इत्यादि। इसी क्रम में वे एक अपना अनुभव भी दर्ज करते हैं- 'दिल्ली पहुँचते-पहुँचते त्रिलोचन को हार्ट-अटैक हुआ, सूटकेस लेकर उन्होंने पुल पार किया, ऑटो लिया और उसे पता लिखकर दिया और होश खो बैठे, जीवन यह है, आई. सी. यू. में रहे, बच गए।'

(युगतेवर, सं- कमलनयन पाण्डेय, दिस.-फर. 2008-09, अंक-4, उत्तरप्रदेश, पृ.158)

तो, यकीनन उनमें अदम्य साहस भी था और, धैर्य भी। अपनी प्रारंभिक संघर्ष-यात्रा में तो अपने गाँव चिरानी पट्टी से दिल्ली तक की दूरी पैदल नाप ली थीं, एक बार एक साक्षात्कार में मंगलेश डबराल ने उनके मिथकीय चरित्र के बारे में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की थी तो त्रिलोचन ने प्रत्यक्षत: तो नहीं, पर परोक्षत: अपने जीवन के कटु यथार्थ को उत्तरदायी बताया था। मंगलेश का सवाल बड़ा दिलचस्प था और रोचक भी। और, वह इस प्रसंग में प्रासंगिक भी है। इसलिए उसको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूँ - 'अच्छा त्रिलोचन जी, आपके बारे में हिंदी में कई कहानियाँ प्रचलित हैं जो अतिरंजनाएँ लगती हैं। मसलन, आप हफ्तों तक शहतूत खाकर गुजारा करते रहे, आप बनारस में गंगा को पूरा तैर कर पार कर लेते थे,

तनखाह का सारा पैसा किताबों पर खर्च कर डालते थे, या आप बहुत ज्यादा भोजन करते रहे। यह सब सुनकर आप महाभारत काल के किसी चरित्र की तरह लगते हैं? उनमें कितना सच है? जवाब देते हुए त्रिलोचन, कहा है–'बढ़ा–चढ़ा तो लोग देते ही हैं, सुनी हुई बातों में लोगों को मजा आता है जब कुछ जोड़ते भी हैं, मेरा जीवन बीहड़ तो कुछ जरूर रहा।' **(त्रिलोचन के बारे में, गोविंद प्रसाद, पृ. 247)**

स्पष्ट है कि त्रिलोचन को किंवदंती पुरुष बनाने में उनके मित्रों के साथ–साथ उनका अपना योगदान भी कम नहीं था। कारण कि ऐसे प्रसंगों की चर्चा पर अक्सर वे मौन धारण कर लेते थे या मुस्कुरा भर दिया करते थे ताकि मित्रों के रस–रंजन में कोई खलल न पड़े, उनकी इस आदत से अतिरंजनाओं को और प्रोत्साहन मिलता, परंतु विश्वनाथ त्रिपाठी उनके साहसिक कारनामों को हाशिए पर डालते हुए उनके साहित्यिक कारनामे को सुर्ख़ियों में लाते हैं। वे साफ लफ्जों में कहते हैं कि–
'उन्हें किंवदंती पुरुष कहा जाता है। किंवदंती पुरुष वे हमारे लिए थे, अपने लिए नहीं। वे अपनी कविताओं से अपना जीवन–आचरण निर्धारित करते थे। शब्द उनके संबंध–सेतु थे। इस बीच सबसे अधिक अवमूल्यन शब्दों का हुआ है, हमारे लिए शब्द और शब्द की देवी सरस्वती, स्वार्थ–साधन की देवी हो गई हैं। वे सस्ता माल महँगा बेचने में सहायक विज्ञापन का काम करती है। ऐसे माहौल में शास्त्री जी के शब्द अर्थवान थे, मूल्यवान थे और उन शब्द–संबंधों से प्रेरित जीवन–आचरण निराला की ही तरह उनको इस उठाईगीर समाज से बहिष्कृत कर देता था और किंवदंती पुरुष बना देता था। और इसी शब्द–आचरण में निष्ठा रखने वाले त्रिलोचन के डर से राहें सिकुड़ भी जाती थीं। किंवदंती–पुरुष प्राय: सहज नहीं होता लेकिन त्रिलोचन की सहजता ही यानी शब्द और अर्थ में संगति रखने की टेक ही उन्हें किंवदंती पुरुष बनाती है। निराला के साथ भी यही हुआ था। त्रिलोचन ने लिखा भी है–आँखों में रहे निराला।' **(प्रगतिशील वसुधा–75, वर्ष–4 अंक–3, पृ.30)**

शब्द–साधना और जीवन–साधना के संदर्भ में त्रिलोचन के निजंधरी व्यक्तित्व की पहचान नि:संदेह मार्के की है। हास्य–बोध को सौंदर्य बोध में तब्दील कर दिया है मान्यवर त्रिपाठी ने। जो रस–रंजन का विषय था, उसे काव्य मूल्य का दर्जा प्रदान कर दिया है। शब्द और आचरण में जीवन और लेखन में यह अभिन्नता कवि को महान तो बना ही देती है, उसको 'लीजेंड' भी बना देती है। वाल्मीकि और व्यास तथा कालिदास जैसे शब्द–निष्ठा के प्रतिमानों के साथ भी कम किस्से–कहानियाँ नहीं जुड़ी हैं। तुलसी भी इन्हीं लोगों के साथ पावतेय है, लेखन और जीवन के इस तादात्म्य को आचार्यों ने सांकर्य की संज्ञा दी है। त्रिलोचन की सही समझ रखने वालों में विष्णुचंद्र शर्मा भी हैं, उनका भी कहना है कि 'त्रिलोचन मूलत: किंवदंती पुरुष नहीं थे, जिनसे उनकी गहरी आत्मीयता थी, उनके लिए तो कतई नहीं। उनकी 'रोजनामचा' इसकी चश्मदीद गवाह है, 'गीता' की कसम न खाकर भी सच बोलनेवाली। एक नवम्बर 1971 का लिखा त्रिलोचन का एक पत्र भी ऐसा ही साक्ष्य है। उसका यह अंश दृष्टव्य है–'पिछले चार वर्ष मैंने गिन–गिन कर दिन बिताए हैं। स्थिति में कोई परिवर्तन अब भी नहीं आया। लगभग अकर्मा ही रहा, इन चार वर्षों में। पत्र आदि भी यदा–कदा लिखे तो लिखे। अब सोचता हूँ कि ऐसे दम साधे तो चलने का नहीं, जैसे भी हो, जितना भी हो, चला जाए, तकलीफें चुप रहने पर भी बनी रहेंगी, रहें वह भी और मैं भी कुछ कहूँ। आप लिखते रहें तो बाहर निकल कर साँस लेने का मौका मिलता रहेगा। जरूरी होता है कि आदमी डुबकी लगाने के बाद साँस लेने के लिए बाहर निकले और फिर न हो तो डुबकी लगा ले।' **(त्रिलोचन का कविकर्म, लेखक–विष्णुचंद्र शर्मा, पृ. 19)**

यह उन दिनों की व्यथा–कथा है जब त्रिलोचन, जयमूर्ति देवी और अमित प्रकाश सिंह एक कमरे में दम मारे पापी पेट के सवाल पर सोच रहे थे, उस समय चूल्हा बड़ी मुश्किल से जल पाता था। एक बार तो ऐसी नौबत आई कि तीन–चार दिनों तक घर में धुआँ ही नहीं उठा तो उनकी पड़ोसन श्यामा सिंह से रहा नहीं गया। हाथ जोड़कर दरवाजे पर खड़ी हो गई और उलाहने के अंदाज में उन्होंने निवेदन किया था, 'हमें आप अपना नहीं समझती हैं अम्मा?' सवाल है कि 'गर्वीली गरीबी' आखिर हाथ किसी के सामने हाथ पसारे कैसे? एक जगह उन्होंने लिखा है–'भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल' इस जुमले ने बहुतों को भरमाया है, खासकर उनको जिन्होंने 'त्रिलोचन' शब्द को व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में ग्रहण किया है, मगर मंगलेश डबराल से एक साक्षात्कार में त्रिलोचन अपनी काव्य–शैली के वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए स्पष्ट करते हैं कि–'त्रिलोचन के जीवन को जानेगा उनसे मिलने–जुलने वालों से, तो वह जानेगा कि यह भीख नहीं माँगता था। तब भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कलड़ साहित्य में बहुत–से ऐसे अकिंचन थे जिनके अंदर माँगने का संकोच था ही नहीं, वहाँ अगर ऐसों का नाम देकर कविता लिखता तो असम्मानजनक होता। तो वहाँ मैंने त्रिलोचन दे दिया। अब तुलसी या सूर को देखिए, 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' कोई सबूत नहीं मिलता, पर खल भी कहा है, कुटिल भी और कामी भी। **(त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविंद प्रसाद, पृ.244)** तो यह है त्रिलोचन का जीवन–मूल्य एवं सौंदर्य–मूल्य! सबसे बड़ी बात है दोनों की एकतानता, परम्परा एवं प्रयोग का सामरस्य!

स्व. शिवचंद्र शर्मा भी त्रिलोचन के प्रति संवेदनशील थे और उनकी शक्ति और सीमाओं की समझ रखते थे। उन्होंने सन् 1971 में 'स्थापना' के तीन अंक प्रकाशित किए थे जो त्रिलोचन पर केंद्रित थे।

उन्होंने एक अंक में अपना मकसद स्पष्ट करते हुए लिखा था–'प्राण से जीवित त्रिलोचन शास्त्री पर अंक निकालने का एक और मतलब यह भी था कि वे अपने जीवन–काल में ही, अधिक स्वयं से, और कुछ दूसरों से, सारे कल्पित तथ्यों के शिकार बन गए हैं, झूठ–सच की बानगी बन गए हैं, लतीफों के बहके अंदाज बन गए हैं। इन बातों की आँच में उनका समस्त कर्तृत्व भी ओझल हो जाता है, बन–बन जाता रहा है–उनकी एक मात्र निराला विशेषता तक तिरोहित की जा रही है। **(त्रिलोचन का कवि-कर्म, विष्णुचंद्र शर्मा, पृ. 43)**

यकीनन, उन तीनों अंकों में अनाप–शनाप, लतीफे, भ्रांत और कुछ अप्रामाणिक संस्मरण एवं लेख भी प्रकाशित हुए थे। उत्खनक संपादक शिवचंद्र शर्मा ने उन्हें यथावत इसीलिए दे दिया था कि त्रिलोचन अवसर लें कि भ्रांतियों, कल्पित (जाने–पहचाने) तथ्यों का संशोधन करते हुए उन्हें काटें, सत्यों को स्थापित करें और असत्यों को भस्माएँ। **(त्रिलोचन का कवि-कर्म, विष्णुचंद्र शर्मा, पृ.43)**

मगर त्रिलोचन तथाकथित किस्सों–कहानियों के प्रति इतना निस्संग हो जाते थे, मानो उनसे उनका कोई संबंध ही न हो! एकाध अवसरों पर जरूर कुछ आपत्तियाँ व्यक्त की हैं पर अनेक स्थलों पर अक्सर अपनी मूक मुस्कुराहट का ही इस्तेमाल किया करते थे। वैसे भी वे अपने बारे में वे बहुत कम बोलते थे, उनकी आपत्तियों को दो–एक मिसालें दी जा सकती हैं, अपनी राग–द्वेष मुक्त आलोचना–पद्धति का परिचय देते हुए उपर्युक्त साक्षात्कार में ही एक प्रतिक्रिया व्यक्त की है–'हमने 1944 में एक लेख लिखा था जानकीवल्लभ शास्त्री पर। उनकी दो पुस्तकें मिली थीं जानकीवल्लभ ने व्यंग्य कविताएँ दी हैं 'गाथा' में, अगर रूमानियत आ गई व्यंग्य–कविता लिखते हुए तो आपके व्यंग्य की धार कुंठित हो जाएगी। वे आज भी मेरे अत्यंत आदरणीय, प्रतिभाशाली, ऊँचे कवि हैं, पर मैंने उसे रेखांकित किया तो मैत्री तो है। वे तो मेरे विषय में सुनी–सुनायी बात भी कह देते हैं, मैं नहीं करता, लोगों से बात करते हुए कहा, वे नाली में गिरे हुए रहते हैं, इतना पीते हैं, भाई, उन दिनों की याद मुझे आती है जब मैं बनारस में था। इतने पैसे ही न थे कि हम परिवार का ही पोषण कर पाएँ, नाली में गिरने का सौभाग्य कहाँ मिलता! किसी ने उन्हें सुनाया होगा और उन्होंने मुझसे पूछा नहीं? **(त्रिलोचन के बारे में, सं-गोविंद प्रसाद, पृ. 243)**

इन किस्से–कहानियों तथा लंतरानियों में सबसे ज्यादा नुकसान त्रिलोचन के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का हुआ है, यह बात दूसरी है कि इन्होंने दोस्त मित्रों, बंधु–बांधवों का रस–रंजन किया है और किसी हद तक त्रिलोचन का भी। पर इनसे सबसे ज्यादा क्षति यह हुई है कि त्रिलोचन के कृतित्व को भी गंभीरता से पाठकों और आलोचकों ने नहीं लिया है। चूँकि ये सामान्यता तथा सहजता के कवि रहे हैं, इसलिए भी इनके अर्थ गौरव की पहचान लोगों से नहीं हो सकी। कुछ लोगों की नजर में तो इनकी कविताओं में कवित्व की गंध भी नहीं मिलती। इस संबंध में अरुण देव की यह टिप्पणी बिल्कुल सही है कि 'त्रिलोचन की चर्चा उनके मिथकीय व्यक्तित्व की रस–चर्चा में अक्सर सीमित हो जाती है, उनका कवि–व्यक्तित्व और उनकी कविताएँ लगभग अलक्षित रह जाती हैं, आलोचना के श्रमसाध्य कार्य और मूल्यांकन के जोखिम से बचने के लिए उनके अतिरंजित रूप को सामने लाकर उनकी कविताओं को पारदर्शी छोड़ दिया जाता है, उनकी कविताओं को नजरअंदाज करने या फिर उड़ती नजर से देखने के प्रयास होते रहे हैं।' **(आधारशिला, लेख कवि त्रिलोचन अरुण देव, सं-दिवाकर भट्ट, त्रिलोचन विशेषांक-2009, अंक 70-72, वर्ष-25, पृ.-105)**

ठीक यही सलूक–सरोकार लोगों का त्रिलोचन के जीवन–संघर्ष के साथ भी रहा है। वे कितने आत्मसंघर्ष और जद्दोजहद से अपनी सजीवता, सहजता तथा सरलता को कायम रखने में सफल रहे, उसको कुछेक आत्मीय आलोचकों ने ही शिद्दत से महसूस किया है बाकियों ने तो उसे हँसी–मजाक में तिरोहित कर दिया है। इस सत्य से त्रिलोचन भी वाकिफ थे। इसलिए अपने बारे में कहना–सुनना प्राय: स्थगित कर दिया था। राम विलास शर्मा जी ने भी एक समय महसूस किया था कि पहले–पहल वे अपने बारे में काफी बातें करते थे। पर अब वे ऐसा कोई प्रसंग आने ही न देते थे।

इसी का परिणाम है कि आत्मकथा लिखने जैसे वस्तुवादी काम को भी उन्होंने न कह दिया था। उन्होंने स्वीकार किया है कि वे अपने अजीबोगरीब अनुभवों पर बात करने से कतराते हैं। यह संयम और संकोच आत्मविज्ञप्ति के दौर में कुछ ज्यादा ही संदर्भवान प्रतीत होता है। वैसे त्रिलोचन ने सर्वाधिक आत्मपरक कविताएँ लिखी हैं। लेकिन वे आत्मग्रस्त रचनाएँ नहीं हैं। उन कविताओं में उनकी उपस्थिति एकवचनात्मक न होकर बहुवचनात्मक है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि एक साहित्यकार का साहित्यकार के रूप में मूल्यांकन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक तो होता ही है उसके पीछे जो भोगने वाला प्राणी है, अपनी निपट मानवीयता में निष्कवच और वेध्य, उसका भी सही मूल्यांकन महत्व रखता है। त्रिलोचन जैसे सामान्य मनुष्य के जीवन संदर्भ में तो यह और भी अर्थवान हो जाता है जिसने जीवन और कविता दोनों में किसानी संस्कृति को जिया है। अपने जीवन–संघर्षों के प्रति मधुर मौन धारण करते हुए इस साधारण कवि ने असाधारण किंवदंतियों पर मुस्कुरा कर कभी न विराम लगने की मुहर लगा दी। यही त्रिलोचन का बड़प्पन और उनकी जीवटता है।

जी–1/95, भूतल दालमील रोड,
उत्तम नगर, दिल्ली–110059
मो– 8876515201

पोस्ट एवं टेलिग्राफ

- लतिका खानवलकर

शिक्षा - एम.ए.।

रचनाएँ - तीन पुस्तकें प्रकाशित।

आजकल पोस्ट और टेलिग्राफ महकमे की इज्जत काफी घट गई है क्योंकि 'कोरियर सर्विस' नाम के नए प्रकरण ने उसे 'खो-खो' के खेल में अचानक 'खो' दे दिया है। तेज दौड़ने वाले इस खिलाड़ी ने उसे पराजित कर दिया है हालाँकि कोरियर सर्विसवाले पोस्टखाते की तुलना में कई गुना अधिक वसूसी कर लेते हैं।

कुछ चीजों का जल्दी पहुँचना जरूरी हो गया है और कुछ सामान्य श्रेणी के समाजजनों का आर्थिक स्तर ऊँचा हो जाने से अत्यंत जरूरी समझे जानेवाले कार्य के लिये 'मुँह माँगा पैसा' फेंकने के लिए वे सहज ही तैयार हैं।

तब केवल पोस्ट और टेलिग्राफ डिपार्टमेंट ही अस्तित्व में था। अपवाद स्वरूप गुजरात के स्वर्णकारों की अपने सामान की 'त्वरित सेवा' के लिए 'आंगडिया बस सर्विस' जरूर विद्यमान थी। बस! तो हम बात कर रहे थे पोस्ट डिपार्टमेंट की। पाँच पैसे का पोस्टकार्ड पहला साधन था अपनों से बात करने का। ज्यादा मज़मून हो तो फिर लिफाफा उपलब्ध था। (शायद 15 या 20 पैसे का।)

इस दरिद्री अर्थप्राप्ति में वे बेचारे उच्च गुणवत्तापूर्ण सेवा कैसे दे सकते परिणामस्वरूप हमारी बात स्वजन तक पाँच दिन बाद पहुँचती और लौटती डाक से भी जवाब दिया जाए तो भी अगले पाँच दिन तो निश्चित ही लग जाते हैं। मुझे याद है हमारे बचपन में पिता जी चिट्ठी के साथ सबको जवाबी पोस्टकार्ड भेजते थे ताकि घर में पोस्टकार्ड न होने की स्थिति में जवाब पाने में एक और दिन न लग जाए।

जब बात अतिशय महत्त्वपूर्ण हो और प्रत्युत्तर भी तत्काल अपेक्षित हो तब सम्पन्न व्यक्ति स्वयं डाक बन जाता और अपना मंतव्य पूरा कर लेता किंतु अर्थाभाव से जूझने वाला सामान्य व्यक्ति हफ्ताभर आँखें डाकवाले बाबू की प्रतीक्षा में बिछाए रहता।

कुछ समय बाद डाकविभाग ने सर्वसाधारण की सुविधा के लिए 'एक्स प्रेस डिलीवरी' नामक सेवा के प्रयोग का 'श्री गणेश' किया जिसमें पते के ऊपर सिर्फ एक्सप्रेस डिलीवरी लिखने से डाक बाँटते समय इस पत्र को वरीयता दी जाती मुझे पक्का याद नहीं पर शायद ऐसी चिट्ठियों को केवल पाँच पैसे का अतिरिक्त टिकिट लगाना पड़ता था।

इस सेवा का दुरुपयोग करने वाली अधिकांश आरामतलब जनता पत्रों का उत्तर देने में हफ्तों क्रियाशून्य बैठी रहती पर जिस दिन सनक सवार हो, पत्रोत्तर लिखने के बाद, पोस्ट खाते के माथे पर तुरंत डिलीवरी करवाने के लिए 'एक्सप्रेस डिलीवरी' का बोझ मढ़ देती। ऐसे सभी पत्रलेखक खुद चाहे जितना आराम फर्माते हों (आलस्य परमोधर्म:) पर पोस्टखाते से यह अपेक्षा कि लालडिब्बे में इनके हाथ से चिट्ठी गिरी नहीं कि उस

डिब्बे के पास इनकी चिट्ठी का इंतजार करता हुआ उनका कर्मचारी डिब्बा खोलकर तुरंत उसे बाँटने, नियत जगह पर जल्दी से जल्दी पहुँचाने के उपक्रम में लग जाएँ अन्यथा ये आलसी फौज डाकविभाग के 'लेटलतीफ' कार्यकलाप की चर्चा में बढ़चढ़कर हिस्सा लेने में पहले नंबर से पास होगी।

वाह भाई! इससे ज्यादा दूसरे को स्फूर्त बनाने की बढ़िया कोशिश और क्या हो सकती है? आपके दीर्घसूत्री कार्यक्रम की सजा बेचारे पोस्टमेन को क्यों? दस बीस एक्सप्रेस डिलिवरी के पत्रों को बाँटने के लिए वह पूरे शहर की खाक छानने की यात्रा करे ऐसा जुल्म तुम उसपर किस आधार पर करते हो?

हम अगर कई सप्ताह क्रियाशून्य बैठे रहते हैं तो हमारी नींद खुलते बराबर हम-दूसरे को चाबुक मारकर तत्काल हमारा काम करने पर कैसे प्रवृत्त कर सकते हैं? वह अपनी सामान्य रफ्तार से क्यों नहीं चल सकता? ऐसे अधिकांश गैर जिम्मेदार लोगों के कारण 'त्वरित सेवा' बंद पड़ गई। आखिर मुफ्त में सबकुछ पा लेना कहाँ तक चलता? तो अब पुराना ढर्रा चलता रहा। इस बीच 'अंतरर्देशीय पत्र' का प्रयोग अस्तित्व में आया। वैसे भी हमारे देश में चार व्यक्ति मिले नहीं कि राजनीति की चर्चा छिड़ना आम बात है। जिसमें सरकार के हर सुविधा दिलाने की योजना की छीछालेदर उड़ाना हरेक का प्रिय आद्यकर्तव्य है। हर कदम की शिकायत करने वाले हम सरकार के प्रत्येक विभाग के कल्याणकारी कार्यक्रम के प्रयत्न पर दिल खोलकर पानी फेरकर उसे असफल करने के अलावा करते ही क्या हैं? इसे गंभीरता से सोचने की जरूरत है। और तदनुकूल अपना दुर्व्यवहार त्यागने का संकल्प लेना आवश्यक है। मेहरबान जनता द्वारा सार्वजनिक नलों की टोंटियाँ तोड़ पानी घंटों बहते छोड़ देना और विशाल टंकी खत्म होने पर दूसरे दिन पानी न मिलने का ठीकरा नगर निगम के माथे पर फोड़ना क्या हमारा परम धर्म नहीं है? नई सिटी सर्विस या रेल्वे के नए काँच का रेगजीन बातों-बातों में खींचकर उसके अंदर का फोम निकालकर उसे दरिद्री बनाना और ज्यादा किराया लेकर ऐसी स्तरहीन सेवा उपलब्ध कराने वाले रेलविभाग पर छींटाकशी करने से हम कब चूकते हैं? फालतू बातों से अनमना होकर प्रदर्शन कर हड़ताल करना, गाड़ियों के काँच फोड़ना, वाहनों में आग लगाकर हमारे राष्ट्र का अधिकतम नुकसान करना तो प्रजातांत्रिक अधिकारों का कर्तव्य बोध जानने वालों का प्रिय हॉबी है।

गरीबों के लिए सरकार ने 'एक बत्ती कनेक्शन' की योजना बनाई उस एक बत्ती कनेक्शन के बहाने हमारे चतुर गरीब भाईयों ने धड़ल्ले से ऋण लेकर पंखे, फ्रीज, टी.वी. खरीद कर बेतहाशा बिजली खर्च की और उनसे भी स्मार्ट लोगों ने सड़क के बिजली तारों से कनेक्शन लेकर अपनी बस्तियाँ बिना बिल भरे रोशनी से जगमगाईं जिसका उनको गुमान है, अपराधबोध जरा-सा भी नहीं।

लोकमान्य तिलक का 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' नारे को परिवर्तित कर उसे अपने उसूलों के लायक बनाने वालों ने स्वराज्य और स्वातंत्र्य का सत्यानाश करना हमारा संवैधानिक अधिकार है ऐसा ऐलान शान से किया है। ऐसे में अधिकारों की गर्जना और कर्तव्यबोध की वर्जना करने वाले नागरिक राष्ट्र को प्राणवायु कहाँ से देंगे? उन सबका जमीर जागृत होकर उन्हें सद्‌बुद्धि प्राप्त हो इतनी ही प्रार्थना हम कर सकते हैं।

महान पुरातन संस्कृति, उज्ज्वल परंपराएँ, श्रेष्ठ संस्कार के दावों का ढिंढोरा पीटना (अनुशासन विहीन स्वार्थी लोगों का) फिजूल लगता है और शर्म के मारे सिर झुक जाता है।

जी-4, नाचन रीजेन्सी,
22, नारायण बाग,
इंदौर-452007 (म.प्र.)
मो.-9479553959

जयप्रकाश भारती : बाल साहित्यकार

– प्रकाश मनु

जन्म – 12 मई 1950।
शिक्षा – एम.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ – नब्बे पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

हिंदी बाल साहित्य के सबसे चमकते नक्षत्रों में से एक तथा 'नंदन' पत्रिका के यशस्वी संपादक जयप्रकाश भारती (1936–2005) को केवल उनहत्तर बरस का जीवन मिला। यह कोई लंबा जीवन नहीं है। पर उनके कामों को देखें, तो हैरत होती है। बाल साहित्य और बाल साहित्य की बेहतरी के लिए जो काम वे कर गए, उसकी कोई मिसाल नहीं है।

बच्चों के लिए लिखने वाले लेखक बहुत हैं। पर बच्चों और बाल साहित्य का जयप्रकाश भारती सरीखा पैरवीकार आज ढूँढ़े से भी नहीं मिलता। बालक और बाल साहित्य की चिंता उनके व्यक्तित्व में इस कदर शामिल थी कि सोते–जागते वह उनके साथ ही रहती थी। वे कहीं भी जाएँ, किसी से भी मिलें, किसी भी संदर्भ में बात कर रहे हों, बालक और बाल साहित्य वाली बात घूम–फिरकर आ ही जाती थी। इस विषय पर बात करते हुए वे इतने लयमान हो जाते थे कि समय का उन्हें कुछ होश ही नहीं रहता था। अक्सर बच्चे की बात चलते ही उनकी मुखमुद्रा में भी किसी बच्चे जैसी कोमलता और भोलापन नजर आने लगता था और देखते ही देखते उनका समूचा व्यक्तित्व ही बदल जाता था।

उनके साथ कोई सत्रह बरस तक काम करने का सौभाग्य मुझे मिला। और ये वे दिन थे, जब मैंने उनसे बहुत सीखा। बच्चों और बाल साहित्य की दुनिया का क, ख, ग उन्हीं से मैंने सीखा। यह मेरी नौजवानी का समय था, जब मैं उत्साह और ऊर्जा, विद्रोह और कुछ करने की गहरी ललक के साथ भीतर से धधक रहा था।

इस हालत में मेरा जज्बा खुद मेरे भीतर समा नहीं रहा था। उस समय भारती जी ने मेरी काम करने की दिशा और शक्तियों को थाहकर, दिशा देने का बड़ा काम किया।

भारती जी की आँखों में बाल साहित्य का एक सपना था। वही उनकी प्राणशक्ति थी, वही आत्मा, वही उनका सर्वस्व था। जब मैं 'नंदन' में आया, तो सबसे पहले इसी सपने से बहुत अधिक प्रभावित, बल्कि अभिभूत हुआ। अकसर 'नंदन' और बाल साहित्य की चर्चा चलने पर उनकी आँखों में जो तरल सी चमक आती, वह धीरे से मेरे अंदर भी उतर जाती थी और मेरी आत्मा जगमगाने लगती थी। मेरा मन कहता, 'हाँ, यह बड़ा काम है। यह सचमुच बड़ा काम है। जो बच्चे के लिए कुछ करता है, निर्मल मन से कुछ सोचता है, वह ईश्वर के बहुत पास है, क्योंकि वह तो असल में ईश्वर का ही काम कर रहा है!'

भारती जी जब 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' से 'नंदन' में आए, तो स्वाभाविक है कि बाल साहित्य में उसी तरह का मयार निर्मित करने की उनकी लालसा और सपना रहा होगा। शुरू में उससे बाल साहित्य के बड़े–बड़े शीर्षस्थ साहित्यकार जुड़े भी। इनमें बहुतों के बारे में मझे खुद भारती जी से ही सुनने को मिला। इनमें मूर्धन्य कवि सोहनलाल द्विवेदी जी के बारे में तो उन्होंने बहुत बातें बताईं। द्विवेदी जी दिल्ली आते तो 'नंदन' कार्यालय में जरूर आते थे। कभी–कभी भारती जी के आवास पर भी वे रुक जाते थे। उनमें एक बालसुलभ सरलता थी, जिसके बहुतेरे हैरत भरे वृत्तांत भारती जी सुनाया करते थे।

सच ही भारती जी के समय में 'नंदन' की ऐसी धज थी कि बाल साहित्य के बड़े से बड़े दिग्गज लेखक बड़े आनंद और उत्सुकता से भरकर वहाँ आया करते थे। इनमें शकुंतला सिरोठिया, द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, सेवक जी, डॉ. श्रीप्रसाद, राष्ट्रबंधु जैसे साहित्यकार भी थे और 'नंदन' बाल साहित्य ही नहीं, बाल साहित्यकारों का भी स्वाभाविक 'अपना घर' बन गया था। एक तरह का हॉल्ट स्टेशन। इन बड़े कद के साहित्यकारों में शकुंतला सिरोठिया, माहेश्वरी जी और सेवक जी के आने पर भारती जी किस तरह आंतरिक उत्साह से धधाकर उठते थे और उनसे गले मिलते थे, इसकी मुझे अच्छी स्मृति है।

जाहिर है, बाल साहित्य के इन बड़े साहित्यकारों के आने पर पत्रिका का रोजमर्रा का काम थोड़ी देर के लिए छूट जाता था। ऐसे क्षणों में 'नंदन' सिर्फ एक पत्रिका ही नहीं, बाल साहित्य का एक स्वाभाविक विचार-मंच और कभी-कभी तो बाल साहित्य का एक तीर्थ बन जाती थी, जहाँ विभिन्न दिशाओं और ओर-छोर से मुसाफिर आते थे तो साथ ही बाल साहित्य की अलग-अलग धाराएँ मिलकर पयस्विनी बनती थीं। बेशक भारती जी को ही इसका श्रेय जाता है कि एक व्यावसायिक पत्रिका को उन्होंने अपनी सुरुचि और संस्कारों से बाल साहित्य का एक सांस्कृतिक तीर्थ बना दिया था।

भारती जी के संपादक का जो मानवीय और संस्कारी रूप मैंने देखा, उसकी गहरी छाप अब भी मेरे मन में है। इसी तरह बाँकेबिहारी भटनागर जब 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के संपादक न रहे, तब उनकी पहले वाली धज भी न रही। आर्थिक मुश्किलें भी थीं। ऐसे में काम निकालकर परे सरक जाने वाले लोगों की कमी नहीं रहती। पर भारती जी ने उस समय भी उनके सम्मान की चिंता की और कई तरह से उन्हें सहारा दिया।

भारती जी जाने-अनजाने मुझे बाल साहित्य में कुछ बड़े कामों के लिए तैयार कर रहे थे, और अपने सपने को मेरे मन और आत्मा में उतार रहे थे, इसकी ओर तब इतना ध्यान ही नहीं गया था। पर आज सोचता हूँ, तो मन विस्मय से भर जाता है।

'मनु जी, मैं जयप्रकाश भारती बोल रहा हूँ!' :- मैं इस बात के लिए जीवन भर भारती जी का शुक्रगुजार रहूँगा कि वे बड़े दुख और तकलीफ के दिनों में मुझे 'नंदन' में लाए। और इससे भी बड़ी बात मेरे लिए यह थी कि बड़े सम्मान के साथ मेरा पदार्पण हुआ। हिंदुस्तान टाइम्स पत्रकारिता की शिखर संस्था थी, पर इसमें नियुक्ति के लिए न मेरी कोई लिखित परीक्षा हुई और न कोई औपचारिक इंटरव्यू, जबकि आम दौर से संपादकीय विभाग में नियुक्ति के लिए लिखित परीक्षा और फिर इंटरव्यू आदि की प्रथा है। बहुत से लोग संपादकीय विभाग में प्रशिक्षु के रूप में आए और बाद में कुछ अंतराल के बाद वे उप-संपादक नियुक्त हुए। पर उप-संपादक के रूप में ही मेरी सीधी और बिल्कुल अनौपचारिक किस्म की नियुक्ति थी। अखबार में संपादकीय विभाग के खाली पद के लिए जिस तरह विज्ञापन दिया जाता है, वैसी औपचारिकता तक नहीं।

'नंदन' में उप-संपादक के लिए जगह खाली थी और भारती जी ने कृष्णकुमार जी से कहा था कि कोई योग्य और मेहनती व्यक्ति दिल्ली प्रेस में हो, तो वे बात करके बताएँ। कुछ ही समय पहले मेरी एक बाल कविता 'नंदन' में छपी थी। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'पराग' समेत बाकी सब पत्र-पत्रिकाओं में तो निरंतर मेरी रचनाएँ छपती ही थीं। कृष्णकुमार जी ने जब मेरा नाम लिया तो भारती जी ने कहा, 'हाँ, प्रकाश मनु के नाम से तो मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। पर क्या वे दिल्ली प्रेस छोड़कर हमारे यहाँ आना पसंद करेंगे? वहाँ तो एक बड़ा संसार है, पर हमारी पत्रिका तो सिर्फ बच्चों की ही है। तो क्या उनके लिए यह रुचिकर होगा?'

कृष्णकुमार जी ने कहा, 'मैं उनसे बात करके आपको बताऊँगा!'

अगले दिन उन्होंने मुझसे कहा, 'देखिए मनु जी, भारती जी से मेरी बात हुई है। वे 'नंदन' में आपको लेना चाहते हैं। मेरी मानिए, आप वहाँ ज्वाइन कर लीजिए। यह जगह वाकई आपके लिए नहीं है। मुझे बहुत दुख होता है आप जैसे प्रतिभावान व्यक्ति को यहाँ देखकर। यहाँ आपकी कोई कद्र नहीं है।'

शायद आपके पास कभी उनका फोन आएगा। आपसे वे पूछें कि क्या आप 'नंदन' में आना चाहेंगे, तो आप 'हाँ' कह दें।'

मैंने कहा, 'ठीक है कृष्णकुमार जी!'

और सचमुच उसके दो-एक दिन बाद ही भारती जी का फोन दिल्ली प्रेस में आया, 'आप क्या मनु जी बोल रहे हैं? मैं भारती हूँ!'

आवाज आई, 'मनु जी, मैं जयप्रकाश भारती बोल रहा हूँ।...कृष्णकुमारजी ने आपको बताया होगा।'

'जी भारती जी, बताइए।' मैंने उन्हें नमस्कार करके कहा। भारती जी ने कहा, 'कल आप मुझसे मिलने आ सकते हैं क्या? आपसे कुछ बात करनी है।'

'ठीक है भारती जी, मैं दोपहर बाद आ जाऊँगा।' मैंने कहा।

अगले दिन दिल्ली प्रेस से आधे दिन की छुट्टी लेकर मैं 'नंदन' के दफ्तर पहुँचा तो भारती जी बड़े प्रेम से मिले। संपादक होने का जरा भी रौब नहीं। आवाज कुछ धीमी और मृदुल सी। मेरे लेखन के बारे में शायद कुछ और जान लेना चाहते थे। क्या मैं 'नंदन' पढ़ता हूँ? कैसी लगती है? क्या इसे और बेहतर बनाने के लिए कुछ सुझाव हैं मेरे पास? यह भी पूछा। जैसा मुझे लगा, मैं बेलाग ढंग से बताता गया। सुनकर बीच-बीच में मुस्कुराने लगते। इस तरह बहुत सारी बातें हुईं।

उन्होंने पूछा, 'बाल साहित्य की दुनिया तो उतनी बड़ी नहीं है। दिल्ली प्रेस में तो आप सारा कुछ देखते हैं। तो यहाँ बच्चों के लिए सिमटकर कुछ अटपटा तो नहीं लगेगा?' मैंने कहा, 'नहीं भारती जी, बल्कि मुझे अच्छा लगेगा, ताकि बाकी सबसे मुक्त होकर इसे अच्छी तरह समझ सकूँगा। और अपनी पूरी शक्तियाँ इसी में लगाऊँगा, तो हो सकता है, मैं कुछ ठोस और सार्थक काम कर पाऊँ।'

उन्होंने मुझसे 'नंदन' के लिए आदि शंकराचार्य जी पर चित्रकथा लिखने का आग्रह किया। मैंने उन्हें चित्रकथा लिखकर दी, तो उन्हें काफी अच्छा लगा। फिर उनके कहने पर मैंने 'नंदन' के बड़े लोकप्रिय स्तंभ 'तेनालीराम' के लिए तेनालीराम की हास्य और चतुराई की भी कुछ कथाएँ लिखीं।

मुझे पता नहीं था कि भारती जी का यह अपना ढंग था मेरे अनजाने में ही मुझे जाँचने-परखने का। उन दिनों हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यकारी अध्यक्ष नरेश मोहन थे। भारती जी ने बानगी के तौर पर मेरी कुछ रचनाओं पर अपनी राय लिखकर उन्हें कार्यकारी अध्यक्ष के पास भिजवा दिया। साथ ही एक नोट में लिखा कि प्रकाश मनु की योग्यता से मैं संतुष्ट हूँ। 'नंदन' में उप-संपादक के रूप में मैं इनकी नियुक्ति करना चाहता हूँ।

खुले बाल साहित्य के पन्ने धीरे-धीरे :- यों भारती जी को सिर्फ श्रेय नहीं जाता कि वे मुझे 'नंदन' में लाए, बल्कि कहना चाहिए कि मुझे एक लेखक के पूरे सम्मान के साथ लाए। मैं काम करने में सुख पाने वाला व्यक्ति था। मैंने सोचा कि अगले दिन से ही मुझे काम बता दिया जाएगा और मैं उसमें लीन हो जाऊँगा।

पर भारती जी ने मुझसे कहा, 'अभी कुछ दिनों तक आपको कुछ नहीं करना। बस, 'नंदन' की पुरानी फाइलें हैं। इन्हें बीच-बीच में से उलटते-पलटते और पढ़ते रहिए।' और मुझे याद है कि कोई हफ्ते-दो हफ्ते यही सिलसिला चला। शाम को रोजाना भारती जी अपने कमरे में बुलवाते और कोई घंटे-दो घंटे तक मुझसे बातें करते। 'नंदन' में जो अच्छा लगा, वे मुझसे जानना चाहते थे। जो अच्छा नहीं लगा, वह भी। बाल साहित्य की महत्ता और ऐतिहासिक विकास-क्रम के बारे में वे मुझे बताते और इस बात पर खेद प्रकट करते कि बाल साहित्य को जो महत्त्व मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा। इसके साथ ही वे इस बात की ओर भी बार-बार मेरा ध्यान आकर्षित करते कि बाल साहित्य में अच्छे ढंग के संदर्भ ग्रंथ नहीं हैं। इनके बिना कोई भी साहित्य आगे नहीं आ सकता और उसके विकास के रास्ते नहीं खुल सकते।

भारती जी की इन बातों का वाकई मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। यों मैं बच्चों के लिए लिखने तो बहुत पहले से लगा था, पर कहना चाहिए कि बाल साहित्य की पहली दीक्षा मुझे भारती जी ने ही दी। मुझे बाल साहित्य से जोड़ने और संस्कारित करने का काम भी उन्होंने बहुत अनोखे ढंग से किया। 'नंदन' की हर फाइल (जिल्द) में बारह अंक होते थे। मैं करीब दो दिन में एक पूरी फाइल पढ़ लेता था और उनमें छपी हुई रचनाओं की भारती जी से चर्चा करता था। पर उससे पहले तो खुद मेरे भीतर एक बहस छिड़ जाती कि यह रचना अच्छी है। यह कहीं ज्यादा अच्छी है और यह तो बड़ी अद्भुत और बेमिसाल है। इस तरह बाल साहित्य की कहानियों, कविताओं आदि के साथ-साथ बाल साहित्य के अच्छे रचनाकारों से भी मैं परचने लगा।

संपादन के अलावा भारती जी ने मुझे 'नंदन' के लिए कविताएँ चुनने का जिम्मा भी सौंपा। जिन दिनों मैं दिल्ली प्रेस में था, तो 'सरिता', 'मुक्ता', 'गृहशोभा', 'भूभारती', 'चंपक' और 'सुमन सौरभ' में प्रकाशनार्थ आने वाले सभी गीत और कविताएँ विश्वनाथ जी मेरे पास भिजवाया करते थे। मैं उनमें से छपने लायक रचनाओं का चयन करके विश्वनाथ जी के पास भिजवा देता था। फिर वे उनमें से ही कुछ रचनाएँ स्वीकृत करते थे, बाकी वापस चली जाती थीं। छपने से पहले उनके संपादन का जिम्मा भी मेरा ही था। 'नंदन' में भी यह सिलसिला चल निकला।

'चंद्रप्रकाश जी, 'नंदन' में कविताएँ अब आप ही देखिए। जो कविताएँ प्रकाशनार्थ आएँगी, उन्हें मैं आपके पास भिजवाता रहूँगा। उन्हें देखकर आप अच्छी रचनाओं को चुनकर अलग रखते जाइए। फिर मुझे बता दीजिए कि ये कविताएँ छपने लायक हैं।'

भारती जी मुझे मेरे पूरे नाम से यानी 'चंद्रप्रकाश जी' कहकर ही बुलाते थे। शुरू में कुछ दिन उन्होंने 'मनु जी' कहा, पर शायद इसमें उन्हें कुछ बनावटीपन लगा।

अलबत्ता 'नंदन' के लिए कविताओं के चयन की यह जिम्मेदारी सन् 1986 में मेरे साथ जुड़ी और सन् 2010 तक, जब मैं 'नंदन' की सेवाओं से मुक्त हुआ—तब तक चलती रही। 'नंदन' में छपने के लिए बहुत कविताएँ आती थीं। हर महीने जब 'नंदन' की सामग्री प्रेस में छपने जाती थी, भारती जी मुझे बुला लेते थे। कहते थे, 'चंद्रप्रकाश जी, कविताएँ ले आइए।'

मैं कविताओं की पूरी फाइल उठाकर ले जाता था। उसमें अच्छी रचनाओं को मैं आगे रख लेता था। भारती जी अक्सर वही देख लेते

थे। एक-एक कविता पर देर तक बात चलती थी। किसी कविता का मुखड़ा उन्हें अच्छा लगता था, तो आगे की लाइनें और छंद पटरी से उतरता जान पड़ता। कोई कविता अच्छी लगती, पर उसकी आखिरी कुछ पंक्तियाँ खटकतीं। कई बार तुक जबरदस्ती वाली लगती, या फिर कोई बिंब बहुत उलझाऊ जान पड़ता। वे कहते, 'चंद्रप्रकाश जी, यहाँ मामला अटक गया। यह बात तो बच्चा नहीं समझेगा। भला वह इस बिंब का क्या मतलब निकालता फिरेगा? पता नहीं, बच्चों के लिए लिखने वाले कवि यह बात क्यों नहीं सोचते।'

और उनसे बातचीत में न जाने कब, अनायास ही बाल कविता को जानने-समझने की एक आलोचनात्मक दृष्टि मेरे भीतर विकसित होने लगी। आगे चलकर बेशक उसी से 'हिंदी बाल कविता का इतिहास', 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास', 'हिंदी बाल साहित्य के शिखर व्यक्तित्व', 'हिंदी बाल साहित्य के निर्माता' और मेरी बहुतेरी किताबें लिखी गईं। बीज रूप में भारती जी की बातों-बातों में दी गई यह बड़ी सीख ही मुझे राह दिखा रही थी।

मेरे जीवन का एक विचित्र रोमांचक क्षण था कि जिस समय भारती जी 'नंदन' से सेवामुक्त हो रहे थे, करीब-करीब तभी मेरी पुस्तक 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' छपकर आई। मैंने उन्हें पुस्तक की एक प्रति भेंट की तो उन्होंने खासी प्रसन्नता प्रकट की और कहा, 'चंद्रप्रकाश जी, मैं इसे जरूर पढ़ूँगा।'

मैंने बहुत भावुक होकर कहा, 'भारती जी, सीखा तो आपसे ही है।' और कुछ कहा ही नहीं गया। मेरा गला भरा हुआ था। कुछ और कहता तो स्वर भर्राने लगता।

भारती जी का विपुल सृजनात्मक लेखन :- पर भारती जी कोरे संपादक नहीं थे। वे बड़े समर्थ लेखक भी थे और उन्होंने स्वयं भी बाल साहित्य की कई विधाओं में लिखा है। इनमें बच्चों के लिए लिखी गई बड़ी खिलंदड़ी कविताओं के अलावा रसपूर्ण कहानियाँ, बाल जीवनियाँ और ज्ञान-विज्ञान की बड़ी सुंदर पुस्तकें हैं। भारती जी के शिशुगीत और बाल कविताओं की भी कई पुस्तकें हैं, जिनसे उनके बच्चों सरीखे सरल मन और स्वभाव का पता चलता है। खासकर उनके कुछ शिशुगीतों में बहुत कुछ नयापन है।

अगर भारती जी का सबसे अच्छा शिशुगीत चुनना हो तो मुझे एक पल की भी देरी नहीं लगेगी। उनका यह अद्भुत शिशुगीत है 'राजा-रानी'। जाहिर है, ये नए जमाने के राजा-रानी हैं तो इनमें बहुत कुछ नया होगा ही। भारती जी ने एकदम नए अंदाज में उनका यह दिलचस्प खाका पेश किया है —

एक था राजा, एक थी रानी, /दोनों करते थे मनमानी।
राजा का तो पेट बड़ा था, /रानी का भी पेट घड़ा था।
खूब थे खाते छक-छक-छककर,/फिर सो जाते थक-थक-थककर।
काम यही था बक-बक, बक-बक,/नौकर से बस झक-झक, झक-झक!

भारती जी ने अनेक शिशुगीतों में ध्वनियों के प्रयोग किए हैं, इसलिए कि बच्चों को ध्वनियों से प्रेम होता है। निरर्थक ध्वनियाँ हों, तो भी कोई बात नहीं। पर उसमें ध्वन्यात्मकता हो और एक किस्म का सुरीलापन हो, यह जरूरी है। भारती जी के अनेक शिशुगीत इस जादुई अंदाज को पकड़ पाए हैं, हालाँकि कहीं-कहीं इनकी अति भी है, जिससे ये प्रयोग निरर्थक और अधूरे ही रह गए हैं। इसी तरह फूलों पर लिखी गईं भारती जी की कविताएँ मुझे ज्यादा पसंद नहीं आईं, क्योंकि इनका अंदाज कुछ-कुछ निबंधात्मक तरीके से फूलों की विशेषताएँ गिनाना है।

हाँ, शिशुगीतों में जो एक मनमोहक पूर्णता होती है, उसे जहाँ-जहाँ वे अपने गीतों में उतार पाए, वहाँ कुछ न कुछ नया सामने आया। इस लिहाज से 'रॉकेट' पर लिखा गया उनका एक शिशुगीत अलग ढंग का और बड़ा चुस्त-दुरुस्त है। आठ पंक्तियों का यह मुकम्मल शिशुगीत आप जरा पढ़ें—

राकेट उड़ा हवा में एक, / लाखों लोग रहे थे देख।
पहले खूब लगे चक्कर, / हुआ अचानक छू-मंतर।
जा पहुँचा चंदा के पास, / जहाँ न पानी, जहाँ न घास।
उलटे पाँव लौट आया, / साथ धूल-मिट्टी लाया।

वैज्ञानिक विषयों पर भी बोलचाल के अंदाज में चुस्त, सधे हुए गीत लिखे जा सकते हैं, भारती जी का 'रॉकेट' शिशुगीत इसका एक उम्दा उदाहरण है।

इसी तरह खिलंदड़ापन शिशुगीतों में कैसे लाया जाए, इसकी कोशिश उनके यहाँ निरंतर है। 'दिल्ली की बिल्ली' उनका ऐसा ही नए रंग का एक बढ़िया शिशुगीत है जिसमें लय और रवानगी अच्छी है और एक तरह का शोख, चटपटा अंदाज भी, जो खासकर नन्हें-मुन्ने शिशुओं को भाता है—

दिल्ली से इक बिल्ली आई/बिल्ली क्या मरगिल्ली आई,
मैंने पूछा बिल्ली ताई/खाओगी तुम दूध-मलाई?
खाकर दूध-मलाई भाई,/वह तो करने लगी लड़ाई।
करती फिरती म्याऊँ-म्याऊँ/अभी भूख है, अब क्या खाऊँ?

पर भारती जी मूल रूप से या कहें प्रथमत: शायद कहानीकार हैं और उन्होंने बच्चों के लिए एक से एक सुंदर कहानियों लिखी हैं। 'लो

गुब्बारे', 'दीप जले शंख बजे', 'सूरज का खेल' और 'हीरे-मोती मणियाँ' समेत उनकी बाल कहानियों के कई संग्रह हैं। इनमें 'लो गुब्बारे' उनका सबसे चर्चित संग्रह हैं, जिसमें उनकी चुनी हुई ग्यारह कहानियाँ शामिल हैं। इनमें 'जन्मदिन', 'ढोल', 'गुब्बारे', 'छोटा झोला-बड़ा झोला', करामाती केतली', 'शीशे का महल' कहानियाँ खासी प्रसिद्ध हैं। खासकर 'ढोल' कहानी तो ऐसी मजेदार है कि बच्चे पढ़ते-पढ़ते चहक उठेंगे।

चलिए, जरा 'ढोल' कहानी की चर्चा करें। इसमें एक जादूगरनी का बड़ा ही मजेदार किस्सा है जिसके पास जादू की जूतियाँ थीं। एक दिन वह कहीं से घूम-फिरकर लौटीं। नींद की खुमारी में उसने जल्दी-जल्दी जूतियाँ उतारकर फेंकीं तो वे जा पहुँचीं कूड़े के ढोल में। अब तो बड़ा तमाशा हुआ। कूड़े के ढोल के पैर लग गए और वह सरपट भागा। भागा तो बस भागता ही चला गया। यों ही भागते-भागते सड़क पर आया। यहाँ पहुँचा, वहाँ पहुँचा और क्या-क्या उसने तमाशे किए, कहाँ-कहाँ कैसा हड़कंप मचा, इस सबका किस्सा भारती जी ने बड़े नाटकीय अंदाज में बयाँ किया है।

कहानी के अंत में जादूगरनी की नींद खुली तो वह दौड़ी-दौड़ी गई अपने ढोल को पकड़ने के लिए और जब उसने ढोल को पकड़ा, तब लोगों की साँस में साँस आई और लोग चिल्ला पड़े कि भूत पकड़ा गया।

ऐसे ही भारती जी की कहानी 'छोटा झोला, बड़ा झोला' में एक लालची बूढ़े वैद्य का किस्सा है, जो नागराज से खासा धन वसूलने के चक्कर में बुलबुल को पकड़कर अपने साथ ले जाना चाहता है। मगर मुक्त हवा में घूमने और विचरण करने की आदी बुलबुल उसके चक्कर से बच निकलती है और लालची वैद्य बेचारे मुँह मारा-सा देखते रह जाता है।

'नंदन' में समय-समय पर छपी भारती जी की कहानियाँ बाद में 'दीप जले शंख बजे' और 'सूरज का खेल' संग्रहों के रूप में प्रकाशित हुईं। इनमें भारती जी की कई अच्छी कहानियाँ संकलित हैं। खासकर 'दीप जले शंख बजे' कहानी तो बड़ी ही सुंदर भावनात्मक कहानी है जो मन पर गहरी छाप छोड़ती है। यह वेल्दी नामक एक विदेशी लड़की की कहानी है जिसने दीपों के त्यौहार के बारे में अपनी नानी से सुना था। तभी उसने तय कर लिया था कि वह भारत जाएगी और स्वयं अपनी आँखों से उस त्यौहार की जगर-मगर देखेगी। आखिर वेल्दी नारायणपुर में आई, स्वामी सदानंद से मिली और भारत में आकर कुछ इस कदर 'भारतीय' हो गई कि गाँव की औरतें कहने लगीं, 'यह औरत तो लक्ष्मी है। इसने हमारे गाँव को बदल दिया। हमें नई रोशनी में जीना सिखा दिया।'

'हीरे-मोती मणियाँ' भी भारती जी की कहानियों का बहुचर्चित संग्रह है। इसमें उनकी छोटी-छोटी लेकिन मन को छू लेने वाली उनसठ कहानियाँ शामिल हैं। ये कहानियाँ बाल पत्रिका 'नंदन' में 'आओ बात करें' नाम से छपनेवाले भारती जी के संपादकीयों के रूप में सामने आ चुकी हैं तथा 'नंदन' के बाल पाठकों ने इन्हें खासा सराहा था। 'हीरे-मोती मणियाँ' में इन्हें एक साथ पढ़ना बड़ा सुखद लगता है। खासकर 'नागोजी ने लिखा', 'उड़ गया सिंहासन', 'देश के तिलक' 'सेठ से संत', 'मुखौटों का महल', 'मैं दानव महान', 'चाँदी के गोले ढालो', 'मखमल का जूता', 'वेमना के बोल' और 'पापा ने किताब दी' तो न भुलाई जा सकने वाली बड़ी ही सुंदर कहानियाँ हैं। भारती जी की कहानियों के कुछ और चर्चित संग्रह हैं, 'चाँद पर चहल-पहल' (1993), 'शीशे का महल' (1997), 'मेरी प्रिय बाल कहानियाँ' (2000), 'सूरज का खेल' (1994) और 'झिलमिल कथाएँ' (1989)।

भारती जी ने बच्चों के लिए कुछ नाटक भी लिखे हैं, पर लगता है, इसमें उनका मन विशेष रमा नहीं। भारती जी का एक बाल नाटक है 'सारे जहाँ से अच्छा'। इसकी शुरुआत अच्छी है, जहाँ दादा जी राकेश और छाया के मन में कुछ नया करने की लगन पैदा करते हैं। जहाज बनाकर आसमान में उड़ने के उनके सपने और लगन से उत्साहित होकर पीठ ठोंकते हैं। लेकिन आगे नाटक में यह नाटकीयता बनी नहीं रहती और वह किसी लेख जैसा हो जाता है। भारती जी का 'ढोल चला' कहीं ज्यादा मजेदार बाल नाटक है, जिसमें कूड़ा डालने वाला ढोल एक दिन अचानक चल पड़ा। चलते-चलते वह सड़क पर आ जाता है और फिर वहाँ अजब-गजब तमाशे होते हैं। बाल नाटकों में भारती जी का कहीं ज्यादा बड़ा काम उनके द्वारा संपादित 'श्रेष्ठ बाल एकांकी' संचयन है, जिसमें बच्चों के अठारह नाटक शामिल हैं। इनमें रेखा जैन का 'अप्सरा का तोता', चिरंजीत का 'मदारी', श्रीकृष्ण का 'मरखना बैल', उषा यादव का 'अंशदान', रमेशदत्त शर्मा का 'भाँप लेते हैं लिफाफा देखकर', जयप्रकाश भारती का 'ढोल चला' और चंद्रदत्त इंदु का 'एक मूँछ और' नाटक बच्चों को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा संग्रह में डॉ. श्यामलाकांत वर्मा, राष्ट्रबंधु, रोहिताश्व अस्थाना, गिरिराजशरण अग्रवाल, राजेंद्रकुमार शर्मा आदि के बाल नाटक भी शामिल किए गए। भारती जी के इस संचयन की खासियत यह है कि इसमें कई अलग-अलग मूड्स के कई बाल नाटक एक साथ देखने को मिलते हैं।

बच्चों के लिए ज्ञान-विज्ञान साहित्य और जीवनियाँ :- इसके अलावा बच्चों के लिए नएपन और ताजगी से भरपूर ज्ञान-विज्ञान साहित्य की सर्जना में भारती जी का योगदान बहुत बड़ा है। उन्होंने

बच्चों को आसान और रोचक शैली में वैज्ञानिक विषय की जानकारी देने की पुरजोर कोशिश की। उनकी कई किताबें विज्ञान-लेखन की शैली के लिहाज से मॉडल कही जा सकती हैं। भारती जी की बहुचर्चित पुस्तक 'कितना अनजाना तुम्हारा कारखाना' कोई और नहीं, बल्कि यह शरीर ही है। जरा गौर से देखें तो इसका काम करने ढंग भी किसी कारखाने की तरह है जिसमें कोई कमी नहीं है। हाँ, आदमी अपनी गलतियों से ही कभी-कभी उसमें गड़बड़ियाँ पैदा कर देता है। हालाँकि इस कारखाने की खूबी यह है कि उनमें हुई गड़बड़ियों को भी वह खुद-ब-खुद दूर कर लेता है। बहुत ज्यादा मुश्किल आने पर ही हमें डॉक्टर के पास जाना पड़ता है ताकि हमारा कारखाना आगे अच्छे ढंग से चलता रहे।

इस किताब में कारखाने के अंगों के रूप में दिल, फेंफड़े, रक्त तथा कारखाने के ताने-बाने यानी हड्डियों, नसों, धमनियों आदि के बारे में इतने मजेदार ढंग से बातें बताई गई हैं कि बच्चे खेल-खेल में बहुत कुछ सीख जाएँगे। सच तो यह है कि बच्चों के लिए विज्ञान की अच्छी किताबें कैसे लिखी जाएँ, इसके मॉडल के रूप में भारती जी की इस किताब को प्रस्तुत किया जा सकता है।

भारती जी द्वारा लिखी गई 'विज्ञान की विभूतियाँ' भी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें भारती जी ने गैलीलियो, डारविन, पास्चर, जगदीशचंद्र बसु, मैडम क्यूरी, आइंस्टाइन, अलेक्जेंडर फ्लेमिंग तथा सर सी.वी. रमन की जीवन-कथाएँ लिखी हैं। भारती जी की भाषा सीधी-सरल है तथा बात को छोटे-छोटे वाक्यों में रोचक ढंग से कहना उन्हें आता है। लिहाजा 'विज्ञान की विभूतियाँ' बाल जीवनियों में अपने ढंग की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक कही जा सकती है। किसी रोचक किस्से-कहानी की तरह जीवनी लिखने का उनका अंदाज बच्चों को लुभानेवाला है। नई पीढ़ी के लेखक उनसे यह सीख सकते हैं। इसके अलावा भारती जी बच्चों के लिए लिखी गई ज्ञान-विज्ञान की अन्य पुस्तकें हैं—'पेड़ लगाओ सुखी रहो', 'चलो चाँद पर', 'ग्रामीण जीवन में विज्ञान' तथा 'अग्नि'। इनमें 'चलो चाँद पर चले' और 'अग्नि' पुस्तकें खासी चर्चित हुई थीं।

इसी तरह भारती जी द्वारा संपादित पुस्तक 'इक्कीसवीं सदी की श्रेष्ठ विज्ञान-कथाएँ' बच्चों की अच्छी विज्ञान-कथाओं को संकलित करने की दिशा में अच्छा और सार्थक प्रयास है। इन विज्ञान-कथाओं में हरीश गोयल अगर काल-पात्र को लेकर विज्ञान-कथा की फैंटेसी गढ़ते हैं, तो अरविंद मिश्र उस दिन की कल्पना करते हैं जबकि रोबोट आदमी की सत्ता को मानने से इनकार कर देगा। इसी तरह रमेश सोममंशी की 'अंडे देनेवाले मुरगे', विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी की 'याददाश्त की चोरी', विनीता सिंघल की 'अपराधी कौन' और डॉ. मनोज पटैरिया की 'प्रतिभा का गान' निस्संदेह सुंदर विज्ञान-कथाएँ हैं।

हिंदी में खासकर बच्चों और किशोरों को ध्यान में रखकर लिखी गईं आत्मकथाएँ या आत्मकथात्मक लेखन अभी बहुत महत्त्वपूर्ण रूप में नहीं उभर पाया। लेकिन फिर भी ऐसी कुछ किताबें इधर दिखाई पड़ने लगी हैं, जिनमें समाज के महत्त्वपूर्ण लोगों और महानायकों के जीवन-वृत्तांत आत्मकथात्मक विन्यास में ढालकर प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें से बहुत सा आत्मकथा-लेखन तो जो बड़ों के लिए किया गया, उसी को बच्चों के लिए सहज, सरल भाषा और रोचक अंदाज में पेश किया गया है। ऐसी किताबों में भारती जी की 'उनका बचपन यों बीता' एक अच्छी और आदर्श किताब कही जा सकती है। पुस्तक में महात्मा गाँधी, चाचा नेहरू, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, लोकमान्य तिलक, विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर, राजेंद्र बाबू, सरदार पटेल, पं. मदनमोहन मालवीय, संत विनोबा भावे और वीर सावरकर के बचपन को मानो शब्दों में साकार कर दिया गया है।

भारती जी का योगदान इतना बड़ा और बहुमुखी है कि एक लेख में उसे ढालना मुश्किल क्या, असंभव ही है। वे सही मायने में बाल साहित्य के पितृपुरुष थे, जिन्होंने बहुत लोगों को बाल साहित्य से जोड़ा। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, भारती जी ने ही सबसे पहले यह नारा दिया था कि इक्कीसवीं सदी बालक और बाल साहित्य की होगी।

बाल साहित्य भी अब धीरे-धीरे मुख्य धारा में आ रहा है।

यहाँ तक कि जिन विद्वानों और समालोचकों को पहले हम नाक-भौं सिकोड़ते देखते थे कि बाल साहित्य भी कोई गंभीरता से लेने की चीज है, वे अब इस पर गंभीरता से सोच रहे हैं और बात कर रहे हैं। इसका श्रेय काफी हद तक भारती जी को ही जाता है जिन्होंने निरंतर अपने लेखों और किताबों के जरिए बाल साहित्य की मशाल को जलाए रखा। भारती जी के इस ऐतिहासिक योगदान को समझने की एक अच्छी कोशिश उनकी पहली पुण्यतिथि पर प्रकाशित 'बाल साहित्य के युग निर्माता जयप्रकाश भारती' पुस्तक है, जिसका संपादन डॉ. शकुंतला कालरा और भारती जी की बेटी डॉ. रचना कुमार ने किया था।

बाल साहित्य की इस संभावनाओं से दमकती छवि में मुझे तो आज भी भारती जी का सौम्य चेहरा नजर आता है। उन्होंने अपना समूचा जीवन जिस काम में लगाया, वही ध्रुवतारा बनकर आज हमें राह दिखा रहा है और बरसों तक इसी तरह आशा का संबल बनकर हमारा मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

545, सेक्टर-29,
फरीदाबाद-121008 (हरियाणा)
मो.-09810602327

आम का पेड़

- मनीष कुमार चौरे

जन्म - 1 जुलाई 1982।
जन्मस्थान - मेहरागाँव, इटारसी (म.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

ऋतुराज वसंत के आगमन के साथ ही आम के पेड़ों में बौर फूट पड़ते हैं। आम्रपुष्प के पुष्पित नए कल्ले मधुर-मधु के प्यासे भौरों को आकृष्ट करने लगते हैं। अमराइयाँ मंजरी से लद जाती हैं और अपनी मादकता से पूरे वातावरण को मदहोश कर देती हैं। प्राचीन समय में 'वसंतउत्सव' ही 'मदनउत्सव' के रूप में मनाया जाता था। वसंत ऋतु में सुगंधित फूलों, फलों और लताओं से सुसज्जित प्रकृति का सौंदर्य देखते ही बनता है। हरीतिमा ओढ़े सुशोभित वसुंधरा अपने शृंगार में आम्र-मंजरी रूपी एक ओर नग धारणकर इठलाने लगती है। खेतों में फूली सरसों और गेहूँ की बालियाँ मंद-पवन के झोंके में झूलने लगती है। चहचहाते कलरव करते पंछी वसंत के दूत प्रतीत होते हैं -

सहकार कुसुम केसर निकर भरामोद मूर्च्छित दिगन्ते।
मधुर मधु विधुरमधुपे मधौ भवेत् कस्य नोत्कणठा?

प्रकृति की इसी मनमोहक छवि पर मोहित होकर महाकवि 'कालिदास' ने अपने काव्यों की नायिकाओं को सुंदर पुष्पों और पत्तियों से शृंगारित कर उनकी रमणीयता का सुंदर बखान किया है। कालिदास ने अपने ग्रंथ 'ऋतुसंहार' के छठे सर्ग में वसंत के मनोहरी प्रभाव का सुंदर चित्रण किया है। महाराज भोजदेव कहाँ पीछे रहने वाले थे उन्होंने भी अपने ग्रंथ 'सरस्वती कंठाभरण' में 'सुवसंतक' (बसंतावतार का दिन अर्थात् जिस दिन वसंत पृथ्वी पर अवतरित होता है) के अवसर पर उस समय की नवयौवनाओं के कंठ में कुवलय की माला और कान में दुर्लभ आम्रमंजरियाँ धारण कर उन्हें ग्रामजन के आकर्षण का केंद्र बनाया है -

छणपिट्ठधूसरत्थणि, महुमअतम्मचिच्छ कुवलआहरणे।
कण्णकअचूअमंजरि, पूर्त्ति तुए मंडिओ गामो।।

प्रकृति के चितेरे रीतिकालीन कवि पद्माकर कि यह पंक्तियाँ स्वत: ही समस्त जड़-चेतन जगत पर बसंत के अद्भुत प्रभाव की अनुभूति करा देती है -

कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन में कलिन किलकंत है,
कहे पद्माकर परागन में पौन हूँ में,
पानन में पीकन पलासन पगंत है,
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
दैखों दीप-दीपन में दीपत दिगंत है,
बथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरयो बसंत है।

वास्तव में प्रकृति के सृजन और चित्रकारी को सूक्ष्मता से देखना है, तो घर के आँगन या बगीचे में आम का पेड़ लगाएँ। उसमें बौर (मंजरी) को फूटते देखें। उनकी गंध-सुगंध से आकर्षित भौरों की मधुर-गुंजार का सानंद लें। पराग-मकरंद का रसपान करते कीट-पतंगों की तल्लीनता को निहारें। डालियों पर नित्य आते-जाते उत्साहित खगों की मंगल कूकोड्डु से कूक मिलाएँ। शनै: -शनै: बढ़ती अमराइयों की गोलाई और भार का एहसास करें। पल-पल बदलते हरे केसलाए कोमल पत्तों में प्रकृति की मनमोहक रंगों की चित्रकारी देखें। जिस तरह माँ अपने शिशु को स्तनपान कराते समय अपने आँचल से ढक लेती है, उसी तरह आम अपने फलों को अपने हरे किसलाए पत्तों से ढक लेता है। प्रकृति किस चतुराई से कच्ची, खट्टी अमियों में एक बारिश के बाद ही मीठा-रस घोल देती है, वास्तव में प्रकृति की अद्भुत लेबोरेटरी का कोई शानी नहीं।

आम मेरा भी प्रिय फल है। गर्मियों के मौसम की कल्पना जहाँ मुझे पसीने से सरोवार कर देता है, वहीं कच्चे-पक्के आम का खट्टा-मीठा एहसास हृदय में ठंडक घोल देता है। इस पेड़ के साथ मेरा गहरा नाता है। इसलिए मुझे यह पेड़ हमेशा बचपन के दोस्तों की यादों-सा लगता है। इसे कच्ची हरी अमियों से लदे देख, मन प्रफुल्लित हो उठता है। कच्चे-आम पुदीना की चटनी हो, या खट्टा-मीठा पना, अचार, मुरब्बा या आमपापड़, स्मृति मात्र से मुँह में पानी आ जाता है।

गर्मियों में आम पर बातें होना आम बात है। क्या बच्चे? क्या बूढ़े? क्या जवान? सभी इसके स्वाद के दीवाने हैं। इसके चुम्बकीय आकर्षण से सभी परिचित हैं। कोई विरला ही होगा, जिसने खट्टी-मीठी अमियों की चाह में पत्थर न फेंके हों। फ्रूटी और माजा जैसे पेय पदार्थों में आम का स्वाद ढूँढ़ने वाले लोग 'साग' (डाल का पका खट्ठा-मीठा आम) का आनंद क्या जाने। राहगीर को सुस्ताना हो, किसान को थकान मिठाना हो या मजदूर को काम से दम लेना हो, इसकी शीतल छाँह से अच्छी पनाहगाह मुश्किल है।

विश्व में आम की लगभग 1400 से अधिक किस्में पाई जाती हैं, जिसमें 1000 से अधिक तो भारत में ही हैं। यहाँ आम की किस्मों में दशहरी, लँगड़ा, चौसा, फज़ली, बाम्बे ग्रीन, अलफांसो (हापुस), आम्रपाली, रत्ना, नीलम, हिम सागर, केशर, किशन भोग, मलगोवा, सुर्वन रेखा, वनराज, जरदालू, मल्लिका, अर्का अरुण, आदि प्रमुख हैं। उत्तर भारत तो आमों का मीठा टोकरा है।

आम, टपका, सौरभ, रसाल, चुवत, सहकार, पिकवल्लभ जैसे अनेक नामों वाला ये फल साधारण फल नहीं है। 'शतपत ब्राह्मण' से लेकर 'अमरकोश' तक इसके स्वाद-सुगंध की चर्चा और प्रशंसा बिखरी पड़ी है। आम के गुणगान में कालिदास, भोजदेव जैसे महान कवियों ने कविताएँ गुनगुनाईं तो मीर, मिर्जा जैसे शायरों ने अपनी शायरी सजाई, सिकंदर ने इसे सराहा है, तो मुग़ल सम्राट अकबर ने दरभंगा में एक लाख पौधे लगवाकर ('लाखीबाड़') आम के प्रति अपनी दीवानगी जाहिर की है।

आम की कुछ किस्मों की लोकप्रियता फिल्मी सितारों से कम नहीं। कद और लोकप्रियता में महानायक अमिताभ से मुकाबला करने वाली लखनऊ की दशहरी, बाजार में आते ही छा जाती है। बॉलीवुड के हिमैन (धर्मेंद्र) के समान रूप-रंग और कद-काठी वाला बादाम अपने ग्राहकों का दाम वसूल करने में सबसे आगे है। स्वाद, सुगंध और मिठास के लिए विदेशों में लोकप्रिय अलफांसो के क्या कहने, विदेशों में उसकी डिमांड के चलते अगर उसे हॉलीवुड स्टार कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। महँगे दाम के चलते पूरे सीजन साहब विदेशी प्रवास पर रहते हैं। नीलम और तोतापरी आम भोजपुरी स्टार मनोज तिवारी और निरुहासे कम नहीं गाँव-देहात में इनकी दीवानगी देखते ही बनती है।

प्राचीन समय से ही भारतीय संस्कृति का प्रकृति के साथ गहरा नाता रहा है। हिंदू धर्म में वृक्षों का बड़ा महत्व है पीपल, बरगद, नीम, गूलर, आम, जामुन, तुलसी, बेल जैसे वृक्ष शुभ माने जाते हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं बल्कि संपूर्ण प्रकृति के साथ आस्था, विश्वास और सहअस्तिव का रिश्ता बनाकर सहेजते, संरक्षित करते आए हैं। वैदिक काल से ही भारत में आम के पेड़ से प्राप्त लकड़ियाँ, पत्ते, फल इत्यादि का मांगलिक और शुभ कार्यों में उपयोग किया जाता रहा है। आम के पत्तों के बिना तो पूजा अधूरी मानी जाती है। आम के पत्तों का धार्मिक, आध्यात्मिक के साथ-साथ वैज्ञानिक आधार भी है। रामायण, महाभारत, वेद, पुराणों सहित कई हिंदू शास्त्रों में आम को उर्वरता के प्रतीक रूप में वर्णित किया गया है। इसीलिए तो पौराणिक कथाओं में आम्र मंजरी को कंदर्पदेव (कामदेवता) के पंचवाण में 'अमोघ वाण' कहा गया है।

विवाह-मंडप में लटकते तोरण हो या गृह-प्रवेश में द्वार पर कलावे में बँधे बंदनवार सभी हमारे आस्था और विश्वास के प्रतीक हैं। यज्ञ की वेदी सजाना हो या पूजा-कलश। मंत्र उच्चारण करते समय जल आचमन आम के पत्तों से किया जाता है। हवन-पूजन में आम की लकड़ी के उपयोग से वातावरण में शुद्धि आती है और सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह होता है। आम के पत्तों में चिंता और तनाव को मुक्त करने के तत्व पाए जाते हैं। ऑक्सीजन के मुक्त मार्ग को बढ़ावा देने और अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने की क्षमता के कारण इसका वैज्ञानिक महत्त्व निर्विवाद है।

भारतीय घरों में आम का अचार डालना किसी उत्सव की तैयारी से कम नहीं। एक-दो बारिश के बाद अचार डालने का सिलसिला जो शुरू होता है वह बारिश की विदाई तक अनवरत चलते रहता है। लंबी-चौड़ी हिदायतों के साथ घर के किसी जिम्मेदार व्यक्ति को बाजार से कच्चे आम लाने का जिम्मा सौंपा जाता है। क्योंकि माना जाता है-'अचार खराब तो साल खराब'। इसलिए बड़ी एतिहात के साथ अचार के मर्तबान को धो-माँजकर हींग-लुहान की धुनी देकर सुखाया जाता है। इस अचार महोत्सव को स्वादिष्ट और जायकेदार बनाने के लिए आस-पड़ोस की मसालेदार बातें और निंदा रस से परिपूर्ण दो-चार अनुभवी कुशल गृहणियों को आमंत्रित किया जाता है। लौंग, इलाइची, हींग, कालीमिर्च से लेकर राई, जीरा, सौंफ, कलौंजी, मैथी दाना तक शायद ही कोई मसाला छूटता होगा इस अचार रूपी यज्ञ की आहुति में। तभी तो आम का अचार स्वाद और

सुगंध में बेमिसाल होता है। पूरी या रोटी में दबी आम के अचार की महक पूरे वातावरण को महका देती है। रेल का डिब्बा हो या बस का सफर सहयात्री को चटकारे लेकर अचार खाते देख आपकी जठराग्नि अनायास ही जाग जाएगी। इसलिए तो कहा जाता है-'खाने का मजा तो खट्टे में ही है'।

जिस तरह शिशु के लिए माँ का दूध जीवनदायी है, उसी तरह आम का सेवन सेहत के लिए गुणकारी। माँ के दूध से इसके रस की तुलना करना अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि आम आपके स्वाद और सेहत का भरपूर ध्यान रखता है। आम में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट कोलोनकैंसर, ल्यूकेमिया और प्रोस्टेट जैसे खतरनाक कैंसर से बचाता है। विटामिन ए आँखों की रोशनी, तो विटामिन सी आपके चेहरे में निखार लाता है। इसमें मौजूद फाइबर और विटामिन-सी बढ़ते कोलेस्ट्रोल को संतुलित करता है। आम में मौजूद साइट्रिक और टरटैरिक एसिड शरीर के भीतर क्षारीय तत्वों को संतुलित और पाचन क्रिया को दुरुस्त करता है। आम में पाया जाने वाला ग्लूटामिन एसिड रोग प्रतिरोधक क्षमता और स्मरण शक्ति में इजाफा करता है। आम का पना शरीर में पानी का स्तर संतुलित रखता है और आपको गर्मी में 'धूप' और 'लू' से बचाता है। गुठली में मौजूद रेशे शरीर की अतिरिक्त चर्बी कम करते हैं। इसलिए हुआ न 'आम का आम गुठलियों का दाम' आमों के आकार-प्रकार और स्वाद-रंग में बड़ा अंतर है। कुछ बेर से भी छोटे और हल्के तो कुछ, हाथी पैर के समान भारी-भरकम। कुछ अत्यंत खट्टे और स्वादहीन तो कुछ स्वादिष्ट मीठे-रसीले। आम की जितनी किस्में मशहूर हैं, उतने ही किस्से भी। दुनिया का शायद ही कोई फल होगा जिस पर इतने शेरो-शायरी, किस्से-कहानियाँ, गीत, कविताएँ लिखी गई हों। आम के दीवानों की फेहरिश्त बड़ी लम्बी है। शायद ही कोई हो जिसे आम पसंद न हो।

मिर्जा ग़ालिब का आम किस्सा बड़ा मशहूर है। उनकी जितनी शेरो-शायरी मशहूर है, उतनी ही उनकी हाजिर जवाबी आम के लिए उनकी दीवानगी हद दर्जे की थी। गाहे-बगाहे उनके खतों में आम का जिक्र आम बात थी। आम का मौसम था, ग़ालिब दोस्तों के साथ आम का लुत्फ़ ले रहे थे। उनके एक दोस्त हकीम साहब जिनको आम नापसंद था, इत्तफाक से एक दिन गालिब के पास बैठे थे। मिर्जा आम खाते जाते थे और आम के छिलके और गुठली गली में फेंकते जाते थे। इतने में एक गधा आम के ढेर के पास आया और सूँघकर वापस चला गया। अब ये देखकर हकीम साहब को ग़ालिब पर चुटकी लेने का मौका मिल गया। गला खँखार कर बोले, 'लीजिए साहिबान आम तो गधे तक नहीं खाते, लेकिन आप लोग खाते हैं।' कहकर वो मुस्कुराने लगे। ग़ालिब ने आम की गुठली चूसते हुए कहा-'जी सही फरमाया आपने, गधे ही आम नहीं खाते।' गली कहकहों से गूँज गई।

अकबर इलाहाबादी को आम बहुत पसंद थे, वह अपने दोस्तों को इसे तोहफे के तौर पर भी भेजते थे और बाकायदा अपने खत में इसका जिक्र भी करते थे। अपने दोस्त मुंशी निसार को खत में आम की फरमाइश करते हुए उनकी यह छोटी सी नजम बहुत मशहूर हुई -

नामा न कोई यार का पैगाम भेजिए, इस फसल में जो भेजिए बस आम भेजिए।
ऐसा जरूर हो कि उन्हें रख के खा सँकू, पुख्ता अगर छै, बीस तो दस खाम भेजिए।
मालूम ही है आपको बंदे का एड्रेस, सीधे इलाहाबाद मेरे नाम भेजिए।
ऐसा न हो कि आप यह लिखें जवाब में, तामिल होगी, पहले मगर दाम भेजिए।

इसी तरह से अकबर ने अपने दोस्त अल्लाह-मय-इकबाल को लँगड़े आमों का एक पार्सल भेजा। इकबाल ने आमों के ब-खैरियत पहुँचने पर रसीद भेजी और शुक्रिया भी। उस दौर में आम का पार्सल इलाहाबाद से लाहौर तक हिफाजत से पहुँचने पर अकबर ने अपना ताजुबइस नज्म में बयाँ किया -

असर यह तेरे अनफास-ए-मसीहाई का है अकबर,
इलाहाबाद से लँगड़ा चला लाहौर तक पहुँचा।

सागर खय्यामी तंजो-मिजाह के मशहूर शायर हैं उन्होंने अपने अंदाज में आम से इश्क फरमाया है -

आम तेरी ये खुश-नसीबी है
वरना लँगड़ों पर कौन मारता है।

इस देश में आम सिर्फ एक फल नहीं। इसलिए सदियों से चली आ रही रसमयी सौगात को निराले अंदाज-ए-जुबां में इसका इस्तकबाल किया जाता रहा है। संस्कृत साहित्य में तो हजारों साल पहले से इसका जिक्र मौजूद है जिसे 'आमरम' कहा गया है। इसी तरह तमिल जुबान में 'मँगाई' के लफ्ज में जाना जाता है और जब पुर्तगाली हिंदुस्तान आए तो इन्हीं के जरिए यह शब्द अंग्रेजी तक पहुँचा जिसे हम 'मैंगो' के नाम से जानते हैं। गंगा-जमुनी तहजीब और शेरों-अदब में आम पर कई ऐसे शेर और नजमें कही गई हैं, जो इस फल को 'आम से खास' बनाता है।

सहायक प्राध्यापक हिन्दी,
शासकीय महात्मा गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, इटारसी,
नर्मदापुरम-461114 (म.प्र.)
मो.-9827570678

मैं कुत्ते को नहीं कुत्ता मुझे पाल रहा है

- सुदर्शन सोनी

जन्म - 16 जून 1962।
जन्म स्थान - जबलपुर (म.प्र.)
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - अम्बिकाप्रसाद दिव्य सहित अनेक सम्मान।

ये कोई बात हुई क्या? सारी ज्ञान की बातें पहली बार में ऐसी ही लगती हैं। जब करीने से बताया जाता है तो चक्षु पूरे खुले के खुले ही रह जाते हैं। गंगाधर के साथ भी ऐसा ही हुआ। उसे अन्य कुत्तेदार लोग देख कर कुत्तापालन का शौक चर्रा गया। वैसे ये मौसम होता ही है चर्राने वाला। चर्राने व चराने में वैसे काफी अंतर है। चरा तो चीनी सरकार वहाँ के नागरिकों को रही है। हाँ पहले भी वह कोरोना के नाम पर पूरी दुनिया को चराती रही। भारत को सीमा विवाद के नाम पर आजादी के बाद से चराने की कोशिश करती रहती है। एक बार चराते-चराते तो सन बासठ में हजारों वर्ग किलोमीटर भूमि को पूरी तरह चर ही गए।

इंसान छोड़ कर हम वफादार श्वान पर ही आ जाएँ। मैं इसे नहीं यह मुझे पाल रहा है। देखें यह सुबह साढ़े चार बजे वो भी सर्दी की सुबह में मेरे कमरे में आकर तरह-तरह की सीटी नुमा आवाजें दे रहा है। मुर्गा बाँग देता है साढ़े तीन पर और मेरा श्वान सीटी देता है साढ़े चार बजे। मैं यदि रात को दो बजे भी सोया होऊँ तो भी इसको कोई मतलब नहीं। इसको तो आप बस घुमाने आँखें मलते ले जाओ नहीं तो इनकी सीटी का रूपांतरण कर्कश भौंक में बदलते देर नहीं लगती।

अब मैं अंदर आ गया हूँ और ये लॉन पर खुश होकर, जीभ बाहर निकाल कर मुंडी हिला रहे हैं। थोड़ी देर में ऊब गए तो फिर दो-तीन भौंक दे दी। नहीं सुना गया तो फिर बुलंद भौंक दे दी। जैसे कोई अफसर अपने चपरासी को घंटी दे रहा हो और उसने नहीं सुना हो तो वह जोर से घंटी दो-तीन बार दबा देता है। अभी भी नहीं सुना हो तो लम्बी घंटी बजा देता है। उधर चपरासी को तो इधर मुझे दौड़ना पड़ता है। आखिर कुत्ते ने मुझे पाल रखा है अपनी आवश्यकताओं के लिए। मुझे अपने काम छोड़कर अब अंदर करने बाहर दौड़ना पड़ा है। अरे घर के बाहर अपने काम पर जाने पर तो बात-बात में दौड़ना ही है। पर यह उसी की रिहर्सल पहले से ही करा देता है। कुत्ते को ऐसे ही बुद्धिमान व वफादार नहीं कहा जाता है।

अभी इनको अंदर आए बीस मिनट भी नहीं हुए हैं कि बाहर इन्हीं की जाति बंधुओं का अचानक ही कोरस गान शुरू हो गया है। पता नहीं क्या हुआ है? कोई गाय या बकरियों का झुंड या कोई तंदुरुस्त सुअर परिवार इनके इलाके में आ गया है। अब ये बेचैन हो रहे हैं। सीटी एक-दो देकर सीधे अपनी नापाक भौंक यानी अपनी पर उतर आए हैं। आखिर इन्होंने मुझे पाल रखा है अत: अब मैं इनको फिर अपने कार्य छोड़कर बाहर छोड़ने आया हूँ। आपको हाथ का काम अपने मालिक या बॉस के लिए छोड़ना पड़ता है। अब आप बताओ कि मैं कुत्ता मालिक हुआ कि मालिक कुत्ता ये हुए।

अब ये बाहर आकर श्वान मंडली के साथ अपने कंठ की एक्सरसाइज कर रहे हैं। थोड़ी देर में कुकरहाव समाप्त हो गया तो अब इन्होंने फिर भाव दिखाना शुरू कर दिया। आखिर मैं इनका पाला हुआ हूँ न फिर इनको भीतर किया गया।

जैसे-तैसे मैं अपने काम पर जा पाया हूँ। ये ध्यान से देख रहे हैं कि आखिर इनका पाला हुआ ये आदमी जा कहाँ रहा है। रोज-रोज कहाँ जाता है। कहीं किसी और का पाला हुआ तो नहीं है!

इनकी अब कमांड कौन सुनेगा। तो अब इन्होंने ऊँघना शुरू कर दिया है। मैं काम से शाम थका लौटा हूँ लेकिन ये तो पूर्णरूपेण टंच हैं। आते ही घुमाने ले जाने के लिए मचलने लगे। इनको कोई मतलब नहीं कि आप कुछ आराम चाहते हैं। आखिर मालिक को नौकर की तकलीफ से मतलब भी नहीं होता।

हम इनको घुमाने ले गए हैं। पर हो उल्टा रहा है कि ये हमे घुमा रहे हैं। हम जहाँ इनको जाने मना कर रहे हैं, ये वहीं जबरदस्ती हमें घसीट के ले जा रहे हैं। आखिर इन्होंने अपने काम के लिए मुझे रखा है, मैंने नहीं इन्हें रखा है। इंसान को लगता है कि वह कुत्ते को घुमा रहा है और कुत्ते को लगता है कि वह सूँघने आया है। सूँघना साध्य है, घूमना साधन है। जबकि इंसान समझता है कि सूँघना साधन है और घूमना साध्य हैं। सोच लें कुत्ते व इंसान की सोच में कितना अंतर है।

घुमा कर या सही कहें हम सुँघा कर अपने कुत्ते को ले आए हैं। अब ये दूध रोटी से मुँह फेर रहे हैं। लीजिए ग्रेवी का पैकेट खोलकर पेडीग्री में मिलाकर देना पड़ रहा है। इन्होंने फिर मुँह फेर लिया है कि और ग्रेवी डालो। दाने कम ग्रेवी ज्यादा होना इनको।

कुल मिला कर सार यह है कि हर कुत्तापालक या मालिक को गलतफहमी रहती है कि वह कुत्ते को पाल रहा है। हकीकत यह होती है कि कुत्ता आपको पालता है! वह जो कमांड देता है आप उसे पूरी करते हो। वैसे ही जैसे कि जनता समझती है कि व्यवस्था उसके लिए हैं उसके इशारे पर काम करेगी लेकिन व्यवहार में जनता को व्यवस्था की सुविधा अनुसार व्यवहार करना होता है। जनता तो चाहती है कि पेट्रोल डीजल के दाम कम हों लेकिन व्यवस्था बढ़ाकर कहती है कि झक मार कर जेब ढीली करो। या कि शिक्षण संस्थाओं के छात्र समझते हैं कि संस्था उनके लिए है पर व्यवहार में छात्र संस्था के लिए होते हैं। यात्री समझता है कि बस या रेल उसके लिए है पर व्यवहार में यात्री उनके लिए होते हैं।

ऐसे ही असली मालिक आप नहीं आपका कुत्ता ही है! कुत्ते को जंजीर डाल कर आपने भी तो अपने लिए जंजीर की व्यवस्था कर ली है!

डी-37 चार इमली,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.- 9425638352

आवश्यक सूचना

'अक्षरा' मासिक पत्रिका हेतु निम्न दरों पर विज्ञापन आमंत्रित हैं-

1. आधा पृष्ठ काला/सफेद (श्वेत/श्याम)	**5000/- रुपये**
2. एक पृष्ठ श्वेत/ श्याम	**10, 000 /- (दस हजार रुपये)**
3. आधा रंगीन पेज	**15, 000/- (पंद्रह हजार रुपये)**
4. पूरा रंगीन पृष्ठ	**30, 000 /- (तीस हजार रुपये)**
5. कवर पृष्ठ चार	**1, 00, 000/- (एक लाख रुपये)**

कवीन्द्र रवीन्द्र और उनके विमर्श

- कृष्ण कुमार यादव

रचनाएँ - सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - विश्व हिंदी साहित्य संस्थान, इलाहाबाद द्वारा साहित्य गौरव सम्मान।

रवींद्रनाथ टैगोर जी की जयन्ती पर

भारतीय संस्कृति के शलाका पुरुषों में रवींद्रनाथ टैगोर का नाम प्रतिष्ठापरक रूप में अंकित है। वे एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जो जीती-जागती किंवदंती बन गए। साहित्यकार-संगीतकार-लेखक-कवि-नाटककार-संस्कृतिकर्मी एवं भारतीय उपमहाद्वीप में साहित्य के एकमात्र नोबेल पुरस्कार विजेता के अलावा उनकी छवि एक प्रयोगधर्मी और मानवतावादी की भी है। तभी तो शब्द और संगीत के इस विलक्षण साधक के लिए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि-'बड़ा आदमी वह होता है जिसके संपर्क में आने वाले का अपना देवत्व जाग उठता है। रवींद्रनाथ ऐसे ही महान पुरुष थे। वे उन महापुरुषों में थे जिनकी वाणी किसी विशेष देश या संप्रदाय के लिए नहीं होती, बल्कि जो समूची मनुष्यता के उत्कर्ष के लिए सबको मार्ग बताती हुई दीपक की भाँति जलती रहती है।'

रवींद्रनाथ टैगोर को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। उनकी रचनाधर्मिता का क्षितिज इतना विस्तृत है कि आज भी उनकी प्रासंगिकता जस-की-तस बरकरार है। कोई भी विधा उनकी लेखनी से अछूती नहीं रही। विभिन्न विधाओं में उन्होंने 141 पुस्तकें लिखीं, जो 27 खंडों में प्रकाशित हुईं। इनमें 15 काव्य-संकलन (12,000 कविताएँ), 11 गीत-संग्रह (2000 गीत), 47 नाटक, 34 लेख-निबंध-अलोचना संग्रह, 13 उपन्यास, 12 कहानी-संग्रह, 6 यात्रा-वृत्तांत व 3 खण्डों में आत्मकथा शामिल हैं। रवींद्रनाथ की अधिकतर काव्य-रचनाएँ 'गीत-वितान' व 'संचयिता' में संग्रहित हैं। यह एक संयोग है कि सभी विधाओं में समान अधिकार रखने वाले टैगोर को नोबेल पुरस्कार उनकी काव्य-कृति 'गीतांजलि' पर मिला और आज भी साहित्य का नोबेल पुरस्कार पाने वाले वे भारतीय उपमहाद्वीप के इकलौते साहित्यकार हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई 1861 को बंगाल के जोरासांको में हुआ। मनीषी द्वारकानाथ ठाकुर और माता शारदा देवी की 14 वीं संतान के रूप में रवींद्रनाथ का जन्म हुआ। रवींद्रनाथ ने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया जहाँ परंपराएँ व संस्कार थे तो आधुनिकता भी थी। भौतिकता की चकाचौंध थी तो अध्यात्म का परिवेश था, तभी तो उनकी आठवीं तक की शिक्षा घर पर ही हुई और आगे की शिक्षा के लिए वे इंग्लैण्ड भेजे गए। प्राचीन वैदिक साहित्य के साथ ही पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव भी उनके खून में था। संगीत-कला-साहित्य की अनुगूँज वातावरण में सर्वत्र विद्यमान थी, यूँ ही सात वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने जीवन की पहली कविता नहीं रच डाली। स्वयं रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि-'मेरा परिवार हिन्दू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता एवं ब्रिटिश सभ्यता की त्रिवेणी था।'

रवींद्रनाथ टैगोर पर अपने परिवार की सामासिक संस्कृति का बचपन से ही गहरा प्रभाव पड़ा। साँवले चेहरे के बीच उनकी आँखें मानो हर पल कुछ ढूँढ़ना चाहती थीं। कुछ आत्म, कुछ परमात्म और इससे भी परे जीवन की विसंगतियों को देखकर विचलित होने का भाव। यही कारण है कि उनका विलक्षण व्यक्तित्व एकांगी नहीं बल्कि बहुआयामी रहा। एक साथ ही उन्होंने साहित्य, संगीत, चित्रकला, नाट्य, शिक्षा सभी में महारत हासिल की। रवीन्द्र सिर्फ विधाओं के ही यायावर नहीं थे बल्कि जीवन में भी यायावर थे। उन्होंने 13 बार विश्व भ्रमण किया। 'रवीन्द्र-संगीत' की गणना आज भी बंगाल की लोकप्रिय संगीत-शैलियों में होती है। रवींद्रनाथ के गीतों के अनुवाद जर्मनी, फ्रांस, जापान, इटली आदि में किए गए हैं। इटली के कुछेक चित्रकारों ने तो उनके गीतों के आधार पर चित्र रचना तक की है। तभी तो कहते हैं कि रवींद्रनाथ जितना पढ़े गए हैं, उससे कहीं ज्यादा सुने गए हैं। आज भी टैगोर की रचनाओं के पुनर्वेषण के स्वत: स्फूर्त प्रयास निरंतर चल रहे हैं। उनकी रचनाएँ कल भी मनुष्य को झकझोरती थीं और आज भी झकझोर रही हैं। सत्यजीत रे जैसे दिग्गज फिल्मकार ने

उनकी रचनाओं पर चारूलता, घरे बाहिरे व तीन कन्या जैसी शानदार फिल्में बनाईं तो राजा, रक्तकरबी, विसर्जन, डाकघर जैसी नाट्यकृतियों का मंचन आज भी उतना ही प्रासंगिक दिखाई देता है। यहाँ तक कि अपने रंग-जीवन के अंतिम वर्षों में हबीब तनवीर जैसे विख्यात निर्देशक ने भी 'राजरक्त' नाम से टैगोर के नाटक 'विसर्जन' की मंच प्रस्तुत की और उसे आरंभिक प्रदर्शन के बाद माँजते रहे। वाकई पीढ़ियों के अंतराल के बाद भी रवींद्रनाथ टैगोर की कृतियों का मंचन-संचयन यही दर्शाता है कि उनकी कृतियों की नई व्याख्याओं की गुंजाइश सदैव बनी रहेगी और वे अपनी प्रासंगिकता कभी नहीं खोएँगी। ऐसे में जो लोग रवींद्रनाथ टैगोर की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं, उन्हें भी रवींद्रनाथ के पक्ष में बहने वाली बयार चकित-विस्मित करती है। अगर आज भी रवींद्रनाथ के गीतों-कविताओं को गायक-गायिकाएँ सजा-सँवार रहे हैं, उनके नाटक नए सिरे से खेले जा रहे हैं, 'काबुली वाला' और अन्य कहानियाँ लोगों के मर्म को छू रही हैं, 'गोरा' जैसे उपन्यास नए विमर्श और पाठ के लिए उकसाते हैं, उनका बाल-साहित्य बहुतों का मन मोहता है, उनकी कृतियों को लेकर डाक-टिकट जारी हो रहे हैं तो यह मानना पड़ेगा कि टैगोर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं एवं वे हर समय हमारे सम्मुख नित नए रूपों में अवतरित होते रहते हैं। यहाँ टैगोर के बाल-साहित्य पर लिखे डब्लयू. बी. यीट्स के शब्द गौर करने लायक हैं-'वस्तुत: जब वह बच्चों के विषय में बातें करते हैं तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह संतों के विषय में भी बात नहीं कर रहे हैं।'

एक जमींदार परिवार से होते हुए भी रवींद्रनाथ उदार दृष्टि के थे। उनका कवि-मन जीवन की सहजता में विश्वास करता था। वे लोगों से घुलने-मिलने और उनकी जीवन-संस्कृति को समझने की कोशिश करते थे। फिर वह चाहे मुंडा आदिवासियों के मध्य रहकर उनकी संस्कृति को समझना हो, ग्राम हितैषी सभा के माध्यम से गाँवों में स्कूल, अस्पताल आदि की स्थापना हो, ग्राम संसद के तहत पंचायती राज को मूर्त रूप देना हो या नोबेल पुरस्कार में प्राप्त धन को शांतिनिकेतन को दान देकर उससे भारत के प्रथम कृषि बैंक की स्थापना हो। रवींद्रनाथ एक भविष्यदृष्टा थे। रवींद्रनाथ ने नारी-सशक्तिकरण, नारी शिक्षा, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, देवदासी इत्यादि को लेकर प्रखरता से कलम चलाई। रक्तकरबी, गोरा, श्यामा, चंडालिका, चोखेर-बाली, पुजारिनी, घरे-बाइरे इत्यादि उनकी चर्चित रचनाओं को इसी क्रम में देखा जा सकता है। टैगोर की संवेदनाएँ सिर्फ साहित्य-कला-संगीत तक ही सीमित नहीं थीं, वे उसे वास्तविकता के धरातल पर देखना चाहते थे। इसी कारण मानवीय गरिमा और और सम्मान के कवि रूप में वह सकल विश्व में विख्यात हैं। विज्ञान में वे विश्वास करते थे पर नैतिकता की कीमत पर नहीं।

रवींद्रनाथ टैगोर का स्वतंत्रता-आंदोलन में भी अप्रतिम योगदान रहा। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वे प्राध्यापक रहे, अंग्रेजियत के ताने-बाने को काफी नजदीक से महसूस किया पर देश-प्रेम की उत्कट अभिलाषा उनके अंदर व्याप्त थी। जहाँ कांग्रेस के नेता व अन्य भाषणों द्वारा लोगों में देशभक्ति की भावना को उभार रहे थे, वहीं उनके क्रांतिधर्मी गीत लोगों की रगों में आजादी का जोश भर देते थे। उन्होंने गीत के माध्यम से आह्वान किया था-'जोदी तोर डाक शुने केउ ना आशे, तबे ऐकला चलो रे।'

1905 के 'बंग-भंग' आंदोलन के दौरान हिन्दू-मुसलमानों द्वारा एक दूजे को राखी बाँधकर एकता का प्रदर्शन उनकी ही सोच थी। वे एक साथ ही क्रांतिकारी थे और उदारवादी भी। जलियाँवाला बाग हत्याकांड के विरोध में नाइट हुड के तौर पर दी गई 'सर' उपाधि को लौटाने में उन्होंने कोई देरी न दिखाई। सरदार भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी भी टैगोर की रचनाओं से प्रेरणा पाते थे। भगत सिंह ने अपनी जेल डायरी में टैगोर का एक लेख 'पूँजीवाद और उपभोक्तावाद' अपने हाथों से लिख रखा था। यही नहीं टैगोर की इस उक्ति को भी भगत सिंह ने दर्ज किया था कि 'जो न्यायाधीश अपनी तजवीज की हुई सजा के दर्द को नहीं जानता, उसे सजा देने का हक नहीं।' यह अनायास ही नहीं था कि काकोरी कांड में सजा काट रहे रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, रोशन लाल इत्यादि क्रांतिकारी 'सरफरोशी की तमन्ना' के साथ-साथ रवींद्रनाथ टैगोर व काजी नजरूल इस्लाम के क्रांतिधर्मी गीतों को गाकर वातावरण में देश-भक्ति का उन्माद फैलाते रहते। इतिहास गवाह है कि रवींद्रनाथ टैगोर ने बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित राष्ट्र-गीत 'वन्दे मातरम' की धुन तैयार की और स्वयं 1896 के कांग्रेस अधिवेशन में इसे पहली बार गाया। राष्ट्रगान 'जन-गण-मन' के रचयिता भी टैगोर ही हैं। टैगोर को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वे भारत और बाँग्लादेश दो राष्ट्रों के राष्ट्रगान के रचयिता हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर की मातृभाषा बाँग्ला थी, पर हिन्दी साहित्य से भी उनका लगाव था। किशोर-वय से ही वे वाल्मीकि-कालिदास समेत भारतीय काव्यधारा की विशद परंपरा के साथ-साथ जयदेव, विद्यापति, कबीर और नानक की परंपरा से जुड़े। अपने समकालीन तमाम हिन्दी-साहित्यकारों से भी टैगोर का संपर्क बना रहा। वे खुद कहते थे कि-'मैं हिन्दी भाषी लोगों के निकट संपर्क में आने हेतु बेहद उत्सुक हूँ। यहाँ हम लोग संस्कृति-साहित्य प्रचार के लिए जो भी कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं। हमारी दिली इच्छा है कि हिंदी भाषी

लोग भी यहाँ आएँ, हमारे अनुभव में हिस्सा बटाएँ तथा अपने अनुभव से हमें भी लाभान्वित करें।' आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्यकारों से उनका निरंतर संपर्क रहा और इनके माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य के मर्म को समझा। अज्ञेय व टैगोर की मुलाकात पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही कराई थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय के साथ-साथ उन्होंने माखनलाल चतुर्वेदी व जैनेन्द्र से भी मुलाकात की। टैगोर हिन्दी गद्य को समझने के लिए प्रेमचंद से मिलने को काफी उत्सुक थे, पर दोनों के मिलन का कोई संयोग अंत तक नहीं बन सका। इसे साहित्य की एक विडम्बना के रूप में ही माना जाएगा। उनकी दिली इच्छा थी कि साहित्य की भाषा कुछ भी हो, पर यदि वह लोगों की संवेदनाओं को झंकृत करता है तो अन्य भाषाओं में भी उसका अनुवाद होना चाहिए, ताकि लोग उससे लाभान्वित हो सके। रवींद्रनाथ ने स्वयं कबीर, मीरा विद्यापति का बाँग्ला में अनुवाद किया। कबीर की वाणी से तो वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी रचनाओं का 'हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर' शीर्षक से अंग्रेजी अनुवाद भी किया।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में हिन्दी की गौरवमयी परंपरा को टैगोर समग्र देश ही नहीं विश्व के सामने भी लाना चाहते थे। एक तरफ वे कबीर-वाणी को अंग्रेजी में अनुदित करते हैं तो दूसरी तरफ उन्हें बघेलखंड के कवि ज्ञानदास के पद भी प्रभावित करते हैं। टैगोर ने स्वयं लिखा कि-'ज्ञानदास की रचनाएँ सुनकर मुझे अनुभव हुआ कि आजकल की आधुनिक कविता का परिचय इनकी कविताओं में मिलता है और ये कविताएँ सर्वदा के लिए आधुनिक ही हैं।' गीत-विधा पर टैगोर की जबरदस्त पकड़ थी। वे अन्य भाषाओं में रचित गीतों की संजीदगी से प्रभावित भी होते थे। हिन्दी साहित्य में गीतों की परंपरा पर उनका कथन उद्धृत करना उचित होगा-'इसमें कोई संशय नहीं है कि एक समय हिन्दी भाषा में गीत साहित्य का आविर्भाव हुआ है, उसके गले में अमरसभा का वारमल्य है।' पर इसके साथ ही वे सचेत भी करते हैं कि 'आज वह अनादर के कारण बहुत कुछ ढका हुआ है। इसका उद्धार अति-आवश्यक है, जिससे भारतवर्ष के अ-हिन्दी लोग भी भारत के इस चिरंतन साहित्य के उत्तराधिकार के गौरव के भागीदार हों।'

साहित्य की जीवंतता के लिए उसमें प्रवाह व सहजता का होना बेहद जरुरी है। यदि साहित्य में लचीलापन न हो तो उसके चटकने में देरी नहीं लगती। इसी प्रकार अलंकारों से परिपूर्ण साहित्य वर्ग-विशेष तक ही सीमित रह जाता है, जन-सरोकारों से वह कट जाता है। रवींद्रनाथ टैगोर भी साहित्य में अलंकारों की इस कृत्रिमता के पक्षधर नहीं थे। एक बार उन्होंने बिहारी की रचनाओं के बारे में कहा कि- 'कुछ भी क्यों न हो, बिहारी सतसई जैसे ग्रंथ मेरे लिए रुचिकर सिद्ध नहीं हुए, विशेषकर किसी-किसी दोहे के चार-चार, पाँच-पाँच अर्थों के विषय में वाद-विवाह मुझे कुछ जँचा नहीं।' वस्तुत: टैगोर कवित्व को साधना रूप में देखते थे। वह कहते थे कि मैं गीत गाने वाली चिड़िया जैसा हूँ, मेरा गीत कहीं बाहर नहीं बल्कि पत्तों के परदे में है, जहाँ बैठकर चिड़िया अनायास ही गाने लगती हैं। वे मानवतावादी विचारधारा के प्रबल पोषक थे। हिन्दी साहित्य के छायावाद युग पर टैगोर का प्रभाव देखा जा सकता है। स्वयं महादेवी वर्मा ने अपने ग्रंथ 'पथ के साथी' में टैगोर को स्मरण करते हुए उनके प्रति अपने उद्गार व्यक्त किए हैं।

रवींद्रनाथ टैगोर की प्रतिभा किसी देश-काल की मोहताज नहीं थी। उन्होंने भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा को इसकी ऊँचाइयों तक पहुँचाया और अंग्रेजी भारत में रहते हुए भी साहित्य का प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर न सिर्फ स्वतंत्र-चेतना का उद्गार किया बल्कि पराधीन भारत के आहत स्वाभिमान को एक बार फिर गर्व से अपना सिर उठाने का अवसर दिया। यह सोचने वाली बात है कि अगर बीसवीं शताब्दी के शुरू में बाँग्ला जैसी प्रांतीय भाषा में एक ऐसा विश्वस्तरीय साहित्यकार हो सकता था जिसने साहित्य का सर्वोच्च सम्मान अर्जित कर नए प्रतिमान गढ़ें हों, तो यह भारत की भाषिक बहुलता और भारतीय भाषाओं की जीवंत ऊर्जा को रेखांकित करता है। एक तरफ वे प्रकृति और उसके रहस्य का गीत गाते हैं तो वहीं उनके साहित्य में मानव जीवन की बुनियादी चिंताएँ भी हैं।

अनेक मामलों में उनकी समझ अपने युग के सभी विचारकों, आलोचकों, रचनाकारों और कला मनीषियों के विचारों की सीमाओं को भेदती हुई मनुष्यत्व के मर्म तक गई है। धर्म, शिक्षा, राष्ट्र, अध्यात्म, मानवतावाद, सार्वभौम मनुष्य इत्यादि को लेकर उनके विचारों की आज देश-दुनिया में विशेष प्रासंगिकता है और बदलते परिप्रेक्ष्य में भी उन पर व्यापक पुनर्विचार और उसके प्रचार की आवश्यकता है। यदि टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिलने के एक सदी के पश्चात् भी भारतीय उपमहाद्वीप में किसी साहित्यकार को यह खिताब नहीं मिला तो यह स्वयं में टैगोर की प्रासंगिकता को कायम रखती है।

पोस्टमास्टर जनरल,
वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी-221002(उ.प्र.)
मो.- 09413666599

भाई! मैं तो पाठक हूँ

– राजेन्द्र सिंह गहलौत

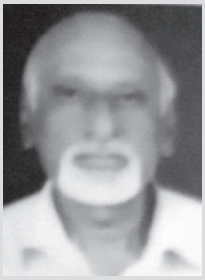

जन्म – 11 जून 1949।
शिक्षा – एम. ए. एलएल.बी.।
रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – क्षेत्रीय सम्मान।

चार पुस्तकें प्रकाशित तीन प्रकाशनाधीन, कुछ पुरस्कार कुछ सम्मान तथा लगातार पत्र–पत्रिकाओं में रचनाओं के प्रकाशित होने के बावजूद मैं अपने आप को साहित्यकार मानने का साहस नहीं कर पाता पर एक लेखक तो मान ही लेता हूँ। लेकिन लेखक बनने से भी पहले मेरे अंदर जन्मजात एक जुनूनी पाठक मौजूद है जो ताउम्र बना रहेगा, इस बात से इन्कार नहीं कर सकता। जन्मजात इसलिए कह रहा हूँ कि पाठकीय अभिरुचि मुझे विरासत में मिली। मेरे बाबू जी की साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास एवं राजनीति के अध्ययन में गहरी अभिरुचि थी तो माता जी को कहानी, कविता, उपन्यास पढ़ने की लत थी। पिता जी के पुस्तकालय में एकत्रित किताबें जिनमें मनु स्मृति सहित चारों वेद, प्रसिद्ध इतिहासकार सुंदरलाल द्वारा सन 1938 में लिखा चार जिल्द में 'भारत में अंग्रेजी राज' जो कि अंग्रेजों के शासन में जप्त कर लिया गया था, म. प्र. का इतिहास, महाराजा विश्वनाथ सिंह कृत हिन्दी का पहला नाटक 'आनन्द रघुनंदन', जवाहरलाल नेहरू द्वारा इन्दिरा गाँधी को लिखे पत्रों का संग्रह 'विश्व इतिहास की झलक', कई प्रतिष्ठित साहित्यिक उपन्यास आदि थे। इनमें से कई पुस्तकों से संदर्भ लेकर मैंने वर्तमान में कई आलेख लिखे हैं। जबकि नवमी कक्षा में अध्ययनरत रहने के दौरान ही पिताजी के पुस्तकालय से इलाचंद्र जोशी का उपन्यास 'जिप्सी' ले कर कई दिनों में मैंने पढ़ डाला था। वह मेरे जीवन का पहला उपन्यास था जो मैंने पढ़ा था। उस उम्र में उपन्यास की समझ मुझमें नहीं थी लेकिन उपन्यास की नायिका 'जिप्सी लड़की' आज तक याद है।

हाई स्कूल के प्रिंसिपल मेरे पिता जी के अभिन्न मित्र थे। उस मित्रता के चलते माता जी अक्सर विद्यालय के चपरासी से स्कूल की लायब्रेरी से कहानी एवं उपन्यास मँगवा लिया करती थीं। पढ़ना–लिखना सीखते ही (शायद उस समय मैं चौथी या पाँचवी कक्षा में पढ़ रहा था) मैं माता जी के साथ ही कहानियाँ पढ़ने लगा था। उस समय पीले रंग के कव्हर पर डिजाइन बनी हुई एक किताब जिसका नाम 'कहानी' था की कई कहानियाँ मैंने पढ़ीं (वर्तमान में पता करने पर ज्ञात हुआ कि वह पत्रिका प्रेमचंद के पुत्र श्रीपत राय ने सन् 1954 में इलाहाबाद से पुनर्प्रकाशित एवं संपादित की थी)। उस समय कहानी की भी समझ नहीं थी पर वह शायद पहली कहानी की पत्रिका थी जो मैंने पढ़ी थी।

उस समय घर में नहा धो कर सुबह पूजा पाठ कर भगवद्गीता एवं रात में रामायण (रामचरितमानस) पढ़ने का नियम माता जी ने मेरे लिए निर्धारित कर रखा था। लेकिन उन्हें भी मैं कहानी की तरह ही पढ़ डालता। गीता में महात्म्य की कहानियाँ तथा रामचरित मानस में दोहा चौपाई सब छोड़ कर उनकी व्याख्या से रामचरितमानस का कथानक पढ़ डाला। इसी भाँति महाभारत भी कहानियों जैसा ही पढ़ डाला। मेरे लिए जिस भी लिखे हुए में कुछ घटता हुआ दिखे वह कहानी थी।

उस वक्त पिता जी म. प्र. के एक ग्राम कोतमा में 'जनरल स्टोर्स एवं हार्डवेयर' की होलसेल की दुकान संचालित करते थे। आसपास के ग्रामों के छोटे दुकानदार उनके ग्राहक थे। ग्राम में बिजली नहीं थी। ग्राम की मुख्य सड़क एवं चौराहों पर लैम्प पोस्ट लगे हुए थे जिनके लैम्प जलाने के लिए रोज शाम को ग्राम पंचायत का कर्मचारी लंबी सीढ़ी लेकर आता और लैम्प जला कर चला जाता फिर सुबह आ कर जलता लैम्प बुझाता। दुकान में पेट्रोमेक्स जिसे हम लोग गैस कहते थे जला करता, पूरे घर के हर कमरे में चिमनी जलती तथा लालटेन (कंडील) रसोईघर, ड्राइंग रूम जहाँ भी माता जी जातीं उनके साथ जाती। अक्सर रात में मैं चिमनी की रोशनी में कहानी की किताबें पढ़ने में मगन रहता। घर में एक बूढ़ी नौकरानी काम करने आती जिसे हम भाई बहन बरौनी कहा करते थे। उसे हम लोग शाम से घेर लेते और उससे बिना कहानी सुने जाने न देते। कहानी के पात्रों के संवाद अक्सर गीतों में होते। सात भाइयों की एकलौती बहन पर भाभियों का अत्याचार, सौतेली माँ द्वारा भाई बहन को रात में जंगल भेजना और जंगल के जानवरों द्वारा उनकी मदद करना, चार चोरों की कहानी आदि रोचक कथानक उसकी कहानियों के होते।

हमारी दुकान के सामने ही मुल्ला जी की किताबों की दुकान थी। स्कूल से छुट्टी के दिनों में मैं दोपहर को उनकी दुकान में पहुँच जाता। वे मेरी किस्सा कहानी की किताबों को पढ़ने की दीवानगी से

परिचित थे, अत: मेरे पहुँचते ही दुकान की तकवारी मुझे सौंप कर नहाने, खाने-पीने अपने घर के अंदर चले जाते फिर शाम को ही दुकान में आते, तब तक मैं उनकी दुकान से किस्सा कहानी कि किताबें निकाल-निकाल कर पढ़ता रहता। उनकी दुकान में ग्रामीण अंचल के अल्पशिक्षित पाठकों की अभिरुचि के अनुरूप पुस्तकें विक्रय की जाती थीं। व्रत, त्यौहार, फिल्मी गीत, भजन, आरती, जादू-टोना, बीमारियों का इलाज, यौन शिक्षा, लघु व्यवसाय, ज्योतिष आदि के साथ ही बहुत सारी ग्रामीण अंचल में पढ़ी जाने वाली किस्से-कहानी की पुस्तकें भी उनके दुकान से विक्रय की जाती थीं। किस्सा-कहानी की पुस्तकों में सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी, किस्सा तोता मैना, अकबर बीरबल विनोद, सारंगा सदावृज, राजा भरथरी रानी पिंगला, किस्सा गुलबकावली, अलिफ लैला की कहानियाँ, किस्सा साढ़े तीन यार, अलीबाबा और चालिस चोर, अलाउद्दीन का जादुई चिराग, नल दमयंती की कहानी, राजा ढोला रानी मारु की कहानियाँ, शेखचिल्ली की कहानियाँ, लाल बुझक्कड़ की कहानियाँ, लैला-मजनू की कहानियाँ, त्रिया चरित्र, सोने का पहाड़, हँसता पान-बोलती सुपाड़ी आदि थी। उनकी दुकान की इन सभी किस्से-कहानियों की किताबों को मैंने उस उम्र में पढ़ डाला था। उस समय चार पैसों का एक आना होता था तथा सोलह आना का एक रुपया। इन किताबों की कीमत चार आने आठ आने से अधिक नहीं होती थी। बहुत मोटे ग्रंथ की कीमत एक रुपया या दो रुपया होती थी। उस समय पढ़ी उन किताबों की स्मृतियों ने मुझे वर्तमान में लोकजगत के अल्पशिक्षित वर्ग की पाठकीय अभिरुचि की जाँच-परख करते हुए 'लोकजगत की पाठकीय अभिरुचि और साहित्य' तथा 'किस्सा, किस्सागो और किस्सागोई' जैसे आलेख लिखने को प्रेरित किया जो कि अक्षरा, कथाक्रम, साक्षात्कार, विश्वगाथा आदि साहित्यिक पत्रिकाओं में सिर्फ प्रकाशित ही नहीं हुए बल्कि उन्हें पढ़ कर बी. एच. यू. (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) के हिन्दी विभागाध्यक्ष ने 'लोकजगत की पाठकीय अभिरुचि' विषय पर शोधार्थियों को शोध कार्य करने हेतु भी प्रेरित किया। तत्संबंध में उन्हें लोकजगत में पढ़ी जाने वाली इस तरह के किस्से-कहानियों की बहुत सारी पुस्तकें मैंने उपलब्ध करा दीं।

घर-परिवार, रिश्तेदारी के सब लोग मुझे किताबी कीड़ा कहते लेकिन अक्सर उपहार में मुझे किस्से-कहानियों की पुस्तकें भी भेंट देते। पिता जी जब दुकान का सामान लेने महानगर जाते तो वहाँ से देश-विदेश की लोक कथाओं की पुस्तकें खरीद कर मेरे लिए लाते। गाँव की एक मात्र बुक स्टाल जहाँ अखबारों के साथ ही गाँव के पढ़े-लिखे लोगों के लिए पत्रिकाएँ भी विक्रय की जाती थीं। वहाँ मेरे लिए पिता जी के निर्देश पर बाल पत्रिकाएँ मँगवाई जाती। अमर कहानी, चंदामामा, बाल भारती, मनमोहन, पराग, नंदन, बालसखा जैसी कितनी ही बाल पत्रिकाएँ मेरे लिए घर में आती। नंदन, गुड़िया, चंपक बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन मेरे सामने हुआ था। चंदामामा अभी भी कहीं दिख जाए तो उसे खरीद कर पढ़ने से मैं अपने आप को नहीं रोक पाता हूँ। 8 वीं, 9वीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते कहानी किस्सों की पुस्तकों को पढ़ने की भूख इस कदर बढ़ी कि मैं खाद्य अखाद्य (सभी तरह की किताबें) पढ़ने लगा और मुझे जासूसी एवं हल्के-फुल्के रोमांटिक उपन्यासों को पढ़ने का चस्का लग गया। इस बीच कुछ इस तरह की परिस्थितियाँ बनी की पिता जी को व्यवसाय बंद कर नौकरी करना पड़ा तथा उनकी पोस्टिंग कटनी नगर में हुई। कटनी के समीप ही मैहर में मेरी ननिहाल थी अत: माता जी हम भाई-बहनों को लेकर ननिहाल में अलग मकान किराये पर ले कर रहने लगी। वहाँ हर हफ्ते पिता जी आ कर हम लोगों की देखभाल कर लिया करते थे तथा मामा लोग भी हम लोगों का ख्याल रखते।

मैहर में रिश्ते के एक मामा गहन साहित्यिक अभिरुचि के थे। उन्होंने एक दिन मुझे जासूसी उपन्यास पढ़ते हुए पकड़ा और जमकर फटकारने के बाद ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दवनलाल वर्मा का उपन्यास 'मृगनयनी' पढ़ने के लिए दे कर मेरी पाठकीय अभिरुचि ही बदल डाली। उनके पास के सभी साहित्यिक उपन्यास जब मैंने पढ़ डाले तो उनने मैहर की पब्लिक लाइब्रेरी का मेम्बर बनवा दिया। वहाँ से मैंने वृंदावन लाल वर्मा के जितने भी ऐतिहासिक उपन्यास मिले पढ़ डाले। बचपन में माता जी को प्रेमचंद, शरतचन्द्र, बंकिमचंद्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर के उपन्यासों को पढ़ते हुए देखा था वह मेरी स्मृति में था अत: उनके जितने भी उपन्यास एवं कहानी संग्रह उनकी लाइब्रेरी में मिले, पढ़ डाले फिर लाइब्रेरियन की सलाह पर अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ रेणु, अज्ञेय, रांगेय राघव, आचार्य चतुरसेन, गुरुदत्त, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव सभी की जितनी भी कहानियों एवं उपन्यासों की किताबें मिलीं पढ़ डालीं। उस समय मेरी किताब पढ़ने की गति इतनी तीव्र थी कि एक दिन में दो किताब तक पढ़ डालता था। मैहर में किशोरावस्था में 10वीं एवं 11वीं में अध्ययन करते हुए लाइब्रेरी से इतनी किताबें पढ़ीं कि लाइब्रेरियन व्यंग्य करते हुए कहता-'भाई तुमने तो दो वर्षों में पूरी लाइब्रेरी ही चाट डाली'। लाइब्रेरी से कहानी उपन्यास की साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने का यह शौक जहाँ भी मैं गया मेरे साथ ही चलता गया।

फिर से एक बार अपने गृहग्राम कोतमा लौटना हुआ तो वह अब तक अच्छा बड़ा कस्बा बन चुका था। वहाँ महाविद्यालय खुल चुका था अत: वहीं से इंटर एवं बी. ए. करते हुए इंटर कालेज के पुस्तकालय से देवकीनंदन खत्री की ऐयारी के उपन्यास चंद्रकांता संतति एवं भूतनाथ के सभी भाग पढ़ डाले। वहीं से यशपाल की शसस्त्र क्रांति की कहानी (सिंहावलोकन) के चारों भाग पढ़ें जिन्हें कि मैं आज भी क्रांतिकारियों पर लिखे आत्मकथात्मक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। यहीं पर 'ज्योत्सना साहित्य परिषद' का सदस्य बन कर मैं कविता लिखने तथा गोष्ठियों एवं मंचों पर उन्हें पढ़ने लगा था

यदाकदा वे कविताएँ अखबारों में प्रकाशित भी होने लग गई थीं।

बी.ए. करने के बाद सन 1972 में बुढ़ार नगर में मुद्रण व्यवसाय प्रारंभ किया तो वहाँ भी लिखने-पढ़ने का शौक बरक़रार रहा। सप्ताह में एक बार जिला नगर शहडोल जाता तो वहाँ की लाइब्रेरी से सप्ताह भर पढ़ने के लिए 8-9 किताबें निकलवा लाता। यहीं से मैंने हिन्दी के साहित्यकारों के अलावा अन्य प्रांतीय भाषाओं बंगाली, पंजाबी, मराठी आदि की हिन्दी भाषा में अनुवादित बहुत सारी कहानियों एवं उपन्यासों की किताबों को पढ़ा। पंजाबी भाषा के उपन्यासकार बलवंत् सिंह, नानक सिंह, राजेन्द्रसिंह बेदी तथा बंगाली भाषा के उपन्यासकारों में शरत, बंकिम, टैगोर के बाद विमल मित्र एवं शंकर मेरे पसंदीदा उपन्यासकार थे तो उर्दू में शौकत थानवी, कृष्णचंद्र, सआदत हसन मंटो, इस्मत चुगताई आदि पसंदीदा हैं जबकि काफी बाद में मराठी से हिन्दी में अनुवादित शिवा जी सावंत का उपन्यास 'मृत्युंजय' पढ़ा जो काफी पसंद आया। इस बीच हिन्दी में धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, मन्नू भंडारी, नमिता सिंह, चित्रा मुद्गल, ऊषा किरण खान, नासिरा शर्मा तथा व्यंग्य में हरिशंकर परसाई, शरदजोशी, रविन्द्रनाथ त्यागी तथा श्रीलाल शुक्ल को पढ़ा। मेरा मानना था कि प्रेम कथानक वाली कृतियों में हिन्दी में धर्मवीर भारती की 'गुनाहों का देवता' एवं शिवप्रसाद सिंह की 'गली आगे मुड़ती है', पंजाबी में नानक सिंह की 'पवित्र पापी' तथा बाँग्ला में शरतचन्द्र की 'देवदास' सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हैं। जबकि श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'रागदरबारी' यदि व्यंग्य की तिरछी नजर से ग्रामीण परिवेश तथा वहाँ की राजनीति को सशक्त रूप से देखता-परखता है तो कस्बे की जिंदगी के हर पहलू को प्रभावशाली एवं व्यंजनामयी दृष्टि से शिवकुमार श्रीवास्तव का उपन्यास 'खलीफों की बस्ती' विश्लेषित करता है। जबकि पांस होटल्स की जिंदगी के हर पहलू को बाँग्ला के उपन्यासकार शंकर ने जितने प्रभावशाली ढंग से अपने उपन्यास 'चौरंगी' में चित्रित किया है उतना और किसी कृति में दिखलाई नहीं पड़ता यह उपन्यास कई भाषाओं में अनुवादित तो हुआ ही साथ ही इस पर फिल्म भी निर्मित की गई।

मेरे बुढ़ार नगर के समीप ही अनूपपुर नगर है जिसके रेल्वे स्टेशन के स्टेशन मास्टर प्रतिष्ठित बाँग्ला साहित्यकार विमल मित्र रह चुके थे तथा यहाँ से बिलासपुर जाने के बाद उनने 'सुरसतिया' जैसी चर्चित तथा विवादित कृति लिखी। इसी अनूपपुर रेलवे स्टेशन से तेजिंदर के उपन्यास 'काला पादरी' का कथानक प्रारंभ होता है। वह उपन्यास भी मुझे काफी अच्छा लगा था। इसी अनूपपुर नगर के समीप के एक ग्राम के मूल निवासी आज के प्रतिष्ठित कहानीकार उदय प्रकाश हैं जिनकी कहानियाँ छप्पन तोले की करधन, आइस पाइस, तिरिछ जैसी कहानियाँ ही मुझे अच्छी लगती हैं। वारेन हेस्टिंग्स का सांड, मोहनदास, पीली छतरी वाली लड़की आदि रुचिकर नहीं लगतीं।

बुढ़ार नगर में मुद्रण व्यवसाय के साथ ही साहित्य, अध्ययन एवं साहित्य-सृजन भी चलता रहा। मैं धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, कादम्बिनी, नवनीत, हंस, कथादेश, कथाक्रम, अक्षरा, साक्षात्कार, समकालीन भारतीय साहित्य आदि पत्रिकाओं को नियमित रूप से मँगाता तथा पढ़ने के बाद उनमें से बहुतों की वर्षवार बाइंडिंग करवा कर अपने पास सुरक्षित रखता जाता जो कि आज भी मेरे पास मौजूद हैं। धीरे-धीरे कविता लेखन में मेरी रुचि कम हुई और मैं कहानी तथा व्यंग्य लिखने लगा। सन् 1993 में मेरी पहली कहानी तथा पहला व्यंग्य व्यावसायिक पत्रिका सरिता, मुक्ता में प्रकाशित हुए फिर लगातार प्रकाशित होने लगे। व्यंग्य लेखन में मैं शहडोल के व्यंग्यकार मोहन श्रीवास्तव से प्रभावित था जो कि उदय प्रकाश जैसे कहानीकार एवं श्याम कश्यप जैसे पत्रकार के मार्गदर्शक रहे। 1995 में मेरी पहली कहानी नवनीत हिंदी डाइजेस्ट में प्रकाशित हुई तथा कुछ समय बाद विष्णुचंद्र शर्मा द्वारा संपादित 'सर्वनाम' में। उसके बाद मैं लगातार स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं में ही रचनाओं के प्रकाशन हेतु प्रयत्नशील रहा। इस बीच नगर के महाविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक के बतौर इलाहाबाद के प्रतिष्ठित कहानीकार अमर गोस्वामी की नियुक्ति हुई जो कि प्रतिष्ठित साहित्यकार कमलेश्वर के अभिन्न मित्रों में से थे। गोस्वामी जी की कहानियाँ उस समय धर्मयुग और साप्ताहिक हिंदुस्तान जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थीं। साहित्यिक अभिरुचि के चलते उनसे मेरी मित्रता हुई और ताउम्र घनिष्ठ सबंध बने रहे। उनके सान्निध्य में मेरे लेखन में परिपक्वता आई और यह जाना कि लेखन महज एक शौक नहीं है बल्कि व्यक्ति, समाज, परिवेश, समाजिक घटनाओं को गंभीरता से समझने और पाठकों को अपने लेखन के माध्यम से समझाने का गंभीर दायित्व भरा कर्म है। उसके बाद मेरी कहानियाँ नवनीत के साथ ही म. प्र. साहित्य अकादमी की पत्रिका 'साक्षात्कार', शब्दयोग, साहित्य भारती, अक्षर पर्व, ट्रिब्यून आदि में प्रकाशित होने लगीं। लेकिन सन् 2007 में जब मेरी एक कहानी साहित्य अकादमी दिल्ली की पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' में प्रकाशित हुई तो मेरा आत्मविश्वास बढ़ा। उस समय समकालीन भारतीय साहित्य के संपादक प्रतिष्ठित कहानीकार अरुण प्रकाश थे। उन्होंने मेरी कहानी का शीर्षक बदल कर 'खाली' कर दिया था। वह कहानी काफी पसंद की गई तथा उड़िया, गुजराती एवं तेलुगु भाषा में भी उसका अनुवाद एवं प्रकाशन हुआ। बाद में वह कहानी हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका हरिभूमि में 'मासूम' शीर्षक से प्रकाशित हुई। मैं अपने आप को कहानीकार मानने लगा था जबकि व्यंग्य नवभारत टाइम्स, पंजाब केसरी, आज, कादम्बिनी सहित बहुत सारे समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे।

गोस्वामी जी अधिक समय तक बुढ़ार में नहीं रहे। बुढ़ार से जाने के बाद वे इलाहाबाद में मित्र प्रकाशन प्रा. लि. की पत्रिका 'मनोरमा' के संपादक रहे। मैं जब भी इलाहाबाद प्रेस के काम से जाता तो कठघर

रोड में राजाराम टाइप फाउण्ड्री में टाइप रिकास्ट के लिए दे कर कठघर रोड पर ही स्थित मित्र प्रकाशन प्रा. लि. में अमर गोस्वामी के पास जा पहुँचता। वे बड़े प्रेम से मिलते। मित्र प्रकाशन प्रा. लि. की ही अन्य पत्रिका मनोहर कहानी' का संपादन उस समय प्रतिष्ठित साहित्यकार अमरकांत जी देखते थे उनसे अमर गोस्वामी जी ने मिलवाया तो वे बड़े प्रेम से मिले। उस समय मैं उनके कृतित्व से परिचित नहीं था। बाद में उनकी 'डिप्टी कलेक्टरी' एवं' दोपहर का भोजन' कहानियाँ पढ़ीं तो उनकी कहानियों से अत्यंत प्रभावित हुआ। अमर गोस्वामी, कमलेश्वर, शैलेश मटियानी, रवीन्द्र कालिया आदि से जहाँ अपनी मित्रता के किस्से सुनाते वहीं महादेवी वर्मा, निराला, सुमित्रानंदन पंत, फिराक गोरखपुरी, शेखर जोशी, आदि जिन्हें मैं पढ़ता आ रहा था के जीवन के अंतरंग पहलुओं से भी परिचित कराते।

अमर गोस्वामी कुछ समय बाद ही इलाहाबाद से कमलेश्वर के आमंत्रण पर दिल्ली चले गए तथा उनके साथ साहित्यिक पत्रिका 'गंगा' में संपादन सहयोग किया फिर 'संडे आब्जर्वर' तथा 'अक्षर भारत' में संपादन सहयोग के बाद भारतीय ज्ञानपीठ में कार्यरत हुए। अंतत: वे 'रे माधव पब्लिकेशन' में प्रधान संपादक के पद पर नियुक्त हुए। इस बीच उनकी लगभग 50 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं और लगभग इतनी ही पुस्तकों का बाँग्ला से हिन्दी में अनुवाद किया था तथा बहुत सारे पुरस्कार एवं सम्मानों से सम्मानित हुए। रे माधव पब्लिकेशन से ही उनके सहयोग से मेरा पहला कहानी संग्रह 'काले पन्नों पर लिखी इबारत' प्रकाशित हुआ जिस पर मुझे 5000/ रायल्टी भी प्राप्त हुई। उसके पहले मुझे रायल्टी के बाबत् कुछ भी ज्ञात नहीं था। इस बीच मैं एक साप्ताहिक समाचार पत्र प्रकाशित करने लगा था जिसके विशेषांकों में अमर गोस्वामी अपनी रचना तो भेजते ही थे साथ ही इलाहाबाद के अन्य प्रतिष्ठित कहानीकारों की भी कहानियाँ भेज कर सहयोग करते। विदेशी भाषाओं के हिन्दी अनुवाद पढ़ने की तरफ भी मेरी रुचि हुई तो गोर्की, टाल्सटाय, चेखव, ओ हेनरी, काफ्का, मार्केज, मोपासा आदि प्रतिष्ठित साहित्यकारों की हिन्दी में अनुवादित कृतियों को पढ़ डाला। लेकिन उनकी कृतियों के पात्रों के नाम मैं अक्सर पढ़ते वक्त भूल जाया करता था। फिर भी आसानी से समझ में आने वाली प्रभावशाली कहानियाँ ओ हेनरी तथा चेखव की लगतीं उनकी कहानियाँ मैं ढूँढ़-ढूँढ़ कर पढ़ता। वर्तमान के हिन्दी लेखकों का एक वर्ग विदेशी भाषा की कहानियों के कथानक एवं शिल्प का अनुकरण कर गौरवान्वित होता दिखाई पड़ा। विशेष रूप से चेखव की 'ए डेथ आफ क्लर्क' तथा काफ्का की 'मेटामारफोसिस (कायान्तरण)' कहानी के कथानक एवं मार्खेज के जादुई यथार्थवाद के शिल्प का अनुकरण बहुतायत में किया जा रहा है।

सन् 2000 के आस पास म.प्र. साहित्य अकादमी ने अपने एक आयोजन 'पाठक मंच' के संयोजन का दायित्व मुझे सौंपा। लगभग 5 वर्षों तक पाठक मंच के संयोजन के दौरान बहुत सारी प्रतिष्ठित एवं चर्चित साहित्यिक कृतियाँ पढ़ने और उन पर अपना अभिमत लिखने का मौका मिला। मैं उन कृतियों पर लिखे अपने अभिमत को समीक्षा का रूप देता चला गया तथा वे समीक्षाएँ प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेज देता जो कि अक्सर वहाँ प्रकाशित भी हो जातीं। उन प्रकाशित समीक्षाओं को देख कर कई लेखक अपने कहानी संग्रह, कविता संग्रह, उपन्यास, आलेख संग्रह आदि समीक्षार्थ मेरे पास भेजने लग गए तथा अब तक 100 से अधिक किताबों की समीक्षाएँ लिख चुका हूँ जिनमें से अधिकतर प्रकाशित भी हो चुकी हैं। लेकिन सबसे अविस्मरणीय पल वह था जब प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सूर्यबाला ने अमेरिका प्रवास के दौरान वीडियो काल कर के अपने उपन्यास 'कौन देश को वासी वेणु की डायरी' पर समीक्षा लिखने को कहा। शायद पाठकों के बीच से उभरे मेरे जैसे समीक्षक से वे अपनी पुस्तक की समीक्षा लिखवा कर अपनी पुस्तक के प्रति आम पाठकों के नजरिए को जानना चाहती थीं। फिलहाल उनने अपना उपन्यास भेजा, मैंने उस पर समीक्षा लिखी तथा वह कुछ पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई। लेकिन इसके साथ ही साहित्य जगत में उनके रूप में मुझे एक सहृदय मार्गदर्शक भी मिल गया। यह उनका बड़प्पन ही था कि मेरे थोड़े से ही आग्रह पर ही उन्होंने मेरे दूसरे कहानी संग्रह का फ्लैप लेखन कर के भेज दिया।

एक वर्ष तक प्रगतिशील लेखक संघ की अध्यक्षता भी की तथा हंस, पहल, कथादेश, पाखी, वर्तमान साहित्य आदि प्रगतिशील पत्रिकाओं में बहुत सारे प्रगतिशील साहित्यकारों एवं कहानीकारों को पढ़ा लेकिन उनको पढ़ने के बाद एक असहमत पाठक का नजरिया ही उभरा। पहल के संपादक ज्ञानरंजन की 'पिता' एवं 'बहिर्गमन' कहानी अच्छी लगीं तो 'रचना प्रक्रिया' कहानी अरुचिकर लगी। हंस के संपादक राजेंद्र यादव की 'हासिल' कहानी के कथानक तथा आलेख 'होना सोना एक खूबसूरत दुश्मन' की अश्लील भाषा का तीव्र विरोध किया। हंस के द्वारा राजेन्द्र यादव ने नैतिकता का विरोध, स्त्री यौन स्वातंत्र्य के नाम पर यौन स्वच्छंदता का परचम लहराना शुरू कर दिया। यथार्थवाद के नाम पर अश्लील गालियों को यथावत अपने द्वारा प्रकाशित कहानियों में परोसने लग गए। हंस में छपासु लेखकों का एक दल उनके साथ हो गया। यहाँ तक कि यदाकदा अपने संपादकीय में भी अश्लील गालियों का प्रयोग करने से वे नहीं हिचकते थे। उस पर तुर्रा यह कि सन 2005 में एन. डी. टी. वी. के एक कार्यक्रम में राजेन्द्र यादव ने राजनेताओं के वक्तव्यों की भाषा में प्रयुक्त अश्लील गालियों पर तीखी टिप्पणी करते हुए उन्हें 'भाषा के अपराधी भाषा के हत्यारे' संबोधन से संबोधित किया। इस विरोधाभास पर तीखी टिप्पणी करते हुए मैंने एक आलेख 'भाषा के अपराधी भाषा के हत्यारे' जरा अपने दर्पण में खुद का प्रतिबिंब भी निहारे'

शीर्षक से लिख कर म. प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन अक्षरा में भेज दिया। अक्षरा में मेरे 4-5 आलेख पूर्व में प्रकाशित हो चुके थे।

उस वक्त अक्षरा के प्रधान संपादक कैलाशचंद्र पंत, संपादक विजय कुमार देव तथा सह संपादक सुनीता खत्री थीं। कुछ समय बाद एक दिन अक्षरा के तत्कालीन संपादक विजय कुमार देव का फोन आया तथा उनने प्रस्ताव रखा कि यदि गालियों के प्रयोग को राजेन्द्र यादव तक सीमित न रख कर 'साहित्य और गालियों के अंतर्संबंध' को विश्लेषित करते हुए साहित्य और गालियों के अंतर्संबंध का इतिहास, हिन्दी लोक साहित्य और वाचिक परंपरा तथा विदेशी साहित्य में भी इस संबंध में चर्चा करते हुए वर्तमान साहित्य में इनके प्रयोगों की प्रवृत्ति को सउदाहरण विश्लेषित करते हुए आप आलेख लिखे सकें तो इस तरह के आपके आलेखों की एक लेखमाला अक्षरा प्रकाशित कर सकती है। उनके प्रस्ताव को स्वीकारते हुए मैंने अक्षरा के जुलाई-अगस्त 2005 अंक से लेकर सितंबर-अक्टूबर 2007 अंक तक 11 आलेख लिखे जो कि अक्षरा में 'इस हमाम में' स्तंभ के तहत प्रकाशित हुए तथा अत्यंत चर्चित हुए। उन आलेखों के शीर्षक थे 1-साहित्य में गालियाँ गालियों में साहित्य 2-पर्व त्यौहार के लोकगीतों में गालियाँ 3-आखिर ये गालियाँ हैं क्या बला? 4-इन्हें गालियाँ तो न होना था-दलित संदर्भ में गालियाँ 5-क्या नेता शब्द गाली बनता जा रहा है-राजनीति के संदर्भ में गालियाँ 6-गालियाँ वर्तमान साहित्य की भाषा के संदर्भ में 7-वर्तमान साहित्य की भाषा का नग्न यथार्थ अश्लील गालियाँ 8-स्मृतियों की जुगाली में गालियों की लज्जत-संस्मरण लेखन गालियों के संदर्भ में 9- वर्तमान साहित्यिक स्त्री विमर्श गालियों के संदर्भ में : स्वयं को गाली देता साहित्यिक स्त्री विमर्श 10- साहित्य के अखाड़े में गालियों की कसरत तथा 11-अब फैसला हम पाठकों को करना है।

इन आलेखों को लिखने में मेरा पाठक होना ही काम आया। अब तक मेरे पास लगभग 4000 पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें एकत्र हो चुके थे तथा एक-एक आलेख लिखने में कम से कम 20-25 पुस्तकों को टटोल कर संदर्भ ढूँढ़ा करता था। सन् 2011 में ये आलेख 'इस हमाम में' शीर्षक से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए तथा चर्चित हुए। कुछ समीक्षकों ने इस पुस्तक को 'साहित्य और गालियों के अंतर्संबंध' पर केंद्रित पहली पुस्तक माना। सन् 2018 में कानपुर की साहित्यिक संस्था 'नवनिकष तरंग सृजनोत्सव' द्वारा इस पुस्तक को 'समीक्षा श्री' सम्मान से सम्मानित किया गया। बाद में ये आलेख अन्य कई साहित्यिक पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए। संभवत: इन आलेखों को पढ़ कर ही कानपुर से प्रकाशित 'नवनिकष' साहित्यिक पत्रिका ने 'असहमति' शीर्षक से एक स्तंभ लेखन का दायित्व मुझे सौंपा। जिसमें लगभग 4 वर्षों तक मैं वर्तमान साहित्य की विसंगतियो के खिलाफ आलेख लिखता रहा।

दरअसल वर्तमान साहित्य के, विशेष विचारधारा, विमर्शवाद, यथार्थवाद एवं अति यथार्थवाद से प्रभावित होने, स्त्री यौन स्वातंत्र के नाम पर यौन स्वच्छंदता, देहवादिता, समलैंगिकता एवं लिव इन रिलेशनशिप के समर्थन के वर्तमान साहित्य में उभरते स्वरों से मेरे अंदर का सहज, सरल पाठक सहमत नहीं हो पाता। उस असहमति ने भी मुझसे 'देह विमर्श का औचित्य', 'स्त्री यौन स्वातंत्र्य समर्थक लेखन क्या स्त्री हितों के अनुकूल है', 'वर्तमान साहित्य में यथार्थवाद क्या एक भ्रामक अवधारणा है', 'वर्तमान साहित्य में यथार्थवादी लेखन क्या केवल तमोन्मुखी है'। 'हिन्दी की पहली कहानी कौन अब तक विवादित क्यों' आलेख लिखा तथा हिन्दी की देवनागरी लिपि की उपेक्षा तथा अन्य लिपि में लिखी गई कृतियों को हिन्दी भाषा की कृति मानने का विरोध करते हुए आलेख 'क्या लिपि सिर्फ भाषा के अभिव्यक्ति का माध्यम है' लिखा। ये सभी आलेख प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए जिनमें से कथाक्रम, अक्षरा, साहित्य यात्रा, संवदिया, मंगल विमर्श, नवनिकष, वाद संवाद, साहित्यनामा, अक्षरपर्व आदि प्रमुख थीं। मैं अतीत के कालजयी साहित्यकारों के सम्मानजनक स्मारक न बनाए जाने, उनके निवास स्थलों के उपेक्षित हालत में होने से भी दुखित था तथा इन पर ध्यानाकर्षण हेतु विस्तृत रूप में एक आलेख 'स्थापित किए जाने चाहिए साहित्य के तीर्थ स्थल' लिखा जो कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ तथा उसे पढ़ कर प्रतिष्ठित साहित्यकार चित्रा मुद्गल जी ने मुझे फोन कर बधाई दी जिससे मेरा उत्साहवर्धन हुआ।

वर्तमान साहित्य में विशेष विचारधारा का परचम लहरातीं वर्तमान की महिला कहानीकार जब देह के गणित में उलझी हुई हैं, देह विमर्श की नाप जोख में व्यस्त हैं तब मेरे अंदर का पाठक उनसे निवेदन करता है कि 'स्त्री सिर्फ देह नहीं है' उसके मन को उसकी भावनाओं को भी विश्लेषित करिए। मुझे कौशिक जी की 'ताई', महादेवी वर्मा की 'बिबिया', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'कदंब के फूल', मालती जोशी की लगभग सभी कहानियाँ, ऊषाकिरण खान की 'दूब गाँछ', डॉ. सूर्यबाला की 'गीता चौधरी का आखरी सवाल', सुषमा मुनीन्द्र की 'विजेता' आदि कहानियाँ नारी मन की भाषा को बाँचती हुई अधिक प्रभावित करती हैं।

वर्तमान साहित्य जगत में विशेष तौर पर प्रगतिशील लेखन से असहमत मेरे अंदर का पाठक जब अपनी असहमति व्यक्त करता है तो वह किसी लेखक की असहमति नहीं होती बल्कि एक पाठक की असहमति होती है। संभवत: इस तरह की असहमति व्यक्त कर के वह वर्तमान साहित्य में' पाठकों का लोकतंत्र' स्थापित करना चाहता है। क्या कभी साहित्य जगत में पाठकों का लोकतंत्र कायम हो पाएगा?

'सुभद्रा कुटी' बस स्टैंड के सामने, बुढ़ार,
शहडोल-484110 (म. प्र.)
मो.- 9329562110

गढ़ी पठाणां

(पंजाबी कहानी)

अनु. : नीलम शर्मा 'अंशु'
मूल : अजमेर सिद्धु

नीलम शर्मा 'अंशु'

जन्म – 11 दिसंबर 1966।
जन्मस्थान – अलीपुरद्वार (पं.बंगाल)।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – अठारह पुस्तकें प्रकाशित।

अजमेर सिद्धु

जन्म – 1970।
रचनाएँ – चौदह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – अनेक क्षेत्रीय सम्मानों से सम्मानित।

ज्येष्ठ माह की तपती दोपहर।

मैं ठेके पर नौकर को बिठा कर अपने घर जा रहा था। जैसे ही मैं गढ़ी (छोटा किला) के पास से गुज़रा, चार-पाँच खूबसूरत युवतियाँ बन-सँवर कर खड़ी थीं। मैंने बाद में देखा, उनके चेहरे बुर्कों से ढके हुए थे। जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा, उन्होंने बुर्के की जालीदार पट्टियाँ उठाईं और उन्हें अपने सिर पर डाल लिया। मुझे ऐसा लगा मानो आसमाँ से परियाँ उतर आईं हों। मैं उनके ज़रा और पास पहुँचा तो मुझे इत्र की खुशबू आई। यह खुशबू उनके भरपूर हुस्न की थी। बुर्के के भीतर से भी, उनके गदराए बदन ने मेरी आँखों की मरुथलीय तृषा को मदमस्त कर दिया। मैं जी भर कर उनकी तरफ देख भी नहीं पाया। मैंने अपनी गर्दन झुका ली। तेज़ी से चलता रहा। जैसे ही उनके पास से गुज़रने लगा, एक युवती ने कटाक्ष के लहज़े में कहा –
'अरे हीरो! ज़रा सिर तो उठाइए।' मैं पहले ही घबरा गया था लेकिन डर के मारे खड़ा हो गया। घबराकर जब मैंने अपना मुँह उनकी तरफ घुमाया तो पहले वाली फिर बोली –
'हुज़ूर, कभी अपनी नशीली निगाहों से हम गुस्ताखों की तरफ भी देख लिया करें।' वे सभी खिलखिला कर हँस पड़ीं।

'अल्लाह, की मार पड़े तुम पर, बेचारे को क्यों परेशान कर रही हो? जाइए! सरदार जी आप जाइए।' यह राबिया थी।

एक दिन मैं ठेके के भीतर बैठा, ग्राहकों का इंतज़ार कर रहा था। पता ही न चला कि कब मैं अपने सामने लटके इश्तहारवाली सुंदरी की प्यारी सी चितवन की तरफ खिंच गया। मुझे इसमें भी राबिया ही दिख रही थी। सुबह ही कंपनी वाले इश्तहार लगा कर गए थे। इस 'जाल' से बाहर निकलने के लिए ठेके से बाहर निकल आया। इमली के पेड़ की छाया में खड़ा हो गया और दूर तक निगाह दौड़ाई। बरखेड़ा के सौंदर्य और गंदगी का संयोजन मेरी नज़रों के सामने था। ऊँचे तथा घने इमली और महुआ के पेड़ पंजाब के शीशम का भ्रम दे रहे थे। जब बारिश के मौसम में ठेके के पास का नाला पानी से लबालब बहता है, मुझे अपने गाँव चब्बेवाल का चो (पहाड़ी बरसाती नाला) याद आ जाता। बरसात के दिनों में बरखेड़ा की काली मिट्टी फूल जाती। पिंडलियाँ इस कीचड़ में फँस जातीं हैं। पिता अक्सर कहते थे, 'यह मिट्टी सूख जाए तो लोहा, भीग जाए तो गोहा (गोबर)।'

मैं मिनट भर में पंजाब पहुँच जाता और मिनट में ही बरखेड़ा। दाना-पानी कहाँ खींच लाया? मैंने अपनी तंद्रा को पंजाब और बरखेड़ा से अलग किया। सड़क की ओर चलते हुए, मैंने दिन-दहाड़े हुस्न-परी के सपने देखने शुरू कर दिए। मैं अभी भी सपने में उसी सुंदरी से इश्क फ़रमा ही रहा था, एक तेज आवाज़ ने मेरी तंद्रा भंग कर दी –
'बड़ी आपा ने आपको घर पर बुलाया है।'

दस वर्षीया एक लड़की मेरे सामने खड़ी थी, उस बच्ची की बात सुनकर मैं थोड़ा घबरा गया था। सबसे ज़्यादा घबराहट तो हर वक्त कड़ी नज़र रखने वाली उसकी ताई बशीरा बेगम से थी। वह मुझे ज़्यादा ही कट्टर दिखाई देती थी। मैं न हूँ, न हाँ कह पाया। उसी वक्त शराब लेने आए तीनों व्यक्ति हँस पड़े थे। उनकी हँसी ने मेरी जान ही निकाल दी थी। सबसे पहले मैंने उन्हें बोतलें दीं। फिर मैं वापस बच्ची के पास आ गया। मुझे ख़ामोश देख बच्ची ने फिर से वही शब्द दोहराए। मुझे उसका ठेके के पास आना बहुत अजीब लगा।

'अच्छा!' मेरे मुँह से बस इतना ही निकला।

मेरी हाँ सुनकर लड़की कुलाँचें मारती नौ-दो ग्यारह हो गई। मैं ठेके के अंदर दाखिल हुआ और कुर्सी पर बैठ गया। उसी समय, दाढ़ी पर हाथ फिराते हुए, मेरे पिता भीतर आए। मैं उन्हें देखते ही सिकुड़ गया। वे अँधेरा होने तक वहीं रहे और मुझे शराब बेचने का गुरुमंत्र बताते रहे। उनके रहते मैं 'वहाँ' से निकल जाने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाया। वैसे भी मैं अभी जानेवाला नहीं था। बशीरा बेगम की आँखों की लाली से मैं डरता था और मुन्ना पठान की राइफल सीधे सीने में धँसती थी। उस दिन ठेका बंद भी पिता जी ने ही करवाया था। जब हम घर पहुँचे, तो मेरी माँ और बहनें रसोई में रात के खाने की तैयारी में जुटी थीं। दादी पाठ करने में मशगूल थीं। उन्होंने पाठ पूरा करने के बाद सबसे पहले मुझे गले लगाया। वो बशीरा बेगम भी मेरी दादी जैसी क्यों नहीं बनतीं? यह सवाल मैंने अपनी दादी से मन ही मन पूछा था,पर पिता जी की तरफ देख कर चुप हो गया था। दादी जी के पोथी सहेजने के बाद ही हमें खाना मिला था।

खाने से याद आया, वह बच्ची अगले दिन फिर से ठेके के सामने बंद पड़ी दुकानों के पास आ धमकी थी। वह बहुत फुर्ती से इधर-उधर चक्कर काटने लगी। जब मैं उसके पास पहुँचा, तो उसने बड़े रौब से कहा-'सरदार जी, बड़ी आपा ने कहा है, अगर आप आज तशरीफ़ न लाए, तो वे आज भी खाना नहीं खाएँगी।'

उस वक्त ठेके पर कोई ग्राहक नहीं था। नौकर भी घर चला गया था। वैसे मैं भीतर से पूरी तरह से डर गया था, लेकिन बच्ची के सामने अपना डर नहीं ज़ाहिर होने दिया। सोच रहा था कहीं कल की भाँति मेरे पिता जी न आ धमकें।

'ठीक है! मैं आज ज़रूर आऊँगा।' कहते हुए उसे जल्दी से वहाँ से रवाना किया था।

वह चली गई, लेकिन उसके जाने के बाद मेरे लिए वहाँ वक्त गुज़ारना मुश्किल हो गया था। यह राबिया की चचेरी बहन आशिया थी। हमारे ठेके से थोड़ी दूर कस्बे की तरफ इन पठानों की अब्दाल नामक गढ़ी थी। यह गढ़ी दस-बारह एकड़ में फैली हुई थी। चारों तरफ अकबरशाही ईंटों और चूने की चहारदीवार से घिरी हुई थी। चौड़ी चहारदीवार दो-चार जगहों से टूटी हुई थी लेकिन टूटी जगहों को बेरी और अन्य झाड़-झंखाड़ ने ढक रखा था। इस गढ़ी में पठानों के पच्चीस-तीस परिवार रहते थे। घर, मवेशियों के बाड़े और सब्जी की क्यारियाँ सब कुछ खुला-डुला था। घने पेड़ों और फलदार वृक्षों के कारण यह जगह हरी-भरी लगती थी।

यह बरखेड़ा तब 'सीहोर' जिले का एक छोटा सा कस्बा हुआ करता था और भोपाल से सटा हुआ था। शायद पिता जी हमें पंजाब से वहाँ कभी नहीं ले जाते अगर हमारे इलाके में इन्कलाबी नौजवानों की आतंकवादी गतिविधियाँ तेज न होतीं। 60 के दशक के अंत में पंजाब के कॉलेजों में भी इन्क़लाब की गूँज शुरू हो गई थी। अभी हमने उस समय माहिलपुर में कॉलेज जाना शुरू ही किया था। सौली वाले गोपी का खाड़कू जत्था कॉलेज तथा पूरे इलाके में सक्रिय हो चुका था। हममें से कुछ कॉलजिएट लड़के उनकी तरफ आकर्षित हो गए थे। पिता जी उस इलाके के एक जत्थेदार के रूप में जाने जाते थे। उन्हें डर सताने लगा था कि कहीं मैं भी इस सशस्त्र आंदोलन से जुड़ कर मारा न जाऊँ।

इस भय के कारण उन्होंने भोपाल में मौसा जी से बात की। देश विभाजन से पूर्व, मौसा जी का परिवार सियालकोट जिले के नारोवाल तहसील के बद्दोमल्ही गाँव में रहता था। मार-काट के दिनों में वे नारोवाल से सीधे भोपाल जा बसे। वहाँ वे बुनाई का काम करते-करते कपड़ा व्यापारी बन गए। भोपाल में सरदारों के अच्छे-ख़ासे व्यवसाय थे। उन्होंने बरखेड़ा और अहमदपुर में हमें दो शराब के ठेके दिलवा दिए। बना-बनाया एक मकान भी खरीदवा दिया। मैंने वहाँ न जाने के बहुत बहाने बनाए परंतु मेरी एक न चली। पिता जी बहुत कड़क मिजाज़ के थे। उन्होंने हर तरीका अपनाया। मैं उनके सामने तो नहीं झुका लेकिन मुझे अपनी दादी जी की बात माननी पड़ी। पिता हम सबको वहाँ ले गए। हमारे आस-पास सरदारों के और भी घर थे। पिता मुझे चब्बेवाल से इतनी दूर ले गए कि नवगठित पार्टी से मेरी निकटता कैसे रहती? फिर तो पंजाब मेरे लिए लाहौर से भी दूर हो गया था।

हमारा घर शहर के भीतर था लेकिन यह अब्दाल गढ़ी बाहर की तरफ थी। हमारा ठेकागढ़ी से आगे था। पठानों के खेत ठेके से काफ़ी आगे थे। चहारदीवारी के बाहर से यह गढ़ी एक पुराने किले जैसी प्रतीत होती थी। इसके भीतर घूमते ऊँचे-लंबे पठानों से भय लगता था। राइफलें तो ये लोग ऐसे लिए घूमते जैसे सरहद पर फौजी। उन दिनों मुन्ना पठान चार-पाँच के साथ शिकार पर गया था तो वापसी में हमारे ठेके के सामने आ रुका था।

'सरदार भाई! तीन बोतलें दे दो। आज हम कबाब के साथ नवाब बनेंगे। तमाम कबीला आज दावत-ए-मुन्ना कबूल फरमाएगा।' उसने आस-पास देखते हुए धीमे से कहा था। दरअसल गढ़ी के कुछ पठान चोरी-छिपे शराब पीते थे। कंधों पर टँगीं राइफलें और हाथों में पकड़े शिकार से वह अपने कबीले का सरदार लग रहा था। उसके साथियों ने शराब की बोतलें लेकर झोलों में छुपाईं और चलते बने। यह

राबिया के अब्बा थे।

उस दिन, परी जैसी जिस पठान युवती की खूबसूरती सबसे ज़्यादा दिलकश लग रही थी–वह राबिया ही थी। मेरी राबिया! दमकता गोरा रंग। मोटे गालों पर हल्की सी गुलाबी आभा। गुलाब की पंखुड़ियों जैसे होंठ। चाँद सा चौड़ा माथा। अर्द्ध बिल्लौरी आँखें। सरु सा कद। बिल्कुल अपनी अम्मी बशीरा जैसी। मेरे मन में समाई प्रतिमूर्ति सी। 'अल्लाह की मार पड़े तुम पर, बेचारे' सुनकर मैं तो मर मिटा था। वह मुझे हर दूसरे–तीसरे दिन 'दीदार' करवाने लगी। लगभग एक ही समय वह आती और मेरे नयनों की प्यास शांत कर जाती। जैसे ही मैं पैसों की वसूली के लिए अब्दाल गढ़ी जाता तो संयोग से राबिया भी ऊँची ड्योढ़ी की दहलीज पर खड़ी होती। वह एकटक मुझे तकती रहती। कई बार पास से गुज़रते समय मैं घबरा जाता। ख़ासतौर पर तब, जब बाज़ार जाते समय उसकी अम्मी भी साथ होतीं। इस डर से ही मेरी नज़रें झुक जातीं। कई बार मैं शेर बन जाता। मुँह पीछे घुमा–घुमा कर देखता रहता परंतु कुछ भी कहने की हिम्मत न उसमें थी न ही मुझमें। यह तो अब उसने आशिया के मार्फत संदेसा भेज कर शुरुआत की थी।

बच्ची संदेसा दे कर चली गई। मैं सोचने लगा कि राबिया के पास जाऊँ या नहीं। गढ़ी के पठानों के डील–डौल और कंधे पर राइफलों के बारे में सोच बार–बार न में सिर हिलता रहा। राबिया के भूखे–प्यासे होने का ख़याल आया तो मन पसीज गया। दादी की भाँति मैं हर रोज़ छत पर पंछियों के लिए पानी रखता था और रोटियों के छोटे–छोटे टुकड़े करके डालता था। आख़िर ये पंछी भी तो जाऊँ या न जाऊँ की उधेड़बुन में मन उलझा हुआ था। तब तक नौकर आया। मैंने उसे ठेके पर बिठा कर गढ़ी में प्रवेश किया। गर्मी तो कहर ढा रही थी। आदमी तो क्या, कोई कुत्ता या बिल्ली तक नज़र नहीं आ रहे थे। जैसे ही मैं सातवें घर के पास से गुजरा, वह तुरंत गली में आ गई। मैं उसके पीछे–पीछे चल पड़ा। मेरा दिल धड़क रहा था। कहीं घर में अम्मी–अब्बा, भाई–भाभियाँ न हों। उनके बारे में सोचते हुए, मैं अंदर गया। कमरों की दीवारें बहुत मोटी थीं और छत ज़रूरत से ज़्यादा ऊँची थी। कमरा बिलकुल ठंडा था। चारपाई पर बैठते ही, कमरे की ठंडक ने तपते तन को राहत पहुँचाई। घड़े का पानी गटा–गट पी गया। उसने भी पानी से मुँह सुच्चा किया।

'अजी हजूर! कितना इंतज़ार करवाया आपने। हमारी नज़रें तो आपकी राहें तलाशती रहती थीं। आज परवरदिगार के रहम–ओ–करम से आपके दीदार नसीब हुए हैं। आप ज़िंदगी हैं, मेरी साँसों की डोर।' उसने अपनी निगाहें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं। और मैं डर रहा था कहीं कोई आ न जाए।

'कहाँ गए सब लोग?'

'वे सभी आगरा में बुआ के घर निक़ाह पर तशरीफ़ ले गए हैं। दो रोज़ के बाद आएँगे। मैं आपसे जी भर कर बातें करना चाहती हूँ।'

यह सुनकर मेरे कलेजे में ठंड पड़ गई और मैं भय मुक्त होकर राबिया को निहारने लगा। वह शरारे में बहुत जँच रही थी। नहीं तो मैंने उसे हमेशा बुर्के में ही देखा था। जिस दिन जिन चार–पाँच लड़कियों ने मुझे घेरा था, मैं उसी पर लट्टू हुआ था। जिसे मैं अच्छी तरह देखने को तरसा करता था, वह मेरे सामने बैठी थी। दूधिया शरारे में यह लड़की चाँद की किरणों जैसी लग रही थी। यह लंबी सी, मोटी–मोटी आँखों और लरहाते काले बालों वाली मुझे सबसे ज़्यादा आकर्षित कर रही थी। मैंने उसके बालों में हाथ फिराया था। ऐसा लगा मानो उसके अंग–अंग में थिरकन पैदा हो गई हो। वह बिखरे हुए बालों में भी किसी पोर्टेट की भाँति सुंदर प्रतीत हो रही थी। बिलकुल वैसी ही जैसे ठेके पर लगे इश्तहार वाले मनमोहक चेहरे। वह पाँच–सात मिनट मेरे पास बैठती थी, फिर खाने–पीने के लिए कुछ न कुछ उठा लाती। मानो मैं सदियों से भूखा–प्यासा होऊँ। हम ऐसे बातें कर रहे थे जैसे कि हम जन्म–जन्मांतरों से परिचित हों। मैं जीवन में पहली बार किसी युवती को इतने करीब से देख रहा था।

'क्या हम फिर मिल सकते हैं?' चलते समय मैंने धीमे से पूछा था। उसने न में सिर हिलाया। पल भर के लिए नकली गुस्सा भी दिखाया। फिर खुलकर हँस पड़ी। उसने फिर से आने का वादा लिया। चलते समय घर के सभी कमरे दिखाए। एक तरफ उसके भाई –भाभियों राशिद मोहम्मद–लाडो बेगम और चाँद मियां–शबीना बेगम के कमरे थे। ये मुख्य दरवाज़े के सामने थे। ये नए बने थे। दोनों माँ और बेटी दूसरी तरफ पुराने कमरों में ही सोती थीं। राबिया का अपना अलग कमरा था। इसका छोटा दरवाज़ा खेत की तरफ खुलता था। उसकी अम्मी बशीरा बेगम का कमरा बिलकुल साथ ही था। उसके पिता मुन्ना पठान ज़्यादातर खेत पर ही सोते थे। कभी–कभार अम्मा के कमरे की शोभा बढ़ाते थे।

'जिस दिन मुझे आपसे मिलना होगा, आशिया को ठेके पर भेज दूँगी। आप उस रात खेतों की तरफ से आ जाना। मैं कुंडी खोल दूँगी।' राबिया ने मासूमियत से मुझे चलते समय बताया था।

हाँ, फिर ऐसा ही होने लगा। पठानों की एक टोली जंगल में शिकार खेलने जाती थी। वे तीन–तीन, चार–चार दिनों तक वापस नहीं आते थे। मुन्ना पठान, राशिद मोहम्मद, चाँद मियां तो शिकार पर जाते ही

रहते थे। उन्हीं दिनों मेरा वहाँ जाने का दाँव लगता था। मैं ठेके से उठकर वहाँ चला जाता था। वह मेरा इंतज़ार कर रही होती। उसके पास प्रेम-मुहब्बत की बातों का भंडार होता। उसकी बातें न ख़त्म होतीं, रात ख़त्म हो जाती। उसका चेहरा जितना खूबसूरत था, उसका तन उससे भी आगे झिल-मिल करता। उसे देखकर मैं उत्तेजित हो जाता, बेकाबू हो जाता। जैसे ही मेरा हाथ उसके गलेपर जाता, वह मेरा हाथ पकड़ लेती और बहुत विनम्रता से कहती –
'नहीं, हुजूर! अभी नहीं। यह मेरी पाक मुहब्बत है। आपके साथ निक़ाह तक पाक ही रहेगी।' ये शब्द उसके भीतर की गहराई से निकलते, लेकिन मैं तड़पता रह जाता। अंतत: मेरा शरीर बर्फ सा ठंडा पड़ जाता। हाथों की हरकत रुक जाती। पास बैठकर उसकी खूबसूरती का रसास्वादन करने लगता।

वह रोज़े रखती। दिन में पाँच वक्त नमाज़ पढ़ती। जिस रात मैं उसके साथ होता, कई बार वह ईशा वाली नमाज़ न पढ़ती। मैं उसे नमाज न पढ़ने पर सवाल करता। वह मेरे होठों को चूम लेती-'जब आप मेरे मुरशद मेरे पास हैं तो मैं नमाज़ क्यों पढ़ूँ?। आप ही नमाज़ हैं, आप ही मुरशद हैं।'

उसने किसी स्कूल या मदरसे से पढ़ाई नहीं की थी। मौलवी घर आ कर ही बच्चों को उर्दू सिखा देता था। वैसे भी पठानों में लड़कियों को स्कूल या मदरसे भेजना बुरा समझा जाता था। वह उर्दू इतनी अच्छी बोलती थी कि मैं उसका मुँह देखता रह जाता। वह हर काम में बहुत सुघड़ थी। उसके बनाए कबाब आज भी याद हैं। कई बार गर्म-गर्म कबाब का मीट ठेके पर आशिया के हाथों भिजवा देती थी। वह हर तरह का गोश्त बनाने में माहिर थी। उसके घर में ज़्यादातर जंगली जानवरों का ही गोश्त बनता था। दरवाज़े के भीतर पाँव रखते ही मसालों से भुने मुर्गे और तीतरों की खुशबू आ जाती।

'अब पता चला आपकी अच्छी सेहत और खूबसूरती का राज़।' एक दिन मैंने उसकी ठुड्डी से छेड़खानी करते हुए कहा।

'अजी छोड़िए। यह तो आपके आने से चेहरे पर रंगत आ जाती है, वर्ना हम तो' उसने मुझे आलिंगन कर लिया था। लालटेन की रोशनी में उसका चेहरा चाँद सा चमकता।

'पहले कुछ खा लीजिए।' मेज़ पर कबाब रखते हुए उसने कहा। मैं चटनी लगा कर आधा कबाब दाँतों से काट कर खुद खाता, बाकी बचा उसके मुँह में डाल देता।

'आपके घर में कभी दाल-सब्ज़ी भी बनती है?' मैं पूछता।

'जिस दिन आप नहीं आते।' वह हँस पड़ी।

इनके घर की बेटियाँ-बहुएँ राबिया की भाँति खूबसूरत थीं। पके सेबों जैसे उनके रंग के सामने संध्या के सूरज की लाली भी फीकी पड़ जाती। मोटी-मोटी बिल्लौरी आँखें सब का मन मोह लेतीं परंतु गढ़ी की कोई भी बेटी और बहू बशीरा से ज़्यादा खूबसूरत नहीं थीं। बशीरा राबिया की बड़ी बहन समान दिखती। उन्हें देख कर ऐसा लगता मानो सहेलियाँ जा रही हों। राबिया के घर पर मुझे सिर्फ़ उसकी अम्मी से डर लगता। उसके अब्बा से मेरा सामना यदा-कदा ही होता। हाँ, उसके भाई ज़रूर मुझसे बात करते। बड़ा चाँद मियां जब कभी-कभार ठेके पर आता तो मेरे पास बैठ भी जाता। वह शिकार के किस्से बढ़ा-चढ़ा कर सुनाता। वह इतना बातूनी था कि उसने मुझे भी पटा लिया। मैं भी कभी-कभी उसके साथ शिकार खेलने चला जाता। दिन के वक्त मेरा उनके घर जाना पठानों के लिए अजीब नहीं था। मैं चाँद मियां, रशीद मुहम्मद तथा अन्य पठानों के घर शराब पहुँचाने जाता ही रहता था। वे गुप्त रूप से बोतलें घर पर ही मँगवा लेते थे। गढ़ी के कुत्ते भी मेरे वाकिफ़ हो गए थे। राबिया ने घर के कुत्ते को भी मेरे बारे में समझा दिया था। अब मुझे इनसे डर नहीं लगता था और अम्मी . . .

वैसे तो सभी पठानों का हिंदुओं और सिक्खों से मेल-जोल तो था परंतु अम्मी सरदारों की महिलाओं से बहुत घुल-मिल जाती थीं। वे अक्सर घरों में फेरा मार जाती थीं। पीछे ये हमारे 'बार' (पाकिस्तान का एक इलाक़ा) की निकलीं। दादी अम्मा इनके पड़ोस में दूध लेने जाती थीं। वहीं से बशीरा से नाता ढूँढ़ लाई थीं। दादी ने घर लौट कर पिताजी को बताया –
'मुन्ने पठान् की घर वाली बशीरा बेगम भी हमारी बहावलपुर रियासत से है। चक्क नंबर 319 एच आर बताती है। मैंने कहा, हम 74 एच आर से हैं। यह सुनकर फूली न समाईं।'

'कहाँ मध्य प्रदेश का बरखेड़ा और कहाँ बहावलपुर? ये कैसे इतनी दूर ब्याहने चले गए?' पिता जी के माथे पर त्योरी आ गई।

'कह रही थी भोपाल और बरखेड़े के पठान उधर ऊँटों पर मेवे बेचने जाते थे।' जिनसे मैं दूध लाती हूँ वह भी कह रही थी कि हमारी नारोवाल और सियालकोट में भी रिश्तेदारियाँ थीं। कोई बीच में नज़दीकी रास्ता होगा।

दूध लाने गई दादी को बशीरा अपने घर ले जाती। उन्होंने मवेशी भी रखे हुए थे परंतु दूध नहीं बेचते थे। दादी बताती थीं कि उन्होंने कारोबार के दम पर बहुत ज़मीन बना रखी है। गुज़र आसानी से हो जाती थी। बशीरा दादी माँ को कभी-कभार लस्सी का डोलूँ भी भर कर दे देती थी। मक्खन भी डाल देती उसमें। कभी-कभी साग, गाजर, मूली, शलगम, दालें भी दे देतीं। फिर दादी बीमार हो गई। मेरी माँ जाने लगीं। वे ज़रा शर्मीले स्वभाव की हैं, किसी के घर ज़्यादा नहीं जातीं।

बशीरा अन्य सिक्खों के घरों में भी आती-जाती रहती थीं परंतु अचानक हमारे घर आना छोड़ दिया था। पता नहीं पिताजी न कुछ कह दिया हो या कोई और बात हो गई हो। उनके परिवार के बाकी सदस्य पहले की भाँति ही मिलते थे परंतु अब अम्मी के दर्शन रास्ते में ही होते। वे मेरी तरफ कनखियों से देखतीं तो कभी मुझे उनकी नज़रों में बेपनाह अपनत्व दिखाई देता तो कभी उदासी। राबिया के साथ जाते हुए कभी सीधे देखती रहतीं। मैं सोचता, कहीं अम्मी शक न करती हों। शायद इसी कारण हमारे घर से मेल-जोल कम कर दिया हो। उनका और राबिया का कमरा साथ-साथ था। जब मैं भीतर राबिया के पास होता तो मुझे अम्मी के उठने का ख़तरा बना रहता परंतु राबिया बिलकुल न घबराती। वह हँस कर कहती –
'जानेमन बेफिक्र रहो। अम्मी को मैं खूब दूध पिला देती हूँ। जगाने पर ही उठेंगी।'

राबिया की बात मुझे हज़्म न होती। साथ वाले कमरे में थोड़ी सी भी आवाज़ होती तो मैं फट से सँभल जाता। कई बार उनके उठने की आवाज़ होती, मैं चारपाई के नीचे छुप जाता। वे गुसलखाने की तरफ जातीं, राबिया के कमरे की तरफ एक निगाह डालतीं। गुसलखाने से वापस लौट फिर चारपाई पर लेट जातीं और खर्राटे मारने लगतीं। मैं और राबिया प्यार में मदमस्त, एक-दूसरे की बाँहों में समा जाते। बेसुध किसी अलग ही दुनिया में। कई बार मुझे अँधेरे में कुछ दिखता। मैं सिकुड़ जाता। मेरी साँस भी रुक-रुक सी जाती। साया गायब हो जाता। राबिया हँसने लगती। मुझे संदेह होता कि माँ-बेटी आपस में मिली हुई हैं। यह सब कुछ दोनों की मिली-भगत से हो रहा है परंतु राबिया ने कभी इस बात को स्वीकार नहीं किया। जहाँ मैं अम्मी से डरता वहीं राबिया बेपरवाह होकर मिलती। सारी-सारी रात उसकी प्रेम-कहानियाँ ख़त्म न होतीं। मैं उठ कर जाने लगता, वह ठेके की चाबियाँ छीन लेती। फिर एक दिन उसने अपने दिल की बात कह दी –
'मेरे साथ निकाह करोगे?'
'तुम्हारे अब्बा मान जाएँगे?' मैंने सवाल किया।
'गोली मार देंगे मगर निकाह नहीं करेंगे। हम घर से भाग कर निकाह करेंगे।' वह मेरे हाथ सहलाने लगी।

'तुम्हारी अम्मी मान जाएँगी?'

'हाँ, मुझे यकीन है कि वे हमारा साथ देंगी।'

पर मुझे यकीन था कि वे नहीं मानेंगी। वे ज़रूर रोड़ा बनेंगी। कई बार वह कहती कि भाभियों के मार्फत भाईयों को मना लेगी परंतु मुझे पता था पठान पुत्तर कहाँ मानने वाले थे। किसी काफ़िर के घर अपनी बहन का निकाह? तौबा-तौबा! वे खून की नदियाँ बहा देंगे। लाशों के ढेर लगा देंगे। ये तो अपनी इज़्ज़त की ख़ातिर!

उन्हीं दिनों इसके ताऊ जी की बेटी अफ़साना के निक़ाह का मामला उठा था। गुज्जर मुस्लिम लड़का उससे निक़ाह करना चाहता था। पठान मुस्लिमों को पसंद नहीं करते थे। वे नहीं माने। गुज्जरों की एक टोली पठानों की गैर-मौजूदगी में अफ़साना को उठाने आ गई। राबिया की ताई और अम्मी लट्ठ लेकर खड़ी हो गईं। गुज्जरों की आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। अगर ये लोग अपने मज़हब के लोगों में रिश्ते के लिए नहीं माने तो फिर सिक्ख पृष्ठभूमि वाले के लिए क्यों मानेंगे? हर बार मिलने पर यही सवाल मैं राबिया से ज़रूर करता। उसने भी कभी उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा था परंतु मैं....

उस रात मैं राबिया के साथ सो रहा था। मुझे कोई सुध नहीं थी। अम्मी दबे पाँव राबिया के कमरे में आईं और गरज़ उठीं–

'हम पठान लोग हैं। तेरे जैसे काफिर को इतना कह कर उन्होंने मेरे सीने में खंजर घोंप दिया। मेरी चीख निकल गई। राबिया ने मेरे मुँह पर हाथ रखा। मुझे काफ़ी देर कुछ पता न चला। मेरी आँखों ने चारों तरफ हरकत की। कहीं भी अम्मी नहीं थीं और न ही सीने से खून का फ़व्वारा निकल रहा था। राबिया मेरा सीना दबा रही थी। उसने ही मुझे भयानक सपने से निकाला था।

'मेरी जान क्यों डरतो हो? मैं आपके पास हूँ न।' उस दिन तो उसने बचा लिया था परंतु ऐसे सपने मुझे अक्सर आने लगे। मैं उसके पास जाने से कन्नी काटने लगा। अगर न जाता तो वह मुँह फुला लेती। उसका प्यार खींच कर ले जाता। दूसरी तरफ अम्मी की आँखों में लाल-लाल डोरे उतरे दिखाई देते। राबिया मेरे माथे पर हाथ मारती। पता नहीं वह किस मिट्टी की बनी थी, डर उसके आस-पास भी नज़र नहीं आता था। उसे यकीन था कि उसकी पढ़ीं नमाज़ें अल्लाह पाक की

दरगाह में अपना असर ज़रूर दिखाएँगी। अल्लाह हमारी मुहब्बत को ज़रूर परवान चढ़ाएगा।

फिर मैं अपने घरवालों के बारे सोचने लगता। क्या वे हमारे इस रूहानी रिश्ते को स्वीकार करेंगे? मेरे पिताजी का इन्कार में सिर हिलता प्रतीत होता। जब मैं और मेरी दोनों बहनें छोटे थे, पिता जी सिक्ख इतिहास के शहीदी साके सुनाते। वे मुसलमानों के अत्याचार को आँखों के समक्ष साकार कर देते थे। 'ज़ालिमों ने गुरु अर्जुन देव जी को गर्म तवे पर बिठाया। नीचे आग जलाई। सिर पर गर्म रेत डालने लगे परंतु हमारे सच्चे पातशाह तनिक भी विचलित नहीं हुए। हँस-हँस कर कुर्बान हो गए।' गुरु तेग बहादुर जी का शीश बलिदान करने और बंद-बंद कटवाने का इतिहास सुन कर हमारी आँखों में लहू उतर आता। मेरा क्रोध से खून खौल उठता। जी चाहता, कृपाण लेकर जाऊँ। मुसलमानों के टुकड़े-टुकड़े कर आऊँ। मेरी आँखों की लाली देख मेरी दादी मुझे शांत करती-'पुत्तर! ये तो मुगल बादशाहों के कारनामे थे। राज करने वाले हिंदू हों, सिक्ख हों, मुसलमान हों या गोरे क्या फर्क़ पड़ता है? ये तो लोगों पर जुल्म करते ही हैं। बेचारे आम मुसलमान तो हमारी तरह दु:ख भोगते थे। हमारी तरह गरीब थे। चौधरी करम इलाही और उसके बेटे भी तो मुसलमान थे। दंगों के समय अपनी जान पर खेल कर हमारे परिवार को बचाया। उन्हीं के कारण हम बहावलपुर से चब्बेवाल पहुँच पाए थे। बस एक।' पिताजी क्रोध से उठकर बाहर चले जाते थे। दादी माँ अपना व्याख्यान जारी रखतीं-'काका! जब गुरु गोबिंद सिंह जी को चमकौर साहब की जंग में से सिक्खों ने बच कर निकल जाने का हुक्म दे दिया, वे कई दिनों तक माछीवाड़े के जंगलों में विचरते रहे। वहाँ के दो शायर भाई थे-नबी खाँ और गनी खाँ। जब गुरु साहब को दुश्मन सेना तलाश रही थी, ये मुसलमान नौजवान उन्हें माछीवाड़े से सुरक्षित निकाल कर ले गए थे।'

पिता जी हमें मुगलों के अत्याचारों की कहानियाँ सुनाते रहते थे। दादी माँ साईं मियां मीर से लेकर साहबज़ादों के हक में नारा बुलंद करने वाले मलेरकोटले वाले नवाब शेर खान तक का इतिहास सुना देतीं। हम बच्चे दुविधा में पड़ जाते। यह दुविधा जब मैं कॉलेज गया, गोपी ने दूर की।

'मज़हब बने थे, अच्छी जीवन शिक्षा देने के लिए! ज़बर का मुकाबला करने के लिए। गरीब और मजलूम की रक्षा करने के लिए। और अब राज करने वाले सियासी दलों के पास मज़हब ही एक ऐसा हथियार है, जिसके ज़रिए वे लोगों को लड़वाते रहते हैं और खुद लोगों को लूटते रहते हैं।'

मेरे पिता जी ने हमें सिक्खों पर हुए अत्याचारों की इतनी कहानियाँ सुना रखीं थीं कि मैं कभी भी राबिया की तरफ मुँह न करता परंतु मैं तो पूरे का पूरा उसी का हो कर रह गया था। उसका तो मैं हो गया था परंतु पिताजी की तलवार और राबिया की अम्मी के खंजर मेरे पीछा न छोड़ते। मुझे उनके डरावने सपने आते। वे हाथों में तलवार और खंजर थामें खड़े थे। उनके एक तरफ मैं होता और दूसरी तरफ राबिया। वे हमारे बीच लकीर खींच देते, जैसे भारत और पाकिस्तान के बीच वाघे की लकीर। मैं दादी के पास पिता जी के विरुद्ध बोल पड़ता। एक दिन मेरे केश सँवारते हुए वे फफक पड़ीं -

'काका! तुम्हारे बुजुर्ग सुख-शांति से पश्चिमी पंजाब में रहते थे। फिर सैंतालीस के दौरान दंगे हुए। इन्सान, इन्सान का दुश्मन बन गया। आदमियों को मूली-गाजर की भाँति काट डाला गया। लड़ाकियों की इज़्ज़तें ऐसा तो रब किसी दुश्मन के साथ भी न होने दे।' दादी ने हाथ जोड़े।

'उस वक्त तुम्हारी जीतो बुआ युवा थी। उसकी शादी तय कर रखी थी। जंगल-पानी गई थी कि मुसलमान हमलावर उठा ले गए। मेरी बेटी को किसी ने नहीं बचाया। हम रोते-धोते खाली हाथ इधर आए थे।'

दादी ने आसमान जितनी लंबी आह भरी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली थी। उसने फिर कहना शुरू किया -
'लगभग डेढ़ साल बाद मेरी बेटी को भारतीय फौज ढूँढ़ लाई थी। वहाँ किसी ने ज़बरदस्ती रख छोड़ा था। सारा परिवार दरवाज़े पर खड़ा था, जब मिलिट्री वाले उसे घर लेकर आए थे। वह गर्भवती थी। सहमी हुई वह पेट को छुपाए जाए। फौजी अफ़सर ने उसे हमारे सामने किया। तुम्हारा दादा शर-ए-आम उसे अपनी बेटी मानने से मुकर गया। बोला, वह तो वहीं मर गई थी।' काफ़ी देर तक दादी से आगे बोला न गया। वह खड़ी हिचकियाँ लेती रहीं।

'पर मिलिट्री वाले जीतो को गाँव में छोड़ गए थे। बेटा, उनका तो रोज़ का काम था। लुटी-पिटी बेटियों को माता-पिता स्वीकार नहीं करते थे। वह तीन दिनों तक गाँव में घूमती रही थी। मैंने तुम्हारे दादा के सामने बहुत हाथ-पाँव जोड़े। बहुत रोई-कुरलाई। गुरुओं का वास्ता दिया परंतु तुम्हारा दादा टस से मस न हुआ। अचानक वह गाँव से गायब हो गई और चौथे दिन टीलों में उसकी लाश मिली। बस संस्कार कर दिया। तब कोई पूछता नहीं था। उन बरसों में लाखों अभागिनें ख़त्म हुई होंगी। किसी ने भी भोग नहीं डाला था।' दादी विलाप करने लगी। जीतो बुआ की व्यथा सुन कर मेरा भी गला रुँध

गया था। मैं भी रोने लगा। दादी मुझे चुप करवा रही थीं, मैं उन्हें। इसके बाद ही मुझे मुसलमानों के प्रति पिताजी का रवैया समझ आया था।

'फिर पुत्तर, तेरे बाप ने भी गिन-गिन कर बदले लिए।' दादी ने शायद व्यंग्य में कहा था।

'बदले पता किससे लिए? जो बेचारी मुसलमान लड़कियाँ तुम्हारी बुआ जैसी लाशें बनी हुई थीं, जिन्हें घर वालों ने अपनाने से इन्कार कर देना था। तेरे बाप ने कुछ हिंदू-सिक्खों को लेकर जत्था बना रखा था। यह जत्था लोगों की बहन-बेटियों को उठा लाता। उनके साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती करते फिर उन्हें मार देते या बेच देते।' यह सुन कर मैं ज़मीन में धँसता जाऊँ। दादी मेरी हालत भाँप गई थीं। उन्होंने बात निपटाई-

'देश के बँटवारे से जुड़ी दु:खद घटनाओं का शिकार सब से ज़्यादा औरत ही हुई है। बेशक वह किसी भी मज़हब से संबंधित थी। बेटा औरत ही हमेशा पिसती है।'

मेरी दादी बहुत सयानी थीं। वह बछौड़ी वाले स्वाधीनता संग्रामी बब्बर की बेटी थीं। उन्हें सियासत और इतिहास का थोड़ा ज्ञान था। जब दंगों के समय बेटियों-बहनों के साथ हुई अनहोनियों की कहानियाँ सुनाती तो सारी-सारी रात नींद न आती। मैं रात को अधसोया सा होता, बुआ मेरे पायताने खड़ी होती। मुझे डरावने सपने आते। अगली रात फिर उसका साया दिखता। वह टीलों की तरफ दौड़ पड़ती। मैं बुआ के डरावने सपनों से बचने के लिए जल्दी-जल्दी राबिया की तरफ जाने लगा। वहाँ यह डर बना रहता, राबिया की माँ बशीरा बेगम पता नहीं कब खंजर निकाल लाए। मैं कभी उससे डर कर उठ बैठता, कभी बुआ और पिता जी से।

फिर मुझे बशीरा बेगम से डर लगना बंद हो गया।

यह घटना अहमदपुर में घटी थी। हमारा दूसरा ठेका था वहाँ। घटना वाले दिन मैं इस ठेके पर ड्यूटी कर रहा था। दरअसल हमारे सारे इलाके में दिनों के हिसाब से बड़े गाँवों में हाट लगते थे। ये एक तरह के साप्ताहिक बाज़ार हुआ करते थे। इसमें दुकानदार शहरों से घोड़ों और बैलगाड़ियों पर रोज़मर्रा का सामान ढो कर लाते। किराने और मुनियारी वालों के अलग हाट होते। कपड़े वाले ग्राहकों को घेर-घेर कर कपड़ा बेचते थे। बकरे और मुर्गे काटने वालों की तरफ बहुत रौनक होती। इस रौनक के कारण शराब खूब बिकती थी। उस दिन पिता जी मुझे इस ठेके पर भेज देते। मैं और नौकर ग्राहकों को बोतले पकड़ा रहे थे। अचानक मीट वाली दुकानों की तरफ से हंगामा शुरू हो गया।

'ये मुहम्मद युनुस गौ माँस बेचता है, हमारा धर्म भ्रष्ट करता है। इनको आज सबक सिखाना है।' भीड़ में से कोई ऊँची-ऊँची आवाज़ में बोल रहा था। मुहम्मद युनुस और उसका साला इन्कार में सर हिला रहे थे और हाथ जोड़ कर खड़े थे। लोगों ने 'हर हर महादेव' के जयकारे लगाने शुरू कर दिए। मुहम्मद युनुस और उसका साला डर कर दौड़ पड़े। किसी के हाथ में लट्ठ, किसी के त्रिशूल, कृपाण जो भी मिला, लेकर पीछा करने लगे। वे अपने घर की तरफ भागे थे। लोगों ने उनके दरवाज़े के बाहर ही उन्हें गिरा लिया। जब तक हम पहुँचे भीड़ ने उनका काम तमाम कर दिया था। मुझे नौकर ने बताया था, युनुस कभी गौ माँस नहीं बेचता था। यह सिर्फ़ अफ़वाह थी। उनको मार कर भीड़ ने उनके घर को घेर लिया था। मैं बाँहें फैलाकर दरवाज़े के सामने खड़ा हो गया।

'इन पापियों का एक भी प्राणी नहीं बचना चाहिए।' कृपाण और त्रिशूल वाले हर हाल में भीतर प्रवेश करना चाहते थे। मैं दरवाज़े के सामने खड़े होकर उन्हें रोक रहा था परंतु भीड़ तो क़त्ल करने पर उतारू थी। मैंने अपने नौकर को आगे किया।

'मैं भी हिंदू हूँ! ये लोग ऐसा अनिष्ट नहीं करते।'

कुछ लोग पीछे हट गए। कुछ तीखे और जोशीले नौजवान आगे बढ़े, उन्होंने घर को आग लगा दी। वे आग लगा कर जयकारे लगाते हुए भाग गए। आग ने घर को लपेटे में ले लिया था। मैं भीतर गया। सारे सदस्यों को सुरक्षित निकाला और पड़ोसियों के घर पहुँचाया। मेरा नौकर तथा अन्य लोग बाल्टियों से आग पर पानी फेंक रहे थे। उन्होंने जल्दी ही आग पर काबू पा लिया। मैं जब युनुस के परिवार को छुपा कर बाहर निकला तो कुछ लोग मेरी दाद दे रहे थे। बशीरा बेगम भी उनमें शामिल थीं। वे आगे बढ़ीं। मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेरा और आलिंगन में ले लिया। उस रात मैं और राबिया फिर मिले। मैं रात को ठेके से सीधे उसके घर चला गया था। इधर राबिया मेरे बालों में हाथ फिरा रही थी। मैं उसके प्यार में मदहोश पड़ा था। उधर ठेके के पास से राजपूतों की बारात गुज़री। बेशक वे शराब से टुन्न थे परंतु ठेका देख कर उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया। नौकर जाग गया परंतु वह शराब कैसे दे? चाबियाँ मेरे पास थीं। वह तो आँगन वाले कमरे में सो रहा था।

मैं कौन सा उसे बता कर आया था। जब बाराती पीछे ही पड़ गए, तो वह घर चला आया। नौकर मुझे घर पर न पा कर हैरान-परेशान था और पिता जी मेरे ठेके पर न होने के कारण। वे चाबियों का दूसरा गुच्छा लेकर आए। बारातियों को बोतलें दे कर खुद भी वहीं सो गए।

जब सुबह मुर्गे की बाँग पर मैं ठेके पर पहुँचा तो पिता जी को ठेके पर देख मेरे होश-ओ-हवास उड़ गए।

'काका, अवतार सिंह! अब तुम जवान हो गए हो। मैं कुछ नहीं कहूँगा। सच-सच बता दो, कहाँ से आ रहे हो इस समय?' पिता जी की आँखें दहक रहीं थीं। मैंने अपनी और राबिया की सारी प्रेम कहानी पिता जी को सुना दी और अपना फैसला भी-'पिता जी वह मेरे लिए बनी है और मैं उसके लिए। मैं उसी से शादी करूँगा।'

'बेटा! वे लोग हमारा बिस्मिल्ला पढ़ देंगे। सारा बिजनेस तबाह हो जाएगा। तुम्हारी माँ, दादी, तुम्हारी बहनें दर-दर ठोकरें खाती फिरेंगी।' पिता जी गुस्से से भरे पड़े थे। 'पिता जी! कुछ नहीं होगा। मैं धर्म बदल लूँगा।'

'वाह बेटा, वाह! बलिहारी जाऊँ तुम्हारे। औरत की ख़ातिर धर्म बदले लोगे? हमारे गुरुओं ने धर्म की ख़ातिर अपने परिवार न्योछावर कर दिए। और तुम सिक्खी से बेमुख हो जाओगे?' पिताजी क्रोधित हो गए थे।

'पिता जी, तो फिर राबिया सिक्ख धर्म अपना लेगी।' मैंने राबिया की तरफ से हामी भरी।

'औरत के धर्म परिवर्तन से क्या होता है? बात तो आदमी की है। हमारे पिता कहा करते थे-औरत लाख धर्म बदल ले। वह अपनी जड़ों से कभी नहीं टूटती।' पिता जी अपने इस प्रवचन पर अड़ ही गए थे। उन्होंने मेरा ठेके पर जाना बंद कर दिया। घर से बाहर निकलने पर पाबंदी लगा दी थी। दादी, माँ और बहनें मुझे समझाती रहती थीं। मेरा ठेके पर जाने को मन करता परंतु वे मुझे जाने न देतीं। मैं अपनी राबिया के बगैर अधूरा था।

जब मुझे बंदी बने दो हफ्ते हो गए, राबिया की अम्मी हमारे घर आईं। लगता है बात गढ़ी तक भी पहुँच गई थी। मुझे लगा, अब पठान राबिया को मार डालेंगे या मुझे। मैंने मन ही मन मरने के लिए तैयारी कर ली थी। वह सीधे मेरी दादी के पास आईं। काफ़ी देर तक गिट-पिट करती रहीं। जाते समय बोलीं -
'अवतार मेरे साथ हमारे घर चलो। मुझे तुमसे कोई खसूसी बात करनी है।' मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था। मैं क्या करूँ? उनके घर जाऊँ या नहीं? दादी माँ ने उनको न तो हाँ और न ही न कही। सिर्फ़ मुझसे कहा-'बेटा तुम वहाँ मत जाना। बेगानों का क्या भरोसा? कोई अनहोनी न हो जाए।'

मुझे लग रहा था, वे घर ले जा कर शिकार की भाँति टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। पठानों के लिए आदमी झटकाना मामूली बात थी। क्या पता, उनके दिल में क्या था? बशीरा आई थीं। यहाँ भी बात कर सकती थीं। क्यों नहीं की? बस मुझे मारना होगा? वे तो मुझे घर आ कर भी मार सकते थे। हो सकता है, हम दोनों को इकट्ठे मारना हो। पठानों द्वारा मुझे और राबिया को मारने के अक्सर सपने आते रहते थे। मुझे लगा, आज यह सपना नहीं रहेगा। हक़ीक़त में बदल जाएगा। मैंने न दादी जी की सुनी, न माँ की और न ही बहनों की। उन्होंने मुझे बहुत रोका। पिता जी का डर भी दिखाया परंतु मैं नहीं माना। मुझे बाहर निकलते देख, दादी माँ ने बाबा नानक की तस्वीर की तरफ हाथ जोड़े थे- 'मेहरा वाले, बच्चे के सिर पर हाथ रखना।'

मैं राबिया के घर की तरफ चल दिया। उस दिन भी भरी दोपहरी थी। मेरे पास से सी.आर.पी.एफ. की गाड़ियाँ गुज़रीं। उन्होंने आस-पास की तरफ राइफलें तान रखी थीं। सरकार ने देश में एमरजेंसी लगा दी थी। किसी को भी गोली मारी जा सकती थी। किसी को भी जेल में डाला जा सकता था। इन्क़लाबी कारिंदों के बलिदान के दिन आ गए थे। दिन दहाड़े मुझे पठान ही सी.आर.पी. एफ. वाले प्रतीत होने लगे। 'ससुराल में ही मारेंगे।' देश में गोपी जैसे इन्कलाबी कारिंदे अपने इन्कलाब वाले मकसद के लिए कुर्बान हो गए थे।

मैंने भी राबिया की मुहब्बत की ख़ातिर खुद को मर मिटने के लिए तैयार किया। तेज़ कदमों से उनके घर की तरफ चला जा रहा था। ज्यों ही उनके घर के भीतर प्रवेश किया, मैं मकान के कोनों की तरफ देखने लगा। किसी कोने में भाला पड़ा था और किसी कोने में कुल्हाड़ी। दीवारों पर कृपाणें और राइफलें टँगी थीं। पहले कभी इन हथियारों की तरफ ध्यान नहीं गया था। तब मुझे वहाँ सिर्फ़ राबिया ही नज़र आती थी। परंतु उस दिन। मैंने सोचा, गोली नहीं मारेंगे। कृपाण या कुल्हाड़ी से सिर काट देंगे। राबिया की अम्मी ने मेरा सिर सहलाया और चारपाई पर बैठने का इशारा किया। मैं हक्का-बक्का रह गया। राबिया दूध का गिलास ले आई। मुझे लगा, बकरे की बलि से पहले उसे खिलाया-पिलाया जा रहा है। मुझे ज़्यादा गुस्सा राबिया पर आया। कितनी दगाबाज़ निकली। बुरे वक्त में यह भी अपनी माँ के साथ मिल गई। साली कमीनी साहिबा बनेगी। दिल में तूफान उठा हुआ था। इतना बड़ा धोखा? पिता जी ठीक कहते थे-मुसलमानों पर यकीन नहीं करना चाहिए। दूध का घूँट भरने लगा था तो रुक गया। कहीं दूध में ही ज़हर न डाला हो। औरत जात का क्या भरोसा? ये शब्द मेरे मुँह में ही थे। बशीरा फुर्ती से कमरे के भीतर गई। मुझे लगा, मेरा काम तमाम करने वाली है परंतु वह कपड़े की मटमैली सी थैली ले आई। उसके दूसरे हाथ में बताशे थे।

'बेटा! तुम राबिया से शादी कर लो।' पीढ़ी पर बैठते ही कहा। राबिया की अम्मी की बात सुन कर मेरा मुँह खुले का खुला रह गया। उनकी बात मुझे हज़म नहीं हुई।

'हम सिक्ख हैं और आप मुसलमान। पिता जी कहते हैं, हो नहीं सकता।' मैंने डरते-डरते कहा।

'मुहब्बत में बहुत कुछ कुर्बान करना पड़ता है।' उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा था। 'मेरे पिता जी नहीं मानने वाले। वे कट्टर सिक्ख हैं।'

'तो तुम राबिया को लेकर भाग जाओ। तुम्हें तो पता है कि तुम्हारे बिना मेरी बच्ची का जीना आसा नहीं है।' वे भड़क उठीं थीं।

'आपके लोग हमें नहीं बख्शेंगे। खूनो-खून कर देंगे। हमारा सारा कारोबार उजाड़ देंगे।' पता नहीं क्यों मैं पिताजी की भाषा बोलने लगा। 'मेरी बच्ची को तुम किसी तरह भी महफूज़ कर लो। ये मेरी प्यारी बच्ची है। अगर ये मर गई तो मैं इसके गम में मर जाऊँगी। मैं औरत हो कर एक औरत के जज़्बातों को खूब समझती हूँ। तुम नहीं समझोगे। मर्द हो न!'

वे रोने लगीं। राबिया दौड़ कर उनके पास आई। वह उन्हें चुप करवाने लगी। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि अम्मी शादी की पेश-कश करेंगी। वे सिसकियाँ ले-ले कर रो रहीं थीं। राबिया दुपट्टे से उनके आँसू पोंछते जा रही थी, साथ ही पानी पिला रही थी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ? मैं तो मरने के लिए आया था। मैं पागलों की भाँति न में सिर हिलाए जा रहा था। वे पीढ़ी से उठीं। मेरे हाथ पर हाथ रख कर धीमे से बोली-'बेटा! मैं बशीरा बेगम नहीं हूँ। बख्शीश कौर हूँ।' मेरे लिए अचंभे वाली बात थी। राबिया सहजता से बैठी रही, जैसे उसे सब कुछ पहले ही पता हो। अम्मी धरती पर नज़रें टिकाए बताने लगीं -

'जब सैंतालीस के दंगे हुए, हमारा काफ़िला बहावलपुर के चक तीन सौ उन्नीस से बीकानेर के लिए चला था। हमारे ज़्यादातर सगे वहीं बैठे थे। अभी किला अब्बास ही पहुँचे थे कि काफिले पर हमला हो गया। मिनटों में ही धरती लहू-लुहान हो गई। औरतों ने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। मेरे सामने ही मेरा सारा परिवार क़त्ल कर दिया। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। इसी अफ़रा-तफरी में मुझे कोई उठा कर ले गया। पता नहीं कितने लोगों ने मेरे साथ ज़्यादती की। फिर मुझ अधमरी को सड़क पर ही फेंक गए। मुझे तो रब ने भी नहीं उठाया।'

मैं और राबिया सिसकने लगे। मेरी आँखों के सामने टीलों में ठोकरे खातीं जीतो बुआ की लाश थी। बख्शीश कौर की आबरू लूटी जा रही थी। दादी के बहते आँसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। औरतों की छातियाँ काटी जा रही थीं। उनकी सिसकियाँ थीं, आहें थीं। वे लुट रही थीं और बख्शीश कौर . . .
अम्मी की आँखों में आँसू थे। लाल-लाल डोरे थे। अठ्ठाइस साल पहले घटित यह घटना कितनी भयानक होगी? एक औरत के आँसू अंगारे बन गए थे। मैंने अम्मी के कंधों पर हाथ रखा था। वे आह भर कर बोलीं -'जब मुझे होश आई, मैं राबिया के अब्बा के कब्ज़े में थी। तब ये उधर कहीं मेवे खरीदने गए हुए थे।'

'अम्मी, अब्बा जान भी हमलावरों के साथ थे?' मेरी उत्सुकता अम्मी का दु:ख जानने में थी।

'रब ही जाने। कुछ कह नहीं सकती। मुझे तो यह भी नहीं पता, हमारा निकाह भी हुआ था या नहीं। उस वक्त सारा परिवार एक ही बात कहता था-अल्लाह ताला ने छप्पर फाड़ कर दी है हूर परी।' उन्होंने आँखें पोंछी और हमसे मुखातिब होते हुए कहा-

'अगर मुझे बख्शीश कौर से बशीरा बेगम बनाया जा सकता है तो यह राबिया से रविदीप कौर नहीं बन सकती? तुम इससे शादी कर लो। मेरी जड़ फिर से अपने धर्म में लग जाए।' उन्होंने थैली में से भूरा हो गया काले रंग का धागा निकाला। काले धागे में डली दो छोटी कृपाणें और 'बुगतियाँ' राबिया के गले में डाल दीं और बताशे मेरे हाथ पर रख दिए।

नीलम शर्मा 'अंशु'
फ्लैट -बी/जी, टाइप-4, टावर-2,
किदवई नगर, पूर्व दिल्ली-110023
मो.-9830293585

अजमेर सिद्धू
द्वारा जंडे हेयर ड्रेसर्स,
चंडीगढ़ रोड, नवांशहर-144514 (पंजाब)
मो.-9463063990

उत्सव मृत्यु का

– मंजुश्री

जन्म स्थान – उरई (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड.।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी सहित अनेक सम्मान।

काशी की यह मेरी तीसरी यात्रा है। जितनी बार यहाँ आता हूँ चमत्कृत हर बार चकित हुए बिना नहीं रह पाता। वैसे तो हर शहर की अपनी कुछ न कुछ खासियत होती है पर काशी एकदम निराली है। हर बार शहर का एक नया रूप दिखता है एक नया रहस्य उजागर होता है। पता नहीं ऐसा क्या है इस नगरी में जो खींचता है मुझे अपनी ओर। पाँच साल पहले जब पहली दफा बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी में आयोजित दो दिनों की एक कॉन्फ्रेंस में आया था तब काशी विश्वनाथ मंदिर के दर्शन किए और बनारस की मशहूर गंगा आरती देखी इससे ज्यादा समय ही नहीं था। उसके बाद दो साल पहले मैं, विनय, शंभु, विनीत, और दिनेश फिर काशी आए। दरअसल विनय का काफी बड़ा सा पुश्तैनी घर जिला जौनपुर के जगनंदनपुर में है। गाँव की उनकी काफी जमीन–जायदाद तो बिक गई है, फिर भी कुछ खेत अब भी रखे हैं जो बटाई पर दे दिए जाते हैं और कुछ आम के बगीचे भी हैं। अब तो उसके परिवार के ज्यादातर सदस्य शहरों में और कुछ विदेशों में बस गए हैं। गाँव में वहाँ उसके ताऊ जी और दादी एक हाउसकीपर परिवार के साथ वहाँ रहते हैं जो घर की देखरेख करते हैं। बीच–बीच में घर के बाकी लोग आते–जाते रहते हैं। विनय के बार–बार जोर देने पर हम लोगों का गाँव घूमने का कार्यक्रम बना था।

गाँव का उसका घर काफी बड़ा है। मकान के भीतरी हिस्से में बीचोंबीच बहुत बड़ा सा आँगन है जिसमें खूब सारे गुलाब, गुड़हल और तुलसी के पौधे लगे हैं। किचन के बाहर बरामदे में एक तखत भी पड़ा था जिस पर बैठी दादी सब काम–काज देखती थीं। ये जरूर है कि किचन और बाथरूम में सभी सुविधाएँ हो गई हैं। आँगन में ही एक तरफ कुँआ भी था, एक हैंड पंप भी लगा था। बाहर के सात कमरे लाइन से बने थे जिनके दरवाजे बाहर बड़े से बरामदे में खुलते थे, उसके सामने बड़ा सा लान था जिसके गेट के बाहर एक छोटा सा शिव मंदिर है जिसकी देख–रेख भी ताऊ जी ही करते हैं। उसने बताया कि उसके विनय के दादा जी गाँव के बच्चों के लिए स्कूल खोलना चाहते थे जो उनके जीवित रहते लेकिन वह हो नहीं पाया। बाहर की बैठक के पास वाले एक कमरे में धर्मार्थ होम्योपैथिक डिस्पेंसरी चलती है और एक–दूसरे कमरे में छोटी सी लायब्रेरी जिसमें कुछ आध्यात्मिक और बच्चों की किताबें रखी थीं। किताबें लेने के बहाने बच्चों के आने से घर गुलजार रहता है साथ ही गाँव की औरतें भी दादी के पास आती–जाती रहती हैं शाम को गाँव के कुछ बड़े–बूढ़े लोग ताऊ जी के पास डिस्पेंसरी में आ जाते हैं तो उनका भी मन लगा रहता है। दादी अपना घर, गाँव छोड़कर कहीं और नहीं रहना चाहतीं थीं।

'हम न जाब कहुं हिने काशी मा मरब। जे के जाय का है जाव।'

ये उनका ब्रह्मास्त्र था जानती थीं कि कोई उन्हें अकेला छोड़कर नहीं जाएगा। बहरहाल हम सबके लिए गाँव की वह यात्रा बड़ी यादगार रही। इतना खुला और हरा–भरा वातावरण शहरों में तो दिखाई पड़ता नहीं, वहाँ तो सुबह उठते ही प्रदूषित हवा का कोहरा सा छाया रहता है। स्वच्छ नीले आसमान में उगते सूरज का लाल–पीला रंग और उसके कारण रक्तवर्णी बादलों के टुकड़े। सुहाना मौसम और वसंत के आने की सूचना देते खेतों में खिले सरसों के खुशबू बिखेरते फूल मानो धरती ने हरी–पीली चूनर पहन ली हो। चारों ओर रंग ही रंग, यह नजारा तो हमारे लिए अनोखा था। सुबह होने से पहले ही हम लोग खेतों की ओर निकल जाते गाँव के दूसरे किनारे पर बने तालाब के किनारे बैठ कर पानी में छलाँग लगाते बच्चे, लंबी दूरी नापने के लिए तैयारी में चहचहाते पक्षी, पेड़–पौधे, प्रकृति का अनछुआ सौंदर्य देख कर महसूस हुआ कि शहर की भागमभाग में छोटा–छोटा कितना कुछ छूटता जा रहा है वहाँ तो सूरज कब उगा और कब डूब गया देखने का समय ही नहीं मिलता है। सब कुछ साधारण पर असाधारण सा।

वहाँ एक हफ्ते रहने के बाद बनारस फिर से घूमे क्योंकि वहीं से प्लेन लेना था। तब हमने रामनगर किला, तुलसीमानस मंदिर,

म्यूजियम, भारतमाता मंदिर, आलमगीर मस्जिद और भी बहुत सी जगहे घूमीं और काशी की मशहूर कचौड़ी जलेबी भी खाई। काशी विश्वनाथ दर्शन के लिए हमने इस बार उनके ऑफिस टिकट ले लिए थे तो लंबी लाइन में नहीं खड़ा होना पड़ा, वहीं से हाथों में बैंड पहना कर एक आदमी हम लोगों को एक-दूसरे गेट से अंदर ले गया। अलग से दर्शन की सुविधा की बात भी हमें लाइन में खड़े एक आदमी ने ही बताई थी। दशाश्वमेध घाट की भव्य, गंगा आरती के अलावा इस बार हमने असी घाट से एक नाव लेकर सभी घाटों के दर्शन भी किए नाव चलाने वाला व्यक्ति हर घाट विशेष रूप से असी घाट, दशाश्वमेध घाट और मणिकर्णिका घाट के बारे में विस्तार से बताता जा रहा था। उसके बाद सारनाथ गए। सारनाथ में बौद्ध धर्म की जानकारी मिली। यहाँ बौद्ध धर्म को मानने वाले बहुत सारे विदेशी लोग आते हैं। मुख्य धार्मिक स्तूप और आस-पास बिखरे तमाम भग्नावशेष बहुत अच्छी तरह से सहेजे गए देखकर मन प्रसन्न हो गया।

इस बार की तीसरी यात्रा बिल्कुल अलग थी। विनय की दादी काफी दिनों से बीमार चल रही थीं। दो दिन पहले उनकी मृत्यु बनारस के अस्पताल में हो गई थी। जवाहर नगर कॉलोनी में विनय के छोटे चाचा रहते हैं। हम सब उसी सिलसिले में आए थे। उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार मणिकर्णिका घाट पर उनका दाह संस्कार होना था, वैसे भी अधिकांश हिंदुओं की इच्छा होती है कि उनकी मृत्यु काशी में हो तो बहुत अच्छा हो। बहुत से वृद्ध लोग शहर में बने मुक्ति धामों में मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए रहते हैं, जिनकी अगर मृत्यु यहाँ नहीं होती है, उनकी कामना होती है कि कम से कम उनकी राख को काशी में गंगा में प्रवाहित किया जाए तो उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। ऐसा कहा जाता है कि '**काश्यां मरणान मुक्तिः**'

वो काशी जहाँ सारे विश्व के रचयिता स्वामी शिव स्वयं निवास करते हैं मोक्षधाम है। इसीलिए हजारों साल से कभी न समाप्त होने वाली पुण्य नगरी काशी विश्वनाथ कहलाती है, ऐसा मानना है कि मोक्ष यहीं है। काशी को (सिटी ऑफ लाइट, द ल्यूमनस वन) यूँ ही नहीं कहा जाता है उसके पीछे बहुत सी मान्यताएँ हैं, इसीलिए विनय की दादी काशी छोड़कर कहीं और नहीं जाना चाहती थीं।

सुबह ग्यारह बजे के करीब दादी जी का पार्थिव शरीर अस्पताल की मॉर्चुअरी से आ गया था। घर पर सारे संस्कार किए गए। गोदोलिया चौक से जाने वाली मैदागिन रोड पर बने मणिकर्णिका घाट के प्रवेश द्वार तक तो गाड़ी से ले जाया गया। इस सड़क पर बहुत भीड़ थी, ऐसा लग रहा था कि पूरा शहर इस गली में उतर आया हो। उसके आगे घाट तक सँकरी गलियों में काफी दूर तक पैदल ही जाना था। मेरे लिए इन सँकरी गलियों की यात्रा और उनके दोनों तरफ की कपड़ों, खाने-पीने की दुकानें, घर, गलियों में घूमती गाएँ, बचते-बचाते मोटरसाइकिलें चलाते लोग एक अलग ही कहानी कह रहे थे। राम-नाम सत्य है पर जीवन का सत्य तो यहीं इन गलियों में है जहाँ व्यक्ति को अंतिम यात्रा पर ले जाने वाले लोगों की भूख-प्यास का इंतजाम भी उसी तरह दिखा जैसे किसी पर्यटक स्थान पर जा रहे हों। इन गलियों में चारों तरफ भारी भीड़-भाड़। शहर के भीतर इन सँकरी गलियों का जाल सा बिछा हुआ है। यह सब देख कर मन में न जाने क्या कुछ चल रहा था तमाम प्रश्न जवाब माँगने लगे। कंधे पर अर्थी उठाए राम नाम सत्य बोलते हुए जैसे जैसे घाट निकट आ रहा था। दृश्य एकदम बदलने लगा। दोनों तरफ लकड़ी के बड़े ऊँचे-ऊँचे ढेर, मोटरसाइकिलें, चारों ओर नीचे और ऊपर छत पर धू-धू जलती लाशें, तारकेश्वर मंदिर, सैकड़ों लोगों की भीड़, शोर-शराबा, छत से लेकर गंगा में समाती सीढ़ियाँ, बाँस, कपड़ों के ढेर, फूल-पत्तियाँ देख कर हम आश्चर्यचकित रह गए।

इतनी बड़ी संख्या में एकसाथ जलती लाशें हमने कभी नहीं देखी थीं। नाव से देखने पर घाट पर जलती लाशें, काली पड़ी सीढ़ियाँ और भीड़भाड़ जरूर दिखाई देती है पर उसकी विशालता यहाँ पर आकर ही मालूम पड़ी। सब कुछ यंत्रवत दादी को बाँस की टिकटी के साथ ही गंगा में डुबकी लगवाई गई लेकिन कोई चूल्हा खाली न होने के कारण तीन घंटे इंतजार करना पड़ा। दाह-संस्कार के बाद लोगों ने वहीं पास में सिंधिया घाट पर स्नान किया। घर आते-आते शाम हो गई थी। घर वापस आने के बाद भी आँखों के सामने बार-बार मणिकर्णिका घाट का दृश्य आ जाता। दूसरे दिन विनय और उसके चाचा, ताऊ जी के साथ मैं भी दादी की राख को गंगा में विसर्जित करने के लिए घाट पर चला आया। आँखों के सामने से घाट का दृश्य हटता ही नहीं था। घाट के इतिहास के बारे में कुछ तो जानता था लेकिन मैं वहाँ कुछ देर बिताकर जलती चिताओं के बीच काम करते लोगों, बच्चों और अघोरियों के बारे में जानना चाह रहा था। उन लोगों के जाने के बाद मैं वहीं मंदिर की सीढ़ियों पर बैठ कर चारों तरफ की गतिविधियों को देखने लगा। सोच रहा था कि इसके आगे और क्या है। क्या है इस गहरी आस्था के पीछे काफी देर तक बैठा जिंदगी के बारे में न जाने क्या-क्या सोचता रहा। किसी के रहने न रहने से जिंदगी के बाकी काम बंद नहीं हो जाते। संसार यूँ ही चलता रहता है, मृत्यु के बीच ही जिंदगी है। कुछ लड़के गंगा में डुबकियाँ लगा रहे थे तो कुछ बच्चे जलती चिताओं के बगल में ही ठंडी पड़ी चिताओं की राख को बड़ी-बड़ी छलनियों से छान रहे थे। जगह-जगह अघोरी अपने में मस्त, कोई नाच रहा है तो कोई भोलेनाथ का नाम ले लेकर डमरू बजा रहा है। थोड़ी दूर पर ही उलझी हुई जटाओं का ऊँचा सा जूड़ा बनाए, गले में बहुत सी कंठी

मालाओं के साथ हड्डियों की माला पहने सारे शरीर पर राख उछालकर लपेटते चिलम पीते एक अघोरी बाबा दिखाई दिए। चारों तरफ अलग ही क्रिया कलाप चल रहे थे। कई और बाबा गाँजे का कश लगा रहे थे एक अलग ही दुनिया जहाँ दुख के साथ ही मोक्ष पाने वाले के लिए खुशी भी थी। मुझे अपनी ओर देख कर बाबाजी मुस्कुराए तो मैं उनके पास आ गया।

मेरी ओर चिलम बढ़ाते हुए बोले, 'क्या देख रहे हो बच्चा! कश लगाओगे!'

'नहीं मैं यह देख रहा था कि एक ओर तो मृतक के परिजन दुखी हैं चारों ओर चिताएँ जल रही हैं, दूसरी ओर आप कश लगाते हुए राख उछाल-उछाल कर होली जैसे खेल रहे हैं।'

पास ही सीढ़ी की ओर इशारा करते हुए बोले, 'बैठो-बैठो, चिताएँ तो बेटा यहाँ अहर्निश जलती रहती हैं, इनकी आग कभी बुझती नहीं। भोलेनाथ का शाप है। ऐसा कहते हैं कि आदिशक्ति ने यहीं अपने शरीर को आग के हवाले किया था।'

'रात में भी. . .'

'नहीं, यही चिताएँ रात भर जलती रहती हैं, पौ फटते ही नया सिलसिला फिर शुरू हो जाता है। ऐसा मानना है कि सूर्य सृष्टि का स्रोत है और सूर्य की किरणें आत्मा को स्वर्ग तक ले जाती हैं इसीलिए लाश को दिन में ही जलाया जाता है।'

'देखिए चारों ओर शोक संतप्त लोगों को, क्या कहेंगे आप इन्हें। मुझे तो बड़ा अटपटा लग रहा है।'

'ठीक है शोक तो होगा ही इतने दिनों का साथ जो था, लेकिन तुम ही सोचो, शोक काहे का . . . किस बात का दुख बताओ तो. . . जीवन और मृत्यु तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हम जन्म पर खुशी और मृत्यु पर दुख मनाते हैं। सच तो यह है कि जन्म के साथ ही मृत्यु लिखी होती है उसी समय से आयु का एक-एक दिन घटता जाता है। मृत्यु तो अटल सत्य है।'

'सही कहा आपने पर प्रियजन के खोने का दुख तो होगा ही।' मैंने कहा।

'बेटा दुख प्रिय के खोने का तो है पर ज्यादा दुख उसके साथ बने संबंधों और उसके बाद अपने जीवन में आने वाली परेशानियों के लिए होता है। इसी को तो माया मोह कहते हैं, लेकिन सोचो तो मृत्यु होते ही उसी प्रिय की नाक और मुँह में रुई ठूँस कर तुरंत जमीन पर लिटा देते हैं और वह शरीर न हो कर मिट्टी कहलाने लगता है। वही लोग उस मिट्टी से डरने लगते हैं। बेटा मृत्यु जीवन का अंत नहीं बल्कि सुंदरतम शिखर है। हम इसी बात का तो जश्न मनाते हैं। कई बार तो ढोल-बजाते, नाचते-गाते लोग लाश लाते हैं। अधिकतर धर्मों में मृत्यु भोज करते हैं, हमारे यहाँ भी तो गाँव भर का भोज होता है। लगभग सभी धर्मों में मृत्यु उत्सव धर्मी है। फ्यूनरल पार्टी होती है। इसलिए कि अब जीवन में आगे बढ़ना है।' दोनों हाथ से चिलम को पकड़कर एक लंबा कश लगाते हुए बोले।

मैंने देखा कि एक चिता के पास बहुत से लोग खड़े कुछ निर्देश दे रहे थे और कुछ लोग एक-दूसरे ढेर से लकड़ियाँ ला रहे थे। उस अर्थी पर रेशमी शाल और बहुत सी फूल मालाएँ चढ़ी थीं।

बाबा जी बोले, 'देख रहे हो उधर चंदन की लकड़ी पर चिता को जलाने का इंतजाम हो रहा है, कोई बड़ा आदमी होगा। जलने के बाद सब राख ही होना है, लाश चाहे चंदन की लकड़ी पर जले या साधारण लकड़ी पर और राख इसी गंगा में प्रवाहित होकर साथ ही बह जाएगी। यहाँ कहाँ अमीर-गरीब का भेद, यह सब यहीं रह जाना है। आदमी के बनाए चोचले। यह देखकर तुम्हें क्या ऐसा नहीं लगता कि सारी जिंदगी हम न जाने कितनी छोटी-छोटी चीजों के लिए लड़ते रहते हैं सब तो यहीं राख हो जाना है, हमारा गुरूर भी यहाँ आकर सब एक हो जाते हैं। जिस जिस्म की हम इतनी देखभाल करते हैं, तमाम शृंगार करते हैं, रख-रखाव करते हैं, वह क्या है बस एक मुट्ठी राख ही तो. . . यही जीवन का सच है।'

'आपके अनुसार तो आदमी को जीवन न जी कर बस अंत के बारे में ही सोचते रहना चाहिए। अच्छा एक बात और बताइए आप लोग ऐसा वेश क्यों बनाए रखते हैं। ये राख, ये मुंड माला' मैं चारों ओर नजरें घुमाते हुए उनकी बातें सुन रहा था।

'नहीं बच्चा ऐसा नहीं है कि हमेशा अंत के विषय में सोचते रहना चाहिए, बस बहुत ज्यादा माया-मोह में नहीं पड़ना चाहिए, हालाँकि यह बहुत कठिन है। और इस वेश के बारे में ये तो पता होगा कि शिव जी के गण कौन थे तो बस हम भोले भंडारी के गण हैं, उनके भक्त हैं, हम आत्माओं को जगाते हैं, उनसे बातें करते हैं।' वे बोले थोड़ी दूर पर कुछ लड़के छलनियों में राख छान रहे थे, कुछ बड़े लड़के बार-बार गंगा में डुबकियाँ लगा कर कुछ बटोर रहे थे।

'ये लोग क्या कर रहे हैं और बच्चों को यहाँ डर नहीं लगता इन्हें

यहाँ आने से कोई रोकता नहीं?'

वे फिर एक कश लगाते हुए बोले, 'दरअसल हिंदु धर्म में मृतक के मुख में सोना रखने की प्रथा है, राख में वही ढूँढ़ रहे हैं और गंगा में लोग चढ़ावा चढ़ाते हैं, पैसे फेंकते हैं, वही बाहर निकाल रहे हैं। यही जीवन का सच है बेटा। मृत्यु के बीच जिंदगी जीने की जद्दोदहद। लाश के ऊपर पड़े कपड़े, शाल पहनने के काम आते हैं। बाँस तो जल जाते हैं फिर भी जो बच जाते हैं वे टोकरियाँ, पतंगें बनाने के काम आते हैं। सोचो तो सही लगातार जलती इतनी लाशों के साथ कितनी बड़ी मात्रा में सामान आता है, कितना जलाया जाएगा। मरने वाला तो मर गया पर इनका जीवनयापन तो मरने वालों पर ही निर्भर है। ये डोम बच्चे हैं। यहीं रहते हैं पास में अपने परिवार के साथ, इन्हें डर नहीं लगता यही देखकर बड़े होते हैं, चिता की लकड़ियों को ले जाकर उन पर खाना बनाया जाता है। ये इनके रोज के जीवन का हिस्सा है।'

'क्या! चिता की लकड़ियों पर खाना। डोम बच्चे!

'हाँ यहाँ केवल कालू डोम राजा के वंशज ही लाश जलाने का काम करते हैं। कोई और लाशों को हाथ नहीं लगा सकता। ये वही डोम राजा हैं जिन्होंने राजा हरिश्चंद्र को खरीदा था। लाश जलाने के लिए टैक्स के अलावा पैसे लिए जाते हैं। यह परंपरा उसी समय से चली आ रही है। राजा हरिश्चंद्र की कहानी तो पढ़ी होगी।'

गंगा में तीन-चार लाशों को टिकटी सहित डुबकी लगवाकर सीढ़ियों पर रखा जा रहा था। लोग बारी आने का इंतजार कर रहे थे।

वे बोले, 'गंगा में डुबकी लगाने से मृत व्यक्ति के सब पाप धुल गए हैं। अब जलने के बाद आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा में लीन हो जाएगी।'
'क्या सोच रहे हो। ये काशी सबसे सुंदर, प्राचीन, कभी न नष्ट होने वाली, मनुष्य में ज्ञान की ज्योति जगाने वाली नगरी है। ज्योति उस परम सत्य की जो हम देखकर भी नहीं देखते वो यहीं जागृत होती है। काशी विराग की नगरी है, सच्चाई के दर्शन कराती है, जहाँ भोलेनाथ निवास करते हैं।'

वे अचानक खड़े होकर चिमटा बजाते बम-बम भोले, बम-बम भोले कह कर विचित्र तरह से नाचने लगे, भीड़ जमा होने लगी। मैं हैरान था कि मेरे जैसी सोच रखने वाला कैसे इन सब बातों के चक्कर में पड़ गया, लेकिन सच कहूँ तो चक्कर में पड़ा ही नहीं बल्कि घाट पर चिताओं की लपटों के बीच आस्था की भीड़ को देखकर अविश्वास करने जैसा कुछ नहीं लग रहा था। पता नहीं क्या था इस चुंबकीय वातावरण में मुझे तो बल्कि बाबा जी की बातों में सच्चाई लग रही थी। मैंने कभी इतनी गहराई से जीवन मृत्यु के चक्र के बारे में सोचा ही नहीं था। सच ही तो जीवन और मृत्यु के चक्र को एक नई दृष्टि से देख रहा था। मैं क्या कोई भी इसके बारे में नहीं सोचता है मनुष्य भविष्य के सुनहरे सपने सजाता है। उन सपनों को पूरा करने के लिए रात-दिन प्रयासशील रहता है। वह तो ऐसी जगह आने पर ही विचार उठते हैं। मन भटकने लगता है। लेकिन यह भी सच है कि यहाँ से जाने के बाद आदमी फिर रोज के ढर्रे में लग जाता है।

बात करते-करते बीच में बाबा जी फिर जोर से बम-बम भोले बोलते हुए गुलाल की तरह राख उछालने लगे और मेरी ओर मुट्ठी भर राख बढ़ाते हुए अपने मुँह पर मलने लगे। उनके बम-बम बोलते ही घाट पर जमा लोग जोरों से बम-बम भोले बोलने लगे, देखते ही देखते घाट बम-बम भोले की आवाज से गुंजायमान हो गया।

मैंने राख लेने से मना करते हुए पूछा, 'बाबा जी मैंने सुना है कि, घाट पर राख से होली खेली जाती है?'

'ठीक सुना है। फाल्गुन की एकादशी की रात को श्मशान नाथ महोत्सव होता है वो देखो ऊपर मसान नाथ का मंदिर दिख रहा है पहले वहाँ पूजा होती है फिर उत्सव आरंभ होता है। भोलेनाथ ने अपने गणों के साथ यहाँ होली खेली थी तब से ही यहाँ होली खेली जाती है। जलती चिताओं के बीच राख पर नगरवधुएँ नृत्य करती हैं। यह मानना है कि जन्म और मृत्यु एक अनंत यात्रा के दो छोर हैं तो भला एक में खुशी और दूसरे में दुख क्यों।'

'श्मशान नाथ महोत्सव ये कैसा महोत्सव है और नगरवधुएँ!'

'मैंने कहा न कि मृत्यु एक उत्सव है हम उसका आनंद मनाते हैं। काशी का मंदिर और घाट हजारों साल पुराने हैं जिनका समय-समय पर कई राजाओं ने जीर्णोद्धार करवाया है। ऐसा कहा जाता है कि राजा मानसिंह ने मणिकर्णिका घाट के जीर्णोद्धार के बाद यहाँ एक सांस्कृतिक कार्यक्रम करवाने का निश्चय किया लेकिन कोई भी संगीतकार तैयार नहीं हुआ तब नगरवधुओं ने पैरों में घुँघरू बाँधकर राख पर खूब नृत्य किया और भगवान से अपने इस जीवन से मुक्ति की प्रार्थना की तब से यह प्रथा चली आ रही है।'

'अब तो नगरवधुएँ।'

'अब भी तमाम वेश्याएँ यहाँ नृत्य करके भोलेनाथ से अपने नारकीय

जीवन से मुक्ति की प्रार्थना करती हैं। जैसे बाकी लोग रंगों से होली खेलते हैं, हम राख से खेलते हैं, अब तो घाट पर ही नहीं बल्कि शहर में इस महोत्सव की धूम होती है और गाते-बजाते इस उत्सव का विशाल जुलूस निकलता है।'

बताते-बताते अचानक बाबा जी उठकर खड़े हो गए और राख उड़ाकर जोर-जोर से गाते हुए नाचने लगे, मानो राजा के जमाने में आ गए हों। देखते ही देखते वहाँ खड़े लोगों के अलावा वहीं पास में बैठे दो-तीन अघोरी और बच्चे भागते हुए बाबा के चारों ओर गोला बना कर नृत्य करने लगे। आस-पास खड़े लोग बीच-बीच में भोलेनाथ का जयकारा लगाने लगे। देखते ही देखते दृश्य एकदम शिवमय हो गया -

'होरी खेलैं मसाने में, होरी खेलैं मसाने में,
काशी में खेलैं, घाट पे खेलैं, खेलैं औघड़ मसाने में,
होरी खेलैं मसाने में, होरी खेलैं मसाने में'

वे गाना गा रहे थे और लोग उनके साथ बीच-बीच में मसाने में, मसाने में गा-गाकर साथ दे रहे थे। बाबा जी का जूड़ा खुल गया और वे पास पड़े डमरू को उठाकर और जोर से नाचने लगे। देखते ही देखते ऐसा समा बँधा कि नृत्य और गाने की उस सुर ताल की लयबद्धता, धमक और वायब्रेशन से चमत्कृत मैं अपने आप को उसमें शामिल होने से बड़ी मुश्किल से रोक पा रहा था।

अद्भुत नजारा था। थोड़ी देर बाद नाच गाना खत्म हुआ तो बाबा जी ने अपना जूड़ा ठीक किया और गाँजे का लंबा कश लगा कर मुस्कुराते हुए बोले, 'देखा न। ये तो कुछ नहीं है महोत्सव के समय तो नजारा देखने वाला होता है। सैकड़ों लोग विचित्र-विचित्र वेशभूषा पहन कर जोर-शोर से महोत्सव में हिस्सा लेते हैं। इस राग-विराग की नगरी काशी की छटा निराली होती है। देश-विदेश के भी कितने लोग उसमें भाग लेते हैं।'

'वो तो ठीक है बाबा जी लेकिन अब सब कितना व्यावसायिक होता जा रहा है। पंडे-पुजारी, टैक्स, पूजा-पाठ घाट तक आने वाली इन सँकरी गलियों में बिकने वाली तमाम तरह की दाह सामग्री और उसी के आस-पास चाय समोसे, कचौरी की दुकानें। देख कर मन में अजीब सा भाव जागृत होता है।'

'क्यों, इसमें क्या हुआ, इसमें क्या बुरा है बेटा। सब काम साथ ही तो चलते हैं। दुकानें गलियों में रहने वालों की जीविका है, पेट क्या किसी का इंतजार करता है। घर में भी इधर आदमी मरा नहीं कि खाने-पीने की व्यवस्था होने लगती है। पंडे-पुजारियों, लाश जलाने वाले लोगों, सबकी जीविका यहीं से चलती है। सत्य को स्वीकारो और हम तो पहले ही कह रहे हैं कि मृत्यु एक उत्सव है। दुख मनाने की कोई बात नहीं है। मृत्यु अंत नहीं है, नए शरीर में आत्मा का अगला पड़ाव है।

'कुछ भी कहिए मन इस बात को आसानी से स्वीकारने को तैयार नहीं है कि धुँए से काली पड़ी सीढ़ियों पर एक तरफ नश्वरता का संदेश है तो दूसरी तरफ क्रीमेशन टूरिज्म भी बन गया है।'

'मन को स्थिर करो और गहराई से सोचो तो मेरी बातें समझ सकोगे। टूरिज्म की दृष्टि से मत देखो लोग यहाँ घूमने कम, श्रद्धा के कारण आते हैं, देश-विदेश से भोलेबाबा के दर्शन के लिए आते हैं। जीवन में एक बार इस पुण्य नगरी के दर्शन करने की इच्छा लोगों को यहाँ लाती है। कितने ही लोग वापस नहीं जाना चाहते, यहीं रह जाते हैं, कितने विदेशी भी सब कुछ छोड़छाड़ कर, कुछ तो है इस नगरी में क्या कहते हो। काशी के घाट ही नहीं पूरी नगरी पवित्र है, मोक्ष दायिनी है, दशाश्वमेध घाट, जहाँ ब्रह्माजी ने अश्वमेध यज्ञ कराया और दस अश्वों की बलि दी, अग्नि पूजा होती है। एक तरफ भव्य गंगा आरती तो दूसरी ओर विश्वनाथ मंदिर में बजते घंटों से गुंजायमान ये मोक्ष दायिनी नगरी अमर अजर है, इस पर भोलेनाथ की कृपादृष्टि है। यहाँ मरने वाले की आत्मा जन्म मरण के चक्कर से मुक्त हो जाती है। ये तो मानते हो न कि जो आया है, उसे जाना ही है। पेड़ों पर भी नए पत्ते पुराने पत्तों के झड़ने के बाद आते हैं। यह प्रकृति का नियम है तब फिर इतना विचार क्यों। आनंद मनाओ प्राणी के संसार की मोह-माया से छूटने का'

'मरणं मंगलं यत्र विभूतिर्श्च विभूषणम्
कौपीन यत्र कौशेयं सा काशी केनमीयते।'

यानी जहाँ मरना मंगलकारी है वो जगह काशी के अलावा और कहाँ हो सकती है।

मैं उनकी बातों को बहुत ध्यान से सुन रहा था। सोच रहा था, गुन रहा था और वे कह रहे थे।

जन्म अगर उत्सव है तो मृत्यु महोत्सव है।

ए-10 बसेरा, दिन क्वारी रोड
देवनार, मुंबई-400088 (महा.)
मो. - 9819162949

पहली तनख्वाह

- विनीता बाडमेरा

जन्म - 20 अगस्त 1977।
शिक्षा - स्नातकोत्तर, बी.एड.।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

'आज फिर उदासी तारी है, यह उदासियाँ जाती नहीं। करूँ तो क्या? कितना मोबाइल, कितना टीवी अब तो इन सबसे भी मन उचट गया है।' उसने मोबाइल से नजरें हटा कर खुद से कहा।

'वे चीजें जिन पर पहले-पहल यह मन आकर्षित होता है, उन्हीं से धीरे-धीरे बोरियत होने लगती है। इंसानों के साथ भी क्या कुछ ऐसा ही करते हैं हम। शुरुआत का आकर्षण बाद में विकर्षण में बदल जाता है।' मन फिर कुछ अनर्गल बातें करने लगा। उसने मन को रुकने को कहा और समझाया कि वक़्त देख कर इन बे-सिर-पैर की बातों के जाल में उलझाए, फिलहाल वह कहीं और उलझा है।

टेबल पर आज का अख़बार रखा था। एकबारगी उसके भीतर से आवाज़ आई, समय व्यतीत करने के लिए कुछ देर वह अख़बार ही पढ़ लें पर अख़बार में भी वही घिसी-पिटी खबरें होंगी। वैसे तो उसके कमरे की वार्डरोब में एक से एक कई शानदार अंग्रेजी नॉवल हैं। फिर इन दिनों उसका यह मन कहीं भी निकल जाता है और जरा देर के लिए भी अख़बार या किताब पर उसकी नज़रें तक ठहरती नहीं, मन तो फिर हवा के वेग-सा है भला कैसे टिकेगा।

उसकी कॉलोनी में बने छोटे से पार्क में बच्चे खेलने आते हैं। उनके मध्य हो रहे शोर की आवाज़ें उसके कानों तक भी पहुँचती हैं कुछ दिनों पहले तो वह कभी-कभार क्रिकेट खेलते इन बच्चों के साथ बच्चा बन भी जाता पर इन दिनों उसे लगता कि वे बच्चे हैं और वह बच्चा तो नहीं। एक बार फिर हाथ में फ़ोन लेकर कांटेक्ट लिस्ट में कुछ खोजने लगा लेकिन माथे पर शिकन उभर आयी। कांटेक्ट लिस्ट वाले लोगों की अपनी श्रेणियाँ हैं। वह इन श्रेणियों में कुछ खास लोगों के नाम को देख फिर कुछ बुदबुदाया।

'दु:ख का बोझ खुद का है फिर उठाने के लिए किसी और का कंधा ही क्यों ये निगाहें तलाशती हैं?'

थोड़ी देर बाद ही उसे लग रहा था जैसे वह बहुत थक गया, जबकि वह जानता था कि उसने काम जैसा कुछ किया नहीं है। इन दिनों बस उसके लिए काम का अभिप्राय सिर्फ़ और सिर्फ़ नौकरी से है।

वह अपने कमरे में गया और स्टडी टेबल पर रखे लैपटॉप को उठा कर उसी हॉल में रखी सेंटर टेबल पर रखा जिस पर अभी भी अख़बार और चाय के खाली कप रखे थे। उसने ध्यान से देखा चाय के खाली कप की तली में चाय सूख चुकी है। उन कपों को उठाकर उसने ट्रे में रखा और किचन में ले जाकर सिंक में पड़े दूसरे जूठे बर्तनों के साथ पानी भर कर रख दिया।

एक बार सूख जाएँ पौधे, बर्तन या रिश्ते तो बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ती है उन्हें हरा करने, साफ़ करने या रिश्तों में फिर नमी लाने के लिए। मम्मी किचन में सब्जी काट रही थी। इन दिनों वह मम्मी की नज़रों से भी न जाने क्यों बचने की जुगत में लगा रहता है। इसलिए तेज कदमों से हॉल में चला आया, उसे लगा कि धीरे क़दम मम्मी के हाथों में आ सकते हैं और मम्मी के हाथों की पकड़ बहुत मज़बूत है। बचपन में मम्मी पढ़ते समय उसके आस-पास रखा वीडियो गेम एक बार जो ले लेती, मज़ाल है उसके एक्ज़ाम ख़त्म होने से पहले दे दे। वह कितना भी रो-धो लें। पढ़ाई का मतलब बस पढ़ाई होता था। इसलिए मम्मी खुद उसके पास बैठती, परीक्षा के पहले सारे पाठ सुनती और तो और उसके स्कूल के आने से पहले प्रश्न-पत्र तक बना कर तैयार रखती और उसी का हासिल था, क्लास में फर्स्ट आना, सभी टीचर्स का चहेता होना, घर में भी धाक होना और दूसरे बच्चों की नज़रों में भी सबसे ऊपर होना। उसे मम्मी पर बेपनाह प्यार उमड़ आया। सुबह नाश्ते में हमेशा स्पेशल बना कर देने से लेकर उसकी किताबों के कवर लगाने, यूनिफार्म प्रेस करने का काम तो मम्मी के जिम्मे था ही साथ ही स्कूल से आते ही उसकी बक-बक भी तो मम्मी ही सुनतीं। फैंसी ड्रेस हो या कविता प्रतियोगिता, मम्मी ही तैयारी करवाती। जीत जाने पर माथा चूम लेती और जो कभी हार भी गया तो कंधा थपथपा, गले लगा यह कहती, 'प्रतियोगिता ही तो है हार-जीत

तो चलती रहेगी।' और उसका मायूस मन खिलखिला उठता।

जब वह कॉलेज पढ़ने वैल्लोर गया तो मम्मी कितना रोई और जब भी छुट्टियों में घर आता तो लौटते में कितना कुछ पैक कर देती जो कि उसके सहपाठी कुछ घंटों में ही चट कर जाते। पर इन दिनों मम्मी कुछ बदली-बदली हैं। हमेशा उखड़ी रहती हैं, बात-बेबात उस पर रोक-टोक। यह सब देख वह उकता जाता है। उसका मन होता कि मम्मी के पास बैठ कर कुछ कहे लेकिन उसका कहना मम्मी सुनेगी या नहीं उसे पता नहीं इसलिए वह कुछ अधिक कहने-सुनने की इस स्थिति से बाहर ही हो जाता।

खैर, किचन से आते ही वह सोफे पर बैठा और लैपटॉप खोला, कितनी ही जगह नौकरी के लिए अप्लाई किया शायद कहीं से कुछ अच्छी खबर हो, इस उम्मीद से। पर उम्मीद का बड़ा पहाड़ रोज़ की तरह ढह गया। अच्छी खबर कहीं भी नहीं और बुरी खबर फिलहाल एक ही है जिसे वह जानता था। लैपटॉप शट डाउन किया और टेबल पर रख मोबाइल लेकर घर से बाहर निकलने के लिए पैरों में स्लीपर पहन ही रहा था तभी-

'कहाँ जा रहा है? कुछ कह कर भी जाएगा या नहीं? यहाँ किसी को कोई मतलब नहीं है। मरती रहूँ अकेली। खाने का कोई टाइम नहीं साहब का।' मम्मी ने रसोई से ही बड़बड़ाते हुए कहा।

उसके कान जोर-जोर से शोर मचाने लगे। वह चाहता था कुछ कहे लेकिन इस वक्त उसकी ज़ुबाँ ने चुप्पी धारण कर ली। बस आँखें मम्मी के चेहरे से टकरा कर फर्श को देखने लगती जैसे चेहरे पर लिखा फर्श पर ही नज़र आएगा।

'तुझसे पूछ रही हूँ, किसी ओर से नहीं। न सोने का और न खाने का, कोई टाइम टेबल नहीं है। रात को बाथरूम जाने के लिए उठी तो तेरे कमरे की लाइट जल रही थी। पता नहीं रात भर क्या करता है। फिर उठेगा तो देर से ही।' मम्मी ने बिल्कुल पास आकर कहा।

उसे वाकई याद नहीं कि नींद ने कब उसे दबोचा अन्यथा बचपन से लाइट की बचत करना उसने मम्मी से सीखा है। मन हुआ भाग जाए। पर पैर वहीं जम गए। वह चाहकर भी बाहर नहीं निकल सका। लगा आख़िर मम्मी के हाथों की पकड़ इतने वर्षों बाद भी बहुत मज़बूत है। पर इन दिनों उसका यह मज़बूत मन कमज़ोर होता जा रहा है, जरा-सी बात पर बिसरने लगता है पर उसे तो यह भी सिखाया, समझाया गया कि, 'लड़कियों की तरह रोना नहीं।' अब जो पानी आँखों में आ जाए तो वह कहाँ उड़ेलें।

मम्मी की आँखें भी चौकस हैं इसलिए उसने मम्मी की ओर नहीं देख कर नीले रंग से पेंट दीवार की तरफ़ देखा। दीवारों का नीला रंग जैसे उससे शांत रहने की गुज़ारिश कर रहा हो।

'कहीं नहीं जा रहा हूँ, खुश! और किसने कहा मेरे लिए टाइम सेट करने की।'

'अरे तो तुझे क्या पता है टाइम कितना भागता है। पूरे दिन घर पर है इसलिए तेरे पास टाइम ही टाइम है और नौकरी करने वाले ही जानते हैं, भागते-भागते काम करना क्या होता है।' मम्मी अब किचन में सब्जी की कढ़ाई में कलछी चलाते हुए जोर से बोली।

आख़िर कब तक पीड़ा पहुँचाते शब्द कान सुनते। उन्होंने बगावत शुरू कर दी। धीमी आवाज़ तेज़ होने लगी।

'कितने समय से नौकरी के लिए कोशिश कर रहा हूँ। कितनी ही जगह रोज़ ही एक नया इंटरव्यू दे-देकर थक चुका हूँ। नहीं लग रही है तो इसमें मेरा क्या कुसूर?' और वह फिर पैर पटकता हुआ अपने कमरे में चला गया।

उन दोनों की इस तरह की आवाज़ों से गर्मी के मौसम में और अधिक गर्मा गया माहौल। खिड़कियों से आती हवा कहीं रास्ते में ही ठहर गयी। पेड़ की टहनियाँ जैसे हिलने से डरने लगीं। छत के पंखे को मानो किसी ने दोनों हाथों से पकड़ लिया। सब कुछ चिपचिपा, थका देने वाला, डरावना और बोझिल।

मम्मी बोलते-बोलते जैसे थक गई। उमस में वैसे भी काम करना मुश्किल फिर उसकी यह बात सुन न जाने कैसे और घबराहट होने लगी। सुबह के अख़बार में बेरोज़गार युवक की रेल की पटरी पर शव की खबर ने शरीर पसीने-पसीने कर दिया। फ्रिज से बोतल निकाल ली और गटागट पानी पीया।

कोरोना के बाद से वैसे भी हर थोड़े दिन में ही उनकी साँस फूलने लग जाती है। बड़ी मुश्किल से खुद को सँभाला और किसी तरह रोटियों की गिनती करने लगी।

'अभी तो कम रोटी ही हुई पाँच और बना लूँ। फिर महाशय कुत्तों को भी तो दूध रोटी देकर आते हैं। पाँच मोटी रोटी कुत्तों की बनाने पर पूरी हो जाएगी।' माथे पर आई पसीने की बूँदों को साड़ी के पल्लू से पोंछते हुए रोटियाँ बेलने लगी।

अब उसकी नज़रें बार-बार दीवार पर लगी घड़ी पर जातीं। दस बजने वाले हैं। मम्मी, पापा का टिफिन पैक कर रही होंगी। पापा रोज़ दस

बजे घर से ऑफ़िस के लिए निकल जाते हैं। उसे पता है पापा शुरू से कम बोलते हैं, बस मम्मी और उसकी नोंक-झोंक देखते रहते हैं। उसने देखा, आज भी पापा सुना-अनसुना कर बाथरूम में नहाने चले गए। वहाँ से आकर पूजा करने पूजा घर में चले गए। वे अब तैयार हो रहे होंगे और अपने चश्मे को साफ़ कर रहे होंगे। उसे लगा कि पापा के पास जाएँ, कुछ बात करें या फिर मम्मी से हुई अभी की इस नोंक-झोंक के बारे में कुछ उनकी सुनें। पर पापा का स्वभाव वह जानता है वह बोलते कम लेकिन सुनते सब हैं, प्रतिक्रिया कम देते लेकिन अपना रुतबा बनाए रखना जानते हैं। ऐसा नहीं है कि पापा उसके प्रति बेफिक्र हैं लेकिन फिक्र जताना उन्हें आता नहीं या वे जताना नहीं चाहते।

पर बिना कुछ पूछे, वह जितने पैसे माँगता है दे देते हैं। उन्होंने बहुत महँगे कॉलेज से उसे बी-टेक करवाया इसलिए बहुत बड़ी जमा राशि उसकी पढ़ाई में खर्च हो गई। इन दिनों उसे पापा से पैसे माँगने में हिचक होने लगी है इसलिए भी शायद वह उनके पास जाने में कतराता है। अंततः उसने इस समय अपने कमरे में रहना ही मुनासिब समझा।

पलँग पर बैठा सामने रखी अलमारी में लगे मिरर में बहुत देर तक देखता रहा जैसे उसे भी खुद से अनगिनत शिकायत है। वह शिकायतों को अँगुली पर गिनता उससे पहले उसकी नज़र छत पंखे पर गई, एक ही झटके में सब की शिकायतें छू मंतर हो जाएँगी। पंखे को देख उसके मन में कितने ही विचार गुत्थम-गुत्थाई करने लगे। यह क्या उसकी आँखें किसी रस्सी की तलाश करने लगीं। बेसुध-सा वह कमरे में ही गोल-गोल चक्कर लगाने लगा।

'इतना कमज़ोर तो वह कभी नहीं रहा फिर बाकी सब।'

यह बाकी सब के बाद छूटी जगह ने उसको शायद कहीं जकड़ लिया और विचारों की गुत्थम-गुत्थाई को पटखनी दे दी। तभी फ़ोन बज उठा। वह कमज़ोर क्षण निकल गया। उसने राहत की जैसे साँस ली।

'क्या कर रहा है?' दूसरी तरफ़ से मानस की आवाज़ आई।

'कुछ नहीं फ़ालतू हूँ।' उसने बिखरता-सा ज़वाब दिया।

'पागल! कभी भी फ़ोन करो तो ज़वाब ढंग से नहीं देता।'

'तो तो . . .। क्या करूँ नहीं है दिमाग मुझ में। फिर क्यों कर रहा है फ़ोन?' वह बोला।

'तू फ़ोन रख, मैं अभी घर आता हूँ।'

दूसरी तरफ वाले ने बिना किसी ज़वाब का इंतज़ार किए यह कह फ़ोन काट दिया।

उसका मन हुआ फ़ोन को ज़ोर से पटक दे। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। उसने हाथ में फ़ोन लिया और फर्श को घूर कर देखा ही था कि याद आया, अभी कुछ दिन पहले ही तो उसने गुस्से में फ़ोन फर्श पर पटक दिया। स्क्रीन चली गई थी। डुप्लीकेट स्क्रीन लगवायी थी, तीन हज़ार लग गए। फ़ोन वाला भी हँस रहा था, 'भैया नया फ़ोन ले लो। वैसे भी पुराना हो चुका है।' और हँसते हुए न जाने कितनी तरह के चमचमाते हुए फ़ोन उसके आगे रख दिए। एक पल के लिए उसकी नज़रें उन दिखाए जा रहे, चमकते, एक से एक फीचर वाले फ़ोन पर ठहर गई। बमुश्किल खुद को संयत करते वह इतना ही कह पाया -
'अरे भैया, नहीं लेना नया फ़ोन। फिलहाल इसको ही ठीक कर दो।'

'तीन हज़ार लगेंगे।'

तीन हज़ार सुन उसका माथा उस दिन भारी हो गया, हल्के होने का कोई आसार नहीं था क्योंकि घर में किसी को कहना वह चाहता नहीं था, उसे पता था कि वे उसके गुस्से को जिम्मेदार ठहराते और वह इससे इन्कार भी नहीं कर पाता। फिर।

उसने फ़ोन वाले को किसी तरह ठीक करने को कहा और सीधा इसी मानस के घर गया जो फिलहाल उसके कंधे पर तसल्ली का हाथ रखना चाहता है लेकिन वह इस हाथ को न चाहते हुए भी झटक देता है और वह कभी उफ़ तक नहीं करता। मानस और वह बचपन के दोस्त हैं, दोनों ने एक ही कॉलेज से बी-टेक किया था। मानस की चार महीने पहले मुंबई में नौकरी लग गई, बढ़िया पैकेज है। इन दिनों वह छुट्टी लेकर घर आया हुआ था। फ़ोन की स्क्रीन जाने पर सीधा, वह उसके घर पहुँचा। गेट मानस ने ही खोला। 'साले,मैं तुझसे ही मिलने आ रहा था। कितने फ़ोन लगाएँ। स्विच ऑफ बता रहा है। कहाँ है तेरा मोबाइल?' एक साथ न जाने कितने प्रश्न पूछता मानस उसे ड्रांइग रूम में ले गया।

वह सोफे पर बैठा कुछ सोचता तब तक ही मानस ने उसको कोल्डड्रिंक की गिलास थमा दी। जैसे उसके गुस्से से उफनते मन को कोल्डड्रिंक से ठंडा कर रहा हो। 'किसी होटल में वेटर बन जाऊँ?' वह सिर नीचा कर जैसे उसके साथ ही खुद से भी पूछ रहा था।

'कमीने! दिमाग खराब है तेरा। वक्त को वक्त नहीं दे सकता? यही करना था तो बड़े कॉलेज से बी-टेक मरने के लिए की। माँ-बाप के

पैसे का चूना लगा ऐसी बात करते तेरी शर्म किस रास्ते से होकर गई ? बोल, बोल ना।'

उस रोज़ मानस कुछ धीरे कुछ तेज हो उसके कंधे पकड़ तिलमिलाया। कुछ देर वे चुप्पी थामे, दूरी बनाए बैठे रहे सोफे पर। कोल्डड्रिंक ने अपना असर दिखाना शायद शुरू कर दिया, दोनों के तेवर ढीले पड़ने लगे। 'यार मोबाइल की स्क्रीन गई। तीन हज़ार चाहिए। देगा मुझे ? नौकरी लगते ही लौटा दूँगा।' वह रुँआसा होता हुआ बोला।

उससे बिना कोई प्रश्न पूछे मानस आस-पास देखने लगा। न जाने क्यों पर वह जैसे इस बात की तस्दीक करना चाहता था कि तीन हज़ार वाली बात सुनने वाला उसके अलावा और कोई तो नहीं। 'ऑनलाइन कर दूँ ?'

'नहीं यार नगद चाहिए। मोबाइल के लिए ही तो।'

मानस कमरे में गया, अपनी अलमारी से सीधा पाँच-पाँच सौ के आठ नोट लाकर उसकी शर्ट की जेब में रख दिए। नजरें समझ गई थीं।

'नहीं यार, बस तीन हज़ार।'

'चुप रह। ठीक करवा लें स्क्रीन। वैसे चाहें तो नया मोबाइल।'

'नहीं, फिलहाल काम चल जाएगा।' वह कुछ सोचते हुए बोला। मानस ने उसके कंधे पर फिर हाथ रखा। उसे लगा वह रो पड़ेगा। किसी तरह खुद को सँभाला।

'नौकरी लगते ही, पहली तनख़्वाह में लौटा दूँगा।' इतना बोल वह चला आया।

मानस के तीन हज़ार से ही तो उसका फ़ोन ठीक हुआ है और आज के ज़माने में कुछ पास हो ना हो, फ़ोन का पास होना सबसे ज़रूरी है वह यह बात भली भाँति जानता था। वह फिर पलँग पर लेट गया। उसे पता है कि लेटना बस लेटना होता है। नींद यूँ ही नहीं आती और इन दिनों तो नींद से उसकी लुका-छिपी ही चलती रहती है। वह अधिक कोशिश भी नहीं करता इस मरी नींद के लिए क्योंकि रात में सपने डराते और दिन में हकीकत। और दोनों से पीछा छुड़ाना नामुमकिन-सा हो गया।

फ़ोन एक बार फिर बजा इस बार गौरी का नाम स्क्रीन पर चमक रहा था। गौरी कॉलेज में उसकी क्लासमेट थी। लड़कियों से बात करने से वह झेंपता था इसलिए उसे पता था सबने उसका नाम झेंपू रख रखा है लेकिन आश्चर्य था कि गौरी से बात करने में उसे हिचक कभी नहीं हुई। महीने भर पहले सब ठीक था, जब वह भी उसके ही दौर से गुज़र रही थी लेकिन अभी दस दिन पहले उसकी भी नौकरी लग चुकी है, अब लगता जिस जगह पर वह खड़ा है, वहाँ बस वह नितांत अकेला है और उसके सामने गहन अँधेरा है इतना अँधेरा कि हाथ को हाथ तक नहीं सूझता। उसने फ़ोन को साइलेंट मोड पर कर दिया। एक बार गौरी ने कहा था, बस नौकरी लग जाए तो।

वह उस रोज़ अधूरी बात को पूरा जानता था लेकिन गौरी के मुँह से ही पूरा सुनने के लिए उसे अधूरी रह जाने दिया। पर अभी उसे गौरी की भी किसी बात में दिलचस्पी नहीं रह गई। साइलेंट पर पड़ा फ़ोन घुर्र-घुर्र बज कर आख़िर चुप हो गया।

कुछ देर बाद फ़ोन उठा कर देखा लाल रंग से गौरी का नाम चमक रहा था। उसने फिर तकिए के नीचे रख दिया जैसे बजता फ़ोन उसके लिए कोई आफ़त है और आफ़तें अभी हाथ धो उसके पीछे पड़ी हैं। अब उसे लगा अधिक सोच-विचार ने उसकी सारी एनर्जी खींच ली। तेज नाक को किचन से भरवाँ टिंडे की सब्जी की खुशबू आ रही थी। और साथ में रायते के छोंक की। इस समय भूख के मारे उसके पेट में मरोड़ उठने लगे। लगा कि मम्मी यदि एक बार आवाज़ लगा लें तो वह बाहर आ जाएगा। 'कमरा बंद कर कब तक पड़ा रहेगा। भूख लगी है तो बाहर आ जा।' मम्मी ने बाहर से कहा।

वह जानता है मम्मी का गुस्सा बहुत छोटा-सा गुस्सा है। मम्मी है ना इसलिए। 'पर तो क्या हुआ। बार-बार नौकरी नहीं, नौकरी नहीं, कहती-कहती दिल कितना दुखाती है।' वह फिर खुद से उलझ गया।

तभी एक बार और दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आई। मम्मी ही होगी यह सोच मन खुश हो गया। 'शरद, मैं हूँ यार। गेट खोल।' मानस की आवाज़ थी।

वह समझ गया। मम्मी ने ही मानस को फ़ोन किया होगा। मम्मी जानती है उसके जीवन में मानस की अहमियत। उसने इधर-उधर देख दरवाज़ा खोला। मानस ने कमरे में आते ही बिना कुछ पूछे, उसका हाथ पकड़ा और बाहर खींच कर ले आया। मम्मी ने डाइनिंग टेबल पर खाना लगा दिया था।

'मानस, तू और शरद दोनों हाथ धोकर आ जाओ। खाना तैयार है।' भरवाँ टिंडे की सब्जी मानस को भी पसंद थी और उसे भी। दोनों वॉशबेसिन से हाथ धोकर टॉवल से हाथ पोंछ कुर्सी पर बैठ गए। मम्मी ने दोनों की प्लेट लगाई, खाना परोसा और वहीं बैठ मानस से उसकी नौकरी और ऑफिस के बारे में बात करने लगी।

पर न जाने क्यों उसने मम्मी और मानस की बातों में कोई रुचि नहीं दिखाई बल्कि उसका मन चाह रहा था कि मम्मी कुछ देर मौन व्रत धारण कर लें। 'आंटी, आप भी हमारे साथ ही खाना खा लीजिए।' मानस बोला।

'मेरा व्रत है, एकादशी का।'

उसे थोड़े दिन पहले मौसी ने बताया था कि उसकी नौकरी के लिए मम्मी ग्यारह एकादशी का व्रत रख रही है। उस रोज़ भी वह चिल्लाया था, 'मौसी ने बता दिया मुझे। उपवास करने से कुछ नहीं होने वाला। मेरे लिए भूखे रहने की कोई ज़रूरत नहीं है। व्रत, उपवास से नौकरी मिल जाती तो देश में इतनी बेरोज़गारी नहीं होती।'

'ज्यादा दिमाग ख़राब करने की ज़रूरत नहीं है। तू नहीं मानता मत मान लेकिन मुझे जो करना है वह करके ही रहूँगी समझा।' मम्मी भी गुस्से में बोली थी उस दिन। वह जानता था मम्मी जिद्दी है, दो घंटे शाम को पूजा कर फलाहार ही करेगी। उसे ले कर मम्मी को इन दिनों पता नहीं क्या हो गया है। एक दिन तो हद ही हो गई, टीवी के न जाने कौन से चैनल में 'दो मिनट में है आपकी सारी समस्या का समाधान' कार्यक्रम को देखते हुए पंडित जी से उसकी नौकरी के बारे में जानने के लिए फ़ोन ही लगा दिया। मम्मी ने सोचा था कि बस दो मिनट में ही समाधान बता देंगे लेकिन उन महाराज जी ने उस समय कोई ज़वाब नहीं दिया। और फिर आधे घंटे बाद मम्मी से बात करके किसी पूजा के लिए ग्यारह हजार रुपए माँगे। मम्मी ने घबराकर फ़ोन रख दिया। उस रोज़ के बाद वे महाराज जी उसके भविष्य के लिए मम्मी को जिम्मेदार बता कितने दिन तक नए-नए नंबर से फ़ोन करते रहे। आखिर पापा को सारी बात पता चली तो हमेशा शांत रहने वाले पापा ने उस रोज़ मम्मी को आड़े हाथों लिया। 'पढ़ी-लिखी बेवकूफ़ हो तुम। तुम्हारी बुद्धि घास चरने गई है। ढोंगी बाबा के ढकोसले में पड़ी क्या कर रही हो, पता भी है?'

मम्मी खूब देर तक रोती रहीं कमरे में जाकर। उसने मम्मी को समझाना चाहा लेकिन नहीं समझा पाया। हालाँकि उस महाराज जी के फ़ोन तो अब नहीं आते पर हाँ मम्मी को एकादशी के व्रत करने से पापा और वह दोनों ही नहीं रोक पाए। बदलना आखिर किसको और क्यों। फिर वह तो आजकल अपनी तुनकमिज़ाज़ी को कहाँ रोक पा रहा है जो मम्मी को रोक लेगा।

मानस ने माहौल की गर्माहट को भाँपते हुए उससे पूछा-
'तूने मेरी कंपनी में भी तो भेजा था सीवी, क्या हुआ?'

'यार अभी तक कम से कम बीसों जगह भेज चुका हूँ पर? कोई अच्छी ख़बर कहीं से भी नहीं।'

यह कह उसका ध्यान फ़ोन में सेव अपनी ही मार्कशीट पर चला गया। प्रतिशत भी कम तो नहीं हैं फिर भी। मम्मी किचन में बचा काम निबटाने चली गयीं। वह भी डाइनिंग टेबल से सामान हटाता आहिस्ता से किचन में आया और प्लेट में रखी उन मोटी रोटियों के टुकड़े कर किसी बड़े प्याले में डाल फ्रिज से दूध निकाल ही रहा था कि मम्मी फिर बोली- 'आजकल डेढ़ सौ रुपए का तो रोज़ दूध ही आ जाता है।'

उसके हाथ ठहर गए। मन ही मन कल से चाय न पीने का सोच भगोनी वापस फ्रिज में रख दी और चुपचाप सोफे पर बैठ गया। तभी मम्मी बर्तन साफ़ कर साड़ी के पल्लू से हाथ पोंछती हुई आई और रोटी वाले बर्तन में दूध डाल फिर किचन में चली गई। वह देखता रह गया। मम्मी को वह समझता है या नहीं उसे पता नहीं। उसने मानस को इशारा किया और दोनों घर से बाहर निकल आए। अभी दिन के चार बज रहे थे। पर सितम्बर महीने की यह धूप चुभ नहीं रही थी। वह रोटी और दूध का प्याला लेकर घर के बाहर आया ही था कि पाँचों पिल्ले और भूरी कुत्तिया ने उसे घेर लिया। वह जानता है कि भूरी और उसके पिल्ले रोज़ उसका इंतज़ार करते हैं।

'कब से करने लगा है तू ऐसा?'

'कैसा?' उसने मानस की तरफ देखते हुए प्रश्न पर प्रश्न किया।

'यह दूध, रोटी और गली के कुत्ते।'

'दादी हमेशा अल सुबह ही गली के कुत्तों को दूध-रोटी देती थी। मैं देखता था कि कुत्ते गली के नुक्कड़ पर दादी का इंतज़ार करते। दादी के मरने के बाद कॉलेज से लौटने के बाद मैं अब दूध रोटी इनके लिए लेकर आता हूँ तो यह मेरा इंतज़ार करते मिलते।' उसने पिल्लों की तरफ प्यार से देखते हुए बोला। देखते ही देखते सारा प्याला चंद मिनटों में खाली हो गया। पिल्ले फिर उसकी तरफ उम्मीद भरी नज़रों से देख खाली प्याले की तरफ देखते रहें। मानस जल्दी से पास की बेकरी से ब्रेड के दो पैकेट ले आया उसका मन कृतज्ञता से निहारने लगा। मानस ने शीघ्रता से पिल्लों की तरफ ब्रेड के टुकड़े डाले। कुतिया उसको एकटक देखने लगी। उसका मन फिर इस माँ को देख रहा था। और कुतिया जैसे आँखों से दोनों का धन्यवाद करने लगी। वे दोनों मुस्कुराए। तभी पड़ोस के शर्मा जी सामने से आते दिखे, उनके हाथों में दूध की थैली थी। उन्हें देख सहसा वे रुक गए। शिष्टाचारवश उसने नमस्ते कहा, वे शायद इस नमस्ते का ही इंतज़ार कर रहे थे।

'आया बेटा, कहीं से ज़वाब नौकरी का?'

'हाँ अंकल दो-तीन जगह से इंटरव्यू के लिए ज़वाब आया है।' उत्तर मानस ने दिया। शर्मा जी ने मानस को देख मन ही मन बड़बड़ाते हुए धीरे से कहा।

'तुमसे तो नहीं पूछा।'

'नौकरियाँ कहाँ पड़ी हैं! पहले का ज़माना और था। थोड़ा भी पढ़ा-लिखा है तो पकड़-पकड़ कर नौकरी पर रख लिया जाता वो भी सरकारी में और अब। सरकारी की तो उम्मीद ही छोड़ दो और प्राइवेट में तो हालत बहुत बुरी है। फिर लगे तो सही।' उन्होंने उसकी तरफ देखते हुए मानस की बात का उत्तर दिया। इन दिनों उसका शब्दकोश लगभग खाली-सा लगता है उसे। वह भूरी कुतिया और उसके पिल्लों को देखता रहा। उसे लगा सारी कॉलोनी में, रिश्तेदारों में, जान-पहचान वालों में फिलहाल तो बात करने का विषय ही उसकी नौकरी है। वह चाहता था कि कानों में खूब गहरे तक रुई ठुँसी रहे। उसे खुद से बेहतर बहरे लोगों की दुनिया लगने लगी? और वह गूँगा बना रहा।

'लगेगी बेटा नौकरी। बस पढ़े-लिखे को यूँ खाली घूमते देखता हूँ तो कलेजा मुँह को आता है। इसलिए पूछ लिया।' शर्मा जी जैसे सहानुभूति जता रहे हो।

वह कहना चाहता था, 'मेरी प्रॉब्लम, लेकिन आपको तो बीच में कूदना ही है।' परन्तु शब्द गले में फाँस बन गए।

बड़ों का लिहाज़ कर, नमस्ते कह वह दूसरी तरफ देखने लगा। मानस उसका दूसरी तरफ़ देखना समझ गया। बाइक उसके सामने लाकर खड़ी कर दी। वह बिना उससे यह पूछे कि कहाँ जाना है, पीछे बैठ गया। बाइक सड़क पर दौड़ रही थी वह सड़क के किनारे की दुकानों के नाम पढ़ने में खुद को व्यस्त करने लगा। उसे लगता बस सारी दुनिया में एक वही फ्री है। वह कभी दायीं तरफ़ की दुकानों को गौर से देखता तो कभी बायीं तरफ़ की। कुछ देर में ही उसे यह भी बच्चों के खेल-सा लगने लगा। अब खेल ख़त्म हो गया तो फिर उसे बेचैनी घेरने लगी।

'कहाँ चलना है?' मानस उसकी मन:स्थिति भाँप पूछ बैठा।

'कहीं भी पर बस यार जहाँ भी चले, वहाँ कोई मेरे फटे में टाँग न अड़ाएँ।'

तभी जेब में पड़ा मोबाइल फिर घुर्र-घुर्र करने लगा। उसने इशारे से रास्ते में बाइक रोकने के लिए कहा। मानस ने जगह देखते हुए साइड में बाइक खड़ी कर दी। वह कुछ पूछता, उससे पहले दस मिनट तक 'यस सर, यस सर' की आवाज़ आती रही और उदास चेहरे पर बड़ी सी मुस्कान अपनी जगह बनाती रही। उसने फ़ोन जेब में रखा था कि मानस उसके चेहरे के भाव पढ़ने लगा। 'लगता है, आंटी जी की एकादशी तो फलीभूत हो गई।' यह कहते हुए वह जोर से ठहाका मार हँस पड़ा।

'तू भी न माँ के साथ। यह कहते हुए वह पिछले सप्ताह मुंबई की कंपनी जिसने उसे इंटरव्यू में पास कर के भी नौकरी नहीं दी के बारे में सोचने लगा। कोई डर उसे अपनी गिरफ़्त में लेने लगा और वह डर से आज़ाद होने की भरसक कोशिश कर रहा था। वह याद रखना चाहता था तो केवल अभी आए फ़ोन की एक बात, 'आप जल्द से जल्द ज्वाइन कर लें।'

'मज़ाक कर रहा हूँ। पर अब माथे पर अधिक सलवटें तो मत डाल बस मेरे चार हजार! पहली तनख़्वाह में।' मानस जैसे उसको डर की कैद से आज़ाद कराते हुए हँसाने की ग़रज़ से बोला। सड़कों पर अँधेरा पसरा रहा था पर दायें-बायें की दुकानों में हो रही रोशनी उस अँधेरे को हटाने की कोशिश में लगी थी। और उसे इन दुकानों की यह अँधेरा चीरती रोशनी भली लग रही थी।

'बिल्कुल पहली तनख़्वाह में ही।'

पहली तनख़्वाह के बारे में सोचते ही उसकी आँखों में अनगिनत स्वप्न तैरने लगे जिसका जिक्र उसने कभी किसी से नहीं किया लेकिन उन स्वप्नों में एक तस्वीर सबसे बड़ी उभरती थी, वह थी मम्मी की।

मानस सड़क पर खड़े फल के ठेले से शरद की मम्मी के लिए फल खरीदने में व्यस्त था।

और वह फ़ोन में गौरी के मिस्ड कॉल को देख रहा था अब उसने साइलेंट मोड हटा दिया था।

बाडमेरा स्टोर
कमल मेडिकल के सामने,
नगरा, अजमेर-305001 (राजस्थान)
मो.-9680571640

बैक ग्राउण्ड

- संजय कुमार सिंह

जन्म - 21 मई 1968।
जन्मस्थान - नयानगर, मधेपुरा (बिहार)
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - सोलह पुस्तकें प्रकाशित।

चंद्रभूषण जब पटना साइन्स कॉलेज पहुँचा, तो आज से बीस-पच्चीस साल पहले उसके पास नया बुश्शट और जेब वाला पजामा था पहनने के लिए, तब गाँव की उस गरीबी के बीच पटना में पढ़ने और डॉक्टर बनने की ललक के लिए इतना काफी था। उसके पिता रमाकांत बाबू ने पचास मन धान बेच कर उसे भाई के साथ पटना भेज दिया था। भाई ने भाग-दौड़ कर एक लॉज में उसे रखवा दिया था। कुछ सीख और नसीहत देकर वे लौट आए थे। एक छोटी सी डायरी में कुछ ग्रामीणों के नाम और पता लिखे हुए थे। वक्त-जरूरत उनसे मदद लेने की बात कही थी, पर मितव्ययिता और पढ़ाई में ध्यान देने को भी कहा था। गरीबी का पहाड़ कठोर जरूर होता है, पर दुर्लंघ्य नहीं। कई लोग उसकी तरह ही फटेहाल पटना आए और विद्या अर्जन कर बाबू बने। ईश्वर ने चाहा, तो वह भी अपने अँधेरे में डूबे घर-परिवार का नाम रौशन करेगा। मुशलीगंज हाई स्कूल के हेडमास्टर सूरज बाबू की यही राय है, विद्यार्थी का ऐश्वर्य उसका ज्ञान है, यही धन उसका सोना। जितना घिसोगे, उतना चमकोगे, बाँकी दुख के बारे में सोचो मत, किसे अभाव नहीं घेरता, पर सच्चा साधक पीछे मुड़ कर नहीं देखता कई बातें गाँठ की तरह थीं चन्द्रभूषण के पास! रोना-घबराना नहीं है। किसी बात पर अभिमान नहीं करना है। अपमान भी मिले, तो सह लेना है, टूटना नहीं है, उम्मीद करो अपनों से, पर अगर वह इनकार भी करे, तो मुख मलिन न करो। अपने गुरुवरों और अभिभावकों का आदर करो, बंद पड़े रास्ते भी खुल जाएँगे विश्वास और विनय ही तुम्हारी पूँजी है। कृतज्ञता को अपना कवच-कुंडल बनाओ दुनिया तुम्हारे कदमों में होगी।
चंद्रभूषण क्लॉस के बाद भी आदतन किताबों में खोया रहता। दो-चार दस दिनों में ही उसके क्लॉस टीचर उसे पहचानने लगे थे। उसका नाम हॉस्टल के लिए भी मैरिट लिस्ट में आ गया था, पर वह दुविधा था कि क्या करे। क्या हॉस्टल के खर्च का बंदोबस्त हो सकता था, दो एक ट्यूशन का इन्तजाम अगर हो जाए सिन्हा सर, चटर्जी सर, ठाकुर जी सब ने कहा है, पर वह कहाँ मुँह खोले.. किससे कहे उसके दोस्त-मित्र सब अमीरजाद हैं, पर वह?

एक दिन लिस्ट के हिसाब से चार बजे के करीब वह अपने ग्रामीण मशहूर डॉक्टर नागमणि बाबू के यहाँ पहुँचा। लिस्ट में उनका नाम ऊपर था। वे हड्डी के नामी डॉक्टर थे पटना के। उसका दिल तेजी से धड़क रहा था। बोरिंग रोड में उनके आलीशान मकान के पास वह ठिठक गया। छिपकिली की तरह वह गेट से चिपक गया।

दरबान ने पूछा, 'किससे मिलना है?'

'डॉक्टर साहब से' उसने हकला कर कहा।

'उधर जाओ क्लिनिक में।'

'नहीं मुझे घर पर मिलना है।'

'टाइम लगेगा, 'फिर बोला, क्या बोलना है?'

'कहिएगा गाँव का एक लड़का मिलने आया है।'

'चलिए, बैठिए' उसका अंदाज बदल गया।

बाहर भव्य बरामदे में वह बिजूके सा बैठ गया। लम्बे-चौड़े

बरामदे में कई खूबसूरत गुलदस्ते थे। बगल में शीशे के टैंक में रंग-बिरंगी मछलियाँ रौशनी के गुंजलक में तैर रही थीं। सामने एक खूबसूरत झूला था। चंद्रभूषण मन ही मन अकठ रहा था और शायद यह भी भूल रहा था कि वह किसलिए आया है तभी डॉक्टर साहब आ गए। गाँव में एकाध-बार देखी हुई थी। उसने झट से उठकर प्रणाम किया। घर की खिड़कियों से कुछ चुलबुली आँखें झाँक रही थीं। बहुत विशिष्ट लोग नहीं हों, तो इस समय डॉक्टर साहब किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। सीधे क्लिनिक जा पहुँचते थे, पर दरबान का संदेश उन्हें खींच लाया था।

'चंद्रभूषण नाम है तुम्हारा?'

'जी' उसने सकपका कर कहा।

'हाँ, रमाकांत चाचा बता रहे थे।' वे झूला पर बैठते हुए बोले, 'सुनो, तुम्हारी तरह मैं भी इसी तरह खाली हाथ आया था पटना बस लगे रहो। सूरज बाबू तुम्हारी तारीफ कर रहे थे। तुम नाश्ता कर के जाना यह पैकेट रखो, अगर तुम बुरा न मानो तो मैं क्लीनिक जाऊँ, मरीज देखने का टाइम हो गया है?'

'जी भैया'

'राम लाल चंद्रभूषण को नाश्ता कराओ।' वे उठ गए, 'मछली नहीं, मछली की आँख हो लक्ष्य में कर्म ही पूजा है। और सुनो तुम आज से इस घर के मेम्बर की तरह हो इसी तरह आओ और जाओ बेझिझक अपनी जरूरतें कहो, मैं न रहूँ, तो भाभी से भी कह सकते हो।'

'भैया मैं ट्यूशन की खोज में था।'

'अभी पढ़ो, खुद को डॉयवर्ट मत करो।' डॉक्टर साहब ने कहा, 'मैंने एक संस्था बनाई है मॉय विलेज तुम को उससे हैल्प मिलेगा.. कल जगदीश बाबू को कह कर रजिस्ट्रेशन करा लेना।'

चंद्रभूषण अवाक रह गया। राम लाल ने बैठने का इशारा किया। डॉक्टर साहब के दोनों बेटे लंदन में पढ़ रहे थे। मैडम के अलावे दो सालियाँ थीं पिंकी और लल्ली। पिंकी बी.ए. में और लल्ली इण्टर फाइन आर्ट्स में थी। रामलाल नहीं चाहता था कि उनसे सामना हो चंद्रभूषण का, जल्दी-जल्दी नाश्ता करा कर विदा किया। लॉज पहुँच कर चंद्रभूषण ने पैकेट खोला, तो उसमें हजार रुपए थे। इसके बाद भी जब-तब वह डॉक्टर साहब से मिलने जाता-आता रहा। क्लॉस टीचर चटर्जी ने उसे दो ट्यूशन दिलवा दिए, जिनसे उसकी मुश्किलें कम हो गई थीं।

डॉक्टर साहब के घर जाने पर और कोई परेशानी तो नहीं थीं। खुद डॉक्टर साहब की मैडम डॉली जी भी दयावान थी, पर पिंकी और लल्ली का व्यवहार उसे अजीब लगता था। एक दिन उसने सुना लल्ली कह रही थी, 'आज भी लल्लू जी आए हैं। देखो पिंकी दीदी साइंस कॉलेज पजामा पहन कर जाता है कार्टून।' 'लल्ली जी ' रामलाल ने नाराज होते हुए कहा, 'किसी की गरीबी का मजाक बना रही हो। डॉक्टर साहब जानेंगे तो क्या कहेंगे? वे अपने गाँव लोगों को कितना चाहते हैं तुम जानती हो?' लल्ली भाग गई, तो उन्होंने कहा, 'चंद्रभूषण जी लल्ली बातूनी है, प्लीज माइण्ड मत करिएगा। दोनों बहनें वैसी हैं। मुझे भी चिढ़ाती हैं, अमीरजादी हैं इनका शगल है। यह सब पढ़ने-लिखने में कुछ खास नहीं वैसे बाबू जी यानी डॉक्टर साहब के श्वसुर जी दिल्ली रहते हैं यहीं थे पहले। अब इन दोनों को पढ़ाने को लिए रक्खा है।'

'नहीं रामलाल काका इतना चलेगा।' चंद्रभूषण ने झेंपते हुए कहा, 'मैं उनकी बातों का बुरा क्यों मानूँ। कुछ चीजों को सहना भी तो आपकी जिंदगी का हिस्सा है। मैं नागमणि भैया को अपना आदर्श मानता हूँ। भाभी भी मुझे स्नेह करती हैं, पिंकी जी और लल्ली जी की अपनी-अपनी सोच है अगर मुझे चिढ़ाने से उन्हें खुशी मिलती है, तो यही सही।'

'फिर भी मुझे बुरा लगता है' रामलाल ने कुढ़ कर कहा, 'मैं सोचता हूँ इन लड़कियों से जिनका ब्याह होगा वो मारे जाएँगे।' उसने फुसफुसा कर कहा, 'बहुत नट्टिन हैं विषलहरी अपने पति से पाँव दबवाएगी।'

'नहीं इनके लिए इसी बैकग्राउण्ड से रिश्ते आएँगे।' उसने कुछ सोच कर कहा।

'बबुआ डॉक्टर साहब के बेटे साकेत और सुकांत इंग्लैण्ड से आने वाले हैं, साहब की मैरिज पार्टी में कभी काका छोड़ कर ऊँची जबान में बात नहीं करते। उनका संस्कार है डॉक्टर साहब वाला परम मिलनसार 'उन्होंने मुँह बनाया' पर दोनों मासी बंदरिया हैं। डाली मैडम बहुत डाँटती हैं, दोनों दाए-बाए भाग जाती हैं मेरा दिमाग भी भुकाती हैं, पर बाबू जी के लड़के नहीं हैं, अकूत दौलत है उनके पास बहुत घमंड है इनको बाप की दौलत काफी एक दिन जानवरों के नकली सींग लगा कर मुझे भी चिढ़ा रही थीं दोनों बहनें।'

'काका बात दौलत की नहीं है' चंद्रभूषण ने कहा, 'पर डॉक्टर साहब की बहुत इज्जत है। गाँव-समाज में वही सबसे बड़ी दौलत है उनकी वर्ना दो रुपिया हो जाएँ, तो कौन आदमी को आदमी समझता है। मैंने जैसा सुना था, उससे बढ़कर छोड़िए इनकी बातें भाई साहब महान आदमी हैं।'

'हाँ उनकी आँखों में पानी है' राम लाल ने कहा, 'भगवान उनका इकबाल बनाए रक्खें' वह गेट बंद कर अंदर चला गया। रामलाल जी की बात डॉक्टर साहब की गोल्डन जुबली पार्टी में सच साबित हुई। साकेत और सुकांत के साथ चंद्रभूषण पूरी रात मेहमानों की आव-भगत में लगा रहा। एक दिन खूबसूरत कोट-पैंट गिफ्ट में चन्द्रभूषण को भी मिला था। लाखों रुपया लगाकर डॉक्टर साहब के मकान को दुल्हन की तरह सजाया गया था सैकड़ों डॉक्टरों, रिश्तेदारों और दोस्तों के बीच जब गायकों ने समाँ बाँधा-ये कहाँ आ गए हम यूँ ही साथ चलते-चलते तो लोग झूम उठे, प्रेम की एक अलौकिक अनुभूति से भर गया वह। वैवाहिक जीवन के पचास वर्ष समय जैसे मुट्ठियों में समा गया होअभिभूत हो गया वह, पर इन अहैतुक क्षणों में भी एकाध बार इन लल्ली के तंज ने चंद्रभूषण का जी दुखाया, जब उसने जान-बूझ कर कोई आड सामान उसे पकड़ाया या कहा,' अरे ये फूल उधर कर रख दीजिए जरा रामलाल काका को बुला कर लाइए..जरा हमारी सहेलियों को खाना खिलवा दीजिए आप तो उड़ रहे हैं।' चंद्रभूषण ने जरा भी विरोध नहीं किया। हँस-हँस कर सब करता रहा। उसकी आँखों में डॉक्टर साहब का जादू था। उनके बेटों की शालीनता थी। हसीन वादियों से गुजरता हुआ एक सफर था।

साकेत ने आवाज दी, 'अंकल इधर आइए।'

वह गया, तो उसने बगल में बैठाया,'आप दिन भर परेशान रहे हैं, आइए बैठिए बहुत लोग हैं खाना खाया आपने? चलिए हम दोनों खाते हैं।' रात ऐसी बीती कि सुबह हुई, तो चन्द्रभूषण की नींद तब खुली जब डॉक्टर साहब ने कहा, 'अब हॉस्टल जाओ आराम करने के बाद शाम को आना' हसीन यादों के साथ वह लौट गया। उसने हॉस्टल पहुँच कर सोचा अगर कभी वह किसी मुकाम पर पहुँचा, तो वह भी अपने लोगों के लिए हेल्प लाइन चलाएगा इसी तरह पार्टी करेगा डॉक्टर साहब से उसे रश्क हो रहा था।

कहते हैं जहाँ चाह है, वहीं राह भी। पटना साइन्स कॉलेज से इण्टर फर्स्ट डिवीजन पास कर गया। इतना ही नहीं सूरज बाबू की भविष्यवाणी के अनुरूप मैडिकल की परीक्षा में भी चुना गया। डॉक्टर साहब को असीम खुशी हुई। उन्होंने बुला कर पीठ ठोंकी। कुछ टिप्स दिए। उसका चयन राँची मैडिकल कॉलेज में हुआ था। अब तक सैकेण्ड ईयर आते-आते उसमें बहुत से बदलाव भी आ गए थे। वह आखिरी दिन उनसे आशीर्वाद लेकर राँची के लिए निकल गया ट्रेन से। डॉक्टर साहब की भलमनसाहत की बहुत सी यादें उसे भावुक कर रही थीं। उन्होंने निर्व्याज भाव से उसकी मदद की थी। पिछले दो सालों में अगर उसका पढ़ना मुमकिन हुआ था, उन्हीं के कारण। पचासों हजार रुपए उन्होंने दिए थे, वह यह सोच कर सिहर जाता था कि यह ऋण वह कैसे चुका सकता है गाँव में जिस किसी ने पूछा नागमणि बाबू को देवता की छब दी उसने। केवल गाँव के नहीं इलाके के लोगों की मदद के लिए उनका द्वार खुला था। और चंद्रभूषण उसमें आखिरी नहीं था।

पढ़ाई के दरम्यान उसे बीच-बीच में डॉक्टर साहब के पोस्टकार्ड मिलते थे। किसी जन्म के भाई ही थे वे। वह जब हाउस सर्जन शिप में था, तब उसने एक पोस्टकार्ड में लिखा कि अब आप अगर किसी मुझ जैसे बैक ग्राउण्ड के लड़के के भविष्य के लिए यह राशि संचित कर दें, तो मुझे खुशी होगी कोई कल दस्तक जरूर देगा। डॉक्टर नागमणि पोस्टकार्ड पढ़ कर मुस्कुरा पड़े। लगभग इसी तरह फटेहाली में उम्मीद लेकर वे पटना आए थे और आज दिल्ली से श्वसुर साहब यानी विशू बाबू आए हुए थे। डाली जी से देर तक बतियाते रहे थे। सास रत्ना जी भी खुसुर-पुसुर कर रही थीं। पिंकी की शादी दिल्ली के एक इंजीनियर से तय हो गई थी। लल्ली का विवाह कर भी वे लोग निश्चिंत होना चाह रहे थे। अचानक रत्ना जी ने कहा, 'दामाद जी वह

राँची वाला लड़का कैसा रहेगा?'
वे चौंके 'क्या? मैं समझा नहीं।'

'अरे वही भूषण।'

'लल्ली पसंद करेगी तब न?' रामलाल ने बात काटते हुए कहा, 'उसका बैकग्राउण्ड कैसा तो रहा है। लल्ली बेबी नहीं मानेगी वह बहुत गरीब परिवार से रहा है वह' डॉक्टर साहब खुद असमंजस में थे। डाली मैडम की ओर ताक रहे थे। उनका मानना था कि किसी के प्रति उपकार तो सही है, पर प्रतिदान में कुछ माँगना कहाँ तक उचित हो सकता है, अगर वह नहीं कह दे, तो? विशू बाबू ने आशा के विपरीत कहा, 'पूछने में क्या हर्जा है? पूछ कर देखिए।'

'किससे?' डॉक्टर साहब अकबकाए।

'लड़का से।' वे बोले,'अब उसका बैक ग्राउण्ड भी तो बदल चुका है कोई गरीब लड़का क्रिकेटर हो जाए, तो कौन उसका बैकग्राउण्ड देखेगा? आखिर लल्ली का विवाह डॉक्टर इंजीनियर से ही न होगा। उसमें क्या कमी है लड़का गुणवान तो है ही अमीर होते ही सब बदल जाएगा।'

राम लाल ने फिर मन की बात कही, 'लल्ली बिटिया से भी पूछा जाना चाहिए उनकी पसंद ना हो तब? मुझे संदेह है, बाद में किचकिच नहीं हो तो अच्छा।'

'तो पूछ आओ' रत्ना जी ने कहा।
'बिटिया जी?' वह भागा-भागा गया। वह जानता था कि वह भूषण को कभी पसंद नहीं करेगी, कितना तो मजाक बनाती थी। भूषण उसकी नजर में गाँव का लल्लू है।

'क्या बात है?' लल्ली ने पूछा।

'बाबू जी राँची जा रहिन हैं।'

'काहे?' वह अनमना कर बोली।

'भूषण बाबू पर।'

'तो जाने दो।'

'ई का कहत हहिं।'

'अब क्या कहें' वह मुस्कुराई।

राम लाल वापस लौटा तो विस्मित था, 'बिटिया को ऐतराज नहीं है' मगर मन ही मन वह सैकड़ों मन पानी से भीग गया था, जिस लड़की ने हमेशा जिसका जी भर अपमान किया, वह कैसे मान गई।' उसे लगा जमाने के हिसाब से वह पीछे है, इस दुनिया को समझने की सलाहियत उसमें है नहीं। अब भगवान जो करें किसी की मदद कर ये लोग किसी न किसी प्रपंच से फिर सब वसूलना जानते हैं इस बार गरीब का पूरा जीवन ही दाँव पर लगेगा। लगे वह क्या कर सकता है। गरीबों के साथ ऐसा मजाक होता है। उसकी आँखों में पिंकी और लल्ली के कटाक्ष से भूषण का दुखी चेहरा घूम गया। किस मुँह से वह पत्नी समझेगा लल्ली को पर होनी पर किसका अख्तियार है, तारीख तय हो गई।

राँची जाने में एक उत्साह था, पर राँची से लौटकर डॉक्टर साहब तीन दिनों तक क्लिनिक नहीं गए। पूरा परिवार तिलमिलाहट और घुटन में था। विशू बाबू डॉक्टर साहब को कोस रहे थे कि किस धोखेबाज लड़के की उन्होंने मदद की। नाली के कीड़े को कितना भी साफ करो, नाली में जाएगा। दिखा दिया न अपनी औकात। खुद डॉक्टर साहब को भी यकीन नहीं हो रहा था कि चन्द्रभूषण ने उन्हें मना किया। उसकी जगह वे होते इस परिस्थिति में लल्ली क्या किसी भी लड़की के लिए हाँ कह सकते थे। सवाल अहसान का है, अपने ईमान से भाग कर कहाँ जाओगे। पर चन्द्रभूषण ने सीधे-सीधे नहीं कहा समय हर घाव भर देता है। दो-चार दिनों में बात आई-गई हो गई। सब चन्द्रभूषण के कुकृत्य पर थूक कर भूल गए। लल्ली के लिए कोई दूसरा लड़का देखा जाने लगा। पर अचानक एक दिन डॉक्टर साहब के पास राँची से एक पार्सल आया, पार्सल में एक पत्र और कुछ सामान थे पत्र चंद्रभूषण का था-

भाई साहब प्रणाम!

आशा है आप स्वस्थ्य होंगे। आपके अहसानों तले दबा हुआ महसूस कर रहा हूँ। रिश्ता तोड़ कर मैं आपकी नजरों में पतित हो गया हूँ, पर यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि लल्ली ने हमेशा मेरे बैक ग्राउण्ड का मजाक उड़ाया। बात आप तक कभी नहीं गई, पर रामू काका सब जानते हैं इस बंडल में लल्ली के बनाए वे कार्टून हैं, जो बतौर गिफ्ट मुझे मिले हैं अब अगर मैं इस रिश्ते को स्वीकार कर लल्ली जी के प्रति अचेतनत: कोई रीवेंज लेता, तो शायद यह आपके उदात्त भावावेश के प्रति अन्याय होता। यह सच है कि मेरा बैकग्राउण्ड ऐसा वीक रहा है, जिस पर गर्व नहीं किया जा सकता। पर इस पर मेरा क्या अख्तियार हो सकता है। फिर भी अगर यह चोट गहरी लगी हो, आपके अंदर का वह मूल्यवान आदमी आहत हुआ हो, तो मैं लल्ली से विवाह के लिए तैयार हूँ, यह फैसला आपको लोना होगा।

आपका चंद्रभूषण, राँची

डॉक्टर साहब ने बंडल को उलट-पलट कर देखा और सारे कार्टून डॉली को सामने कर दिए। किसी में कौए का सिर, किसी में डागी की जीभ। किसी में बगुलों के पंख किसी में बंदर की आँखें। तो भालू के दाँत। किसी के बैक ग्राउण्ड का ऐसा मजाक उन्होंने सोचा भी नहीं था, भावनाओं का एक खंडित लोक था, जिससे भविष्य की कोई तस्वीर नहीं बनाई जा सकती थी। हर मौसम की मरी हुई चुप्पी पसरी थी वहाँ जिनसे चन्द्रभूषण की बेबस आँखें झाँक रही थीं। कुछ में शक्ल उसकी थी, तो जिस्म किसी और चीज की। जिस्म उसकी तो शक्ल भिन्न अगर यह मासूम शरारत थी, तब भी सब कुछ अमानवीय था।

रामलाल उनके मनोभावों को पढ़ रहा था। डॉक्टर साहब के चेहरे पर खामोशी थी। अचानक कुछ सोच कर उसने कहा, 'साहब जी भूषण तो आपको भगवान मानता है, पर है, तो लड़का-बच्चा ही। बाबू जी और माँ जी भी दुखी होकर गए हैं आप मेरी मानिए, तो भूषण को मेरी ओर से पत्र लिखिए लल्ली बिटिया ने बचकानेपन में जो मजाक किया हो, पर दिल से बुरी नहीं है भूषण को जब उसने पसंद कर लिया, तो फिर इनकार का क्या मतलब है, यह शादी अब होगी, उसे मेरी ओर से कहिए यह रिश्ता करे। अपने भगवान का दिल नहीं तोड़े कल दुनिया में फिर कोई किसी का मददगार नहीं होगा..हमें उसकी नहीं दुनिया की फिक्र है।'

'रामलाल! चन्द्रभूषण के प्रति मेरे मन में कोई मैल नहीं रहा मैं साक्षी भाव से कह रहा हूँ लल्ली का विवाह उसके बैक ग्राउण्ड के हिसाब से होना चाहिए विवाह विवशता का बंधन नहीं, दो आत्माओं का मिलन है। इस क्या हर रिश्ते में हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए अब किसी खत का कोई मतलब नहीं रहा। मैं चन्द्रभूषण को और जलील नहीं कर सकता उसे मेरी ओर से कहो कि मैं उसकी भावनाओं का सम्मान करता हूँ। मुझे अफसोस है कि हमने उसके साथ ऐसा मजाक किया।'

राम लाल को ऐसा लगा, जैसे अटकी हुई कोई घड़ी चल पड़ी हो वह अँगोछे की कोर से आँसू पोंछ कर कमरे से बाहर निकल गया।

किस्सा कोताह यह कि आज चन्द्रभूषण पटना का नामी हर्ट स्पेशलिस्ट सर्जन हैं। उनका अपना विशाल नर्सिंग होम है- आरोग्य धाम। डाली मैडम और नागमणि सिंह की डेथ हो चुकी है लेकिन उन्होंने डॉक्टर साहब से अनुप्रेरित होकर गाँव-जबार के मेधावी छात्र-छात्राओं के लिए उसी तरह हेल्प सेंटर खोल रक्खा है। रामू काका के बेटे को गाँव से बुला कर नर्सिंग होम में नौकरी दी गई है। पिछले दिनों संयोगवश लल्ली के हर्ट का उनके नर्सिंग होम में सफल आपरेशन हुआ है। उसके हस्बैंड जब काउण्टर पर फीस जमा करने आए, तो उन्हें बताया गया कि 17 नम्बर बेड की मरीज लल्ली सिंह का फीस डॉक्टर साहब ने माफ कर दिया है। आप सिर्फ मेडिसीन का पैसा जमा कर सकते हैं और कोई चार्ज नहीं।

उसके इन्जीनियर पति नीलम सिंह ने मन ही मन डॉक्टर साहब की भलमनसाहत को इस्तकबाल किया और फिर मोबाइल पर कोई मैसेज डालने के बाद विस्मय और कौतूहल के बीच कैण्टीन में आकर चाय पीने लगे।

सिपल पूर्णिया महिला महाविद्यालय,
पूर्णिया-854301 (बिहार)
मो.-9431867283

समय की पीठ पर

– राजेन्द्र निशेश

जन्म – 14 दिसंबर 1944।
शिक्षा – स्नातक।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – चंडीगढ़ एवं हरियाणा अकादमी द्वारा पुरस्कृत।

समय की पीठ पर कूबड़ उभर आया है,
दुनिया की तमाम कुरूपताओं एवं जुल्मों से
लड़ने की ताकत खो दी है इसने।
कुर्सियों के महायुद्ध में
शालीनता नहीं बची अब
अंधे युग का आगाज हो गया हो जैसे!

धर्म ने भी अधर्म का
व्याकरण सीख लिया है,
न्याय कल भी अंधा था
और आज भी अंधा है
आँख से काली पट्टी ने न उतरने की
कसम खा ली हो जैसे!
शब्द गुम हो रहे हैं
मरती आवाजों के जंगल में,
नदी में एक बूँद भी नहीं बची
संवेदना की।

लेकिन ख्वाब देखने की जिजीविषा
अभी मरी नहीं
चाँद गवाह है इसका
जो आकाश में चहलकदमी कर रहा है
एक नन्हे जुगनू की तरह!

समय का मसीहा

एक महानगर में
किसी ट्रैफिक सिग्नल के पास
रंगीन गुब्बारे बेचता
अधनंगे बदन बदरंग बचपन
नहीं जानता आजादी का क ख ग।
जूठन की हाँडी में पकता है उसका भात।

उसे नहीं मालूम
किसी स्कूल का पता
जो उसके स्वप्नों को
दे सके एक नई परिभाषा।
भूख की भट्ठी में सुलगता
अवसाद भरे धुएँ से अटा
विश्वास की एक बूँद भी
नहीं ढूँढ़ पाता।
उसके लुढ़कते आँसुओं के दर्द को
नहीं पहचानता समय का मसीहा!

2698, सैक्टर, 40-सी,
चण्डीगढ़-160036
मो.-9417108632

लड़कियाँ

- विनीता वर्मा

बाई से ज्यादा चमचमाते बर्तन माँजती हैं लड़कियाँ
और मन से अधिक सुखदता से उन्हें जमाती हैं
सुबह शाम अँगीठी सुलगा कर रोज-रोज खाना बनाती हैं।
एक आलू एक भटा
और भूख से व्याकुल छः पेट
उसाँसों को
गीतों की गुनगुनाहट से दबाती-उठाती हैं लड़कियाँ।

पिछवाड़े से कतर लाती हैं थोड़ी सी हरी धनिया
ढूँढ़ निकालती हैं दो एक मुरझाई हरी मिर्चें
और पड़ोसन से माँग कर आधा प्याज
रसा लगाती हैं लड़कियाँ।

चिड़चिड़े पिता, रोगी माँ
और टूट पड़ते नासमझ हड़ियल भाई-बहनों को
अपना हिस्सा खिला देती हैं लड़कियाँ।
हर वक्त शादी कर्जे-खर्चे का कलह सुनतीं
मन ही मन हजारों, लाखों बार मर जाती हैं लड़कियाँ।

लड़कियाँ बढ़ती उम्र का दारुण एहसास लिए लज्जित, हताश,
सहमी हुई अमूमन चली जाती हैं
पागल बूढ़े लंपट किसी के साथ भी।
और उनकी आँखों के ऐन सामने
कसाईबाड़े से भाग निकलती है एक मरघिल्ली बकरी।

सारी दुनिया की दुश्मनी अपने ऊपर निकालती हैं लड़कियाँ।
अपना मुट्ठी भर चर्बी चढ़ा शरीर
ताउम्र सबको खँगालने देती हैं।
गाली गुफ्तार धुक्काफजीहत में
बन्नी-बन्ना, सोहर-जच्चा गाती हैं लड़कियाँ।

लड़कियाँ अपनी बगल में तह किए विशाल डैनों को
रखती हैं सारी जिंदगी उड़ान से अनजान।
आडू के फूल की तरह निर्मल, प्रसन्नचित लड़कियाँ
आखिर दम तक हलाक होती रहती हैं।

जन्म - 3 जुलाई 1957।
शिक्षा - एम.ए., एल.एल.बी.।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।
सम्मान - क्षेत्रीय सम्मान।

यूँ उकता जाओ मत मेरे दोस्त

दुनिया से
यूँ तो उकता जाओ मत मेरे दोस्त!
ये दुनिया लोगों से भरपूर है
चमकती आँख,
बेदाग आसमान,
अकुंठित सपनों की तरह।

मेरे दोस्त!
तुम जो चाहो समझो इसे
मेरी गुजारिश, मेरी आरजू या मेरी मिन्नत
पर तुम लोगों से उदासीन तो न हो
उनसे नफरत तो मत करो
बहुत से लोग हैं इस दुनिया में
हाँ, इसी दुनिया में
यहाँ-वहाँ सब जगह हैं
जो तुम्हारे जिगरी दोस्त हैं
जो सपनों से संघर्ष तक तुम्हारे साथ हैं।

दुनिया से
यूँ तो उकता जाओ मत मेरे दोस्त!
ये दुनिया लोगों से भरपूर है
चमकती आँख,
बेदाग आसमान,
अकुंठित सपनों की तरह।

**पेंट हाउस-4, सातवीं मंजिल, सागर प्रीमियम,
टॉवर, फेस-2, शिरडीपुरम, कोलार रोड,
भोपाल-462042 (म.प्र.)**

शब्द ब्रह्म

- ममता राठौर

जन्म - 7 नवंबर 1961।
जन्म स्थान - अंजनगाँव (महा.)।
शिक्षा - एम.ए., एम.एड., पीएच.डी.।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - क्षेत्रीय सम्मानों से सम्मानित।

शब्द कहीं चले गए
अनंत यात्रा पर क्यों
कि
मौन रखना सीख लिया मैंने
जब उन्होंने बनाए
शब्दों के हथियार,
अस्त्र-शस्त्र
अपने ही होंठों को सी लिया मैंने

अंदर ही अंदर
उमड़ रहा है लावा-तप्तरस
किंतु अब मेरे शब्द
मूर्तरूप हो रहे हैं
शब्दब्रह्म बनकर
विराट, विश्वरूप दर्शन से

उन्हें मानना पड़ेगा
मेरे चिरंतन अस्तित्व को।

समर्थन

जब उसका मन होता है
शांत तालाब के पानी जैसा एकसंध
तब उसके नाजुक पाँव
पहुँच जाते हैं तुलसी के क्यारे के पास
सांध्यप्रकाश में वह इकठ्ठा करती है
बीते जीवन के तुलसी पत्र
उसपर छिड़कती है नेत्रों से छलकते आँसू
दूसरी राह पर ठिठकते हैं उसके कदम
राह होती है वह ढलते उम्र की अंधारगुफा
ढूँढ़ती रहती है वह उसमें
अपने सैरभैर जीवन का समर्थन

जीवन का पथ

जीवन का पथ
टेढ़ा-मेढ़ा, कंटकों से भरा
फिर भी रंग-रंगीला
पल-पल गिरना
ठोकरें खाना
फिर सँभलना, चलते रहना
सृष्टि का नियम अटल है
बहार है तो पतझड़ है
जीवन है तो मृत्यु है
समय की बहती धारा में
जीवन रूपी नैया को पार लगाने
हम चिंतन करें मृत्यु का।

के - 1/8, एम.आई.जी., ऋषि नगर,
उज्जैन -456010 (म.प्र.)
मो.-9425379084

आज भी अभी भी

- सत्यशील राम त्रिपाठी

जन्म - 8 फरवरी 2000।
जन्म स्थान - गौरखपुर (म.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., बी.एड.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

इसके हित करते रहें, रैली, नुक्कड़, कैम्प,
बिना रुके जलती रहे, लोकतंत्र की लैम्प।

रक्षक ही देने लगें, जब भक्षक-से तर्क,
ऐसे में कानून का, होगा बेड़ा गर्क।

यही देखकर देश को, मार रहा है काठ,
संसद में चर्चा हुई, सोलह दूनी आठ।

मन की मथुरा मर रही, बुझी स्वप्न-कंदील,
रोजगार की रेवड़ी, लील गई सब झील।

गंगा, गाँव, गरीब, गौ, हिंदी, हिंदुस्तान,
मिलजुलकर करना हमें, नित इनका उत्थान।

शांति रहे, उन्नति रहे, रहे शौर्य औ' तेज,
भारत नित बनता रहे, स्वर्णिम दस्तावेज।

जाग सके, जाग ले, और मुसीबत भाँप
काट रहे हैं देश को, जातिवाद के साँप।

एक मछेरा इस तरफ, एक खड़ा उस छोर
मछली जाएगी कहाँ, दुश्मन चारों ओर।

गुस्से में इस सूर्य का, खून रहा था खौल
बादल ने भी तान ली, पानी की पिस्तौल।

उधर रंग था राख सा, पानी इधर उदास
दोनों मिल रचने लगे, रंगों का मधुमास।

जबसे उसमें जम रही, जाति, धर्म की गर्द
मानवता का फेंफड़ा, हुआ जा रहा सर्द।

एक चिड़ि से आ रहे, मिलने दसियों बाज,
पका रहा है पूरियाँ, फिर कोई वनराज।

जीवन के हर पृष्ठ पर, लिखिए अपना नाम,
पता नहीं कब जिंदगी, लिख दे पूर्ण-विराम।

यह विकास बहुमंजिला, बना गले की फाँस,
कोई ले पाता नहीं, इसमें ताजी साँस।

उसके घर में लाश है, मेरे घर उल्लास,
नई सदी में यूँ हुआ, संवेदना-विकास।

एक कली को लूटते, मिलकर दो हैवान,
बना रहा है वीडियो, प्रगतिशील इंसान।

दुखिया का फोटो बना, युग का प्रगति-प्रतीक
पर दुखिया के भाग्य का, बदला कभी न लीक।

मिलकर पढ़ते थे कभी, जहाँ प्रणय का पाठ,
वहाँ आज संवाद को, मार गया है काठ।

कौन चढ़ गया अर्श पर, कौन चूमता फर्श,
आयोजित होने लगे, इस पर नए विमर्श।

कभी नेह के हाथ से, खाते थे हम कौर,
आज हमारा चल रहा, उपवासों का दौर।

नई प्रगति ने कर दिया, यह सामान्य मज़ाक,
राजमहल की जिंदगी, वन-वन छाने खाक।

तुम बन जाओ अमृता, मैं बनकर इमरोज,
प्रेम समंदर में करें, एक रेडियम खोज।

सूरज की आँखें खुली, खुला उजाला-यंत्र,
बोरी-बिस्तर बाँधता, अँधियारे का तंत्र।

चले शहर हम छोड़कर, पुरखों की जागीर,
धूल फाँकती रह गई, बाबा की तस्वीर।

पछुआ में सब उड़ गया, घूँघट, लाज, लिहाज,
अरी आधुनिक सभ्यता, क्या लीलेगी आज।

प्रेमचंद पर खेलते, नुक्कड़-नाटक छात्र,
लेकिन भूखे मर रहे, प्रेमचंद के पात्र।

दिन-प्रतिदिन यूँ बन रहा, कुछ ऐसा माहौल,
संवादों पर तन रही, चुप्पी की पिस्तौल।

नए समय में यूँ हुआ, मूल्यों पर आघात,
चरणों तक गिरने लगी, आचरणों की बात।

सज्जन साईलेंट हैं, दुर्जन करें कमेंट,
हिंदी भवन लगा रहा, अंग्रेजी का पेंट।

**ग्राम रुद्रपुर, पोस्ट खजनी,
गोरखपुर-273212 (उ.प्र.)
मो.- 6386578871**

जंगल-जंगल आग लगी

- राकेश जोशी

जन्म – 9 सितंबर 1970।

शिक्षा – एम.ए., एम.फिल., डी.फिल.।

रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित।

◆ ◆ ◆

हर नदी के पास वाला घर तुम्हारा,
आसमां में जो भी तारा हर तुम्हारा।

बाढ़ आई तो हमारे घर बहे बस,
बन गई बिजली तो जगमग घर तुम्हारा।

तुम अभी भी आँकड़ों को गढ़ रहे हो,
देश भूखा सो गया है पर तुम्हारा।

फिर तुम्हें कोई मदारी क्यों कहेगा,
छोड़कर जाएगा जब बंदर तुम्हारा।

ये ज़मीं इक दिन उसी के नाम पर थी,
वो जिसे कहते हो तुम नौकर तुम्हारा।

दूर उस फुटपाथ पर जो सो रहा है,
उसके कदमों में झुकेगा सिर तुम्हारा।

◆ ◆ ◆

सिर छुपाने के लिए छप्पर नहीं था,
लोग कहते हैं कि उसका घर नहीं था।

इन ग़रीबों के लिए केवल सड़क थी,
दौड़ पड़ने का कोई अवसर नहीं था।

जो बनाने के लिए भटका बहुत वो,
घर वहीं था, बस वही घर पर नहीं था।

हम ही उसके गाँव में रहने लगे थे,
सच, हमारे गाँव में बंदर नहीं था।

पाँव थे जो चल रहे थे बेवज़ह ही,
मैं सफ़र में था, मगर अक्सर नहीं था।

आज सब कुछ है मगर है नींद ग़ायब,
वो भी दिन थे, नींद थी, बिस्तर नहीं था।

फ़्लैट में रहकर अकेले थे बहुत हम
सिर पे छत तो थी मगर अंबर नहीं था।

गालियाँ तो हमने थीं जी-भर के दे दीं
हाथ में बस, आपका कॉलर नहीं था।

तोड़ देते सभ्यता के काँच सारे,
क्या करें पर, हाथ में पत्थर नहीं था।

◆ ◆ ◆

अँधियारों से तो ये डर बोलेगा जाकर,
दरबारों से कौन मगर बोलेगा जाकर

ये बोलेगा इससे, उससे वो बोलेगा,
सरकारों से कौन मगर बोलेगा जाकर।

तू भी है उस पार कहीं, इस पार कहीं मैं,
दीवारों से कौन मगर बोलेगा जाकर।

चाँद, समंदर, साजिश, कश्ती, ख़ामोशी है,
मछुआरों से कौन मगर बोलेगा जाकर।

जंगल-जंगल आग लगी है, बुझना होगा,
अंगारों से कौन मगर बोलेगा जाकर।

थोड़ा चूल्हा सुलगाओ कुछ धुआँ दिखे तो
बंजारों से कौन मगर बोलेगा जाकर

क्या लिखना है, क्या लिखते हो, शर्म करो कुछ,
अख़बारों से कौन मगर बोलेगा जाकर।

◆ ◆ ◆

मत पूछिए कि किस तरह गाड़ी ख़रीद ली
बस्ती कहीं पे फिर से उजाड़ी, ख़रीद ली।

तुमसे कहा गया था कि सपने ख़रीद लो,
तुमसे उगे न पेड़ तो झाड़ी ख़रीद ली।

उसको तो भूख-प्यास से इज्ज़त बड़ी लगी,
जिसने किसी के वास्ते साड़ी ख़रीद ली।

उसको मिला है काम कि लहरें गिना करे,
उसने समझ लिया है कि खाड़ी ख़रीद ली।

दिन भर खड़ा था धूप में, बेचे थे नारियल,
पैसे कमा के शाम को ताड़ी ख़रीद ली।

सोने को उसको आज भी थोड़ी सड़क मिली
तुमने जमीन आज भी आड़ी ख़रीद ली।

प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष
अंग्रेज़ी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, मजरा महादेव
पौड़ी गढ़वाल-246001 (उत्तराखंड)
मो.- 9411154939

अखिलामृतम्

– रामवल्लभ आचार्य

श्री अखिलेन्द्र मिश्र की ख्याति यूँ तो एक सशक्त अभिनेता, फिल्म तथा रंगमंच में लगभग चार दशक से सक्रिय व्यक्ति के रूप में है किंतु वह भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के अध्येता और चिंतक भी हैं, यह कम लोग ही जानते हैं। देवकीनंदन खत्री के उपन्यास चंद्रकांता संतति पर आधारित टीवी सीरियल चंद्रकांता में क्रूर सिंह की भूमिका में उनका अभिनय आज भी आम आदमी के मन मस्तिष्क में जीवंत है। हाल ही में अनंग प्रकाशन, दिल्ली द्वारा उनका काव्य संकलन अखिलामृतम् प्रकाशित हुआ है जिसमें उनकी 25 कविताएँ सम्मिलित हैं। अपनी बात में श्री मिश्र का कहना है अखिलामृतम् की एक-एक कविता ब्रह्म मुहूर्त में लिखी गई है।

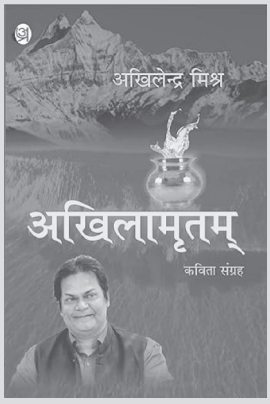

पुस्तक : अखिलामृतम्
लेखक : अखिलेन्द्र मिश्र
प्रकाशक : अनंग प्रकाशि, दिल्ली
मूल्य : 225 /-

ये कविताएँ मेरे अध्यात्म, अध्ययन, अनुभव और अनुभूति की परिणाम हैं जो शब्दों के रूप में अर्थ और रस से युक्त हैं। पुस्तक की भूमिका अथवा सुभानुशंसा में छः साहित्य मनीषियों ने इन कविताओं के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं। सभी ने उनकी भावाभिव्यक्ति एवं काव्य शैली की सराहना की है।

अखिलामृतम् में जिन रचनाओं को संकलित किया गया है उनके शीर्षकों से ही उनकी विषय वस्तु को जाना जा सकता है। जैसे शब्द, नाटक, प्रवासी, जड़, विद्या, चेतावनी, कर्म, धर्म, चेतना, प्रेम, नवयुग, नारी, वह देख रहा है, ब्रह्मा, कविता, शिव, मनुष्य, ध्यान, दान, नालंदा, भारत, राममय रावण, बाढ़, गीत एवं हमार माई भोजपुरी।

शब्द कविता में कवि ने शब्द की विस्तृत व्याख्या की है। कबीर के माध्यम से वे कहते हैं-

शब्द ही सृजन शब्द ही संहार/ बिना अर्थ जाने मत कर शब्द का उच्चार /हम में तुम में/ चौदहों भुवन में /शब्द ही गुंजायमान।

नाटक शीर्षक कविता में वे कहते हैं-**संस्कृति का प्रतिबिंब नाटक/ समाज का दर्पण नाटक/ रंग कर्मी का तर्पण नाटक/ अभिनेताओं का समर्पण नाटक।**

प्रवासी में भी कवि मानव जीवन को प्रवासी बताते हुए कहता है- **जीवात्मा इस संसार में/ प्रवास करने आती है/ यात्रा समाप्त होते ही/ अपने घर चली जाती है।**

जड़ में भी आधुनिकता की चकाचौंध में अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का आग्रह करते हैं-

अपनी जड़ से जुड़ना होगा
जड़ को जानना होगा
जड़ का संवर्धन करना होगा
जड़ में पानी देना होगा।

विद्या शीर्षक कविता में भी समझ में आई विकृतियों के लिए मैकाले की शिक्षा प्रणाली को दोषी मानते हैं-**अंग्रेज चले गए/ नहीं गई अंग्रेजी और अंग्रेजियत।**

चेतावनी शीर्षक कविता में जहाँ कवि ने प्रकृति के विनाश पर चिंता प्रकट करते हुए मानवता पर छाए खतरों के प्रति चेताया है। कर्म शीर्षक कविता में जीवन में कर्म की प्रधानता प्रकट की है तो धर्म शीर्षक कविता में भी धर्म के शास्त्रोक्त लक्षण बताते हुए धर्म व संप्रदाय का अंतर स्पष्ट करते हैं। चेतना कविता में भी उनका कहना है-

आत्म शक्ति को जाग्रत करती है चेतना /आत्म साक्षात्कार है चेतना /
मानव को चैतन्य बनती है चेतना।

प्रेम को कवि सत्य और सनातन बताते हुए कहता है- **प्रेम रस है/ प्रेम भाव है/ प्रेम योग है/ प्रेम वियोग /प्रेम साधना/ प्रेम तपस्या।**

नवयुग में कवि वर्तमान को कलयुग के अंत का सूचक मानते हुए

नारी नवयुग के प्रति आशान्वित है। शीर्षक कविता में स्त्रियों पर होने वाले अनाचार व अत्याचारों का आक्रोश व्यक्त करता है। वह देख रहा है कविता में मिश्रा जी अविहित कर्म करने वालों को सावधान करते हैं। ब्रह्म में ईश्वर के साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त किया गया है तो कविता में काव्य कर्म की दुरूहता रेखांकित की गई है।

कविता 'शिव' में कवि प्रत्येक जीव में शिव के अंश होने का प्रतिपादन करता है जबकि 'मनुष्य' में कवि का कथन है–'**जीवन एक उत्सव है आनंद है / नर से नारायण बनने की यात्रा है।**'

ध्यान शीर्षक रचना में ध्यान योग का महत्व बताया है तो 'दान' कविता में दान की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। नालंदा विश्वविद्यालय के इतिहास एवं वर्तमान को रेखांकित करती है कविता नालंदा। भारत कविता में कवि का कहना है–

भा का अर्थ प्रकाश/ रहे सदा प्रकाश में रत/ वही है भारत।

'राममय रावण' कविता में कवि ने विष्णु अवतार राम के द्वारा राक्षस जाति के उद्धार हेतु उनसे शत्रुता मोल लेने के विचार की स्थापना की है। बाढ़ शीर्षक कविता में बार-बार बाढ़ की विभीषिका का सामना करने वाले जन समुदाय के प्रति शासन की उदासीनता पर प्रश्न चिह्न खड़ा किया गया है। 'गीत' तथा 'हमार माई भोजपुरी' शीर्षक कविताओं में अपनी भाषा बोली के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया गया है।

अखिलामृतम् का आद्योपांत अनुशीलन करने पर यह बात परिलक्षित होती है कि भारतीय अध्यात्म और दर्शन का सार इन कविताओं में समाहित है। गीता के कर्मयोग के सिद्धांत को भी इनमें देखा जा सकता है। लेखक ने विभिन्न शब्दों का व्यापक विश्लेषण किया है जिनके आधार पर शीर्षक निर्धारित किए गए हैं। भाषा प्रांजल है किंतु सहज होने से ये कविताएँ संप्रेषणीय हैं। कविताओं की शैली अभिधात्मक है और अनेक स्थानों पर ऐसा आभास होता है कि गद्य को खंडित कर कविता का रूप दिया गया है। कुल मिलाकर यह कवि की सार्थक कृति कही जा सकती है।

101, रोहित नगर, फेज -1
बावड़िया कला,
भोपाल-462039 (म.प्र.)

- पत्रांश

अक्षरा के मार्च के अंक में भारत में प्रचलित विभिन्न भाषाओं की लिपियों की जानकारी प्राप्त होना काफी सुखकर लगा। भाषा में लिपि का बहुत महत्व है। लिपिबद्ध होने के बाद ही हमारे धर्म ग्रंथ इतने लोकप्रिय हो पाए और साहित्य के दूसरे विभिन्न अंगों का विस्तार हुआ। मुस्लिम शासन सबसे पहले सिंधबाद, पंजाब में हुआ और उसका सबसे अधिक प्रभाव लिपि पर पड़ा। बोलचाल की भाषा चाहे आम लोगों की सिंधी और पंजाबी ही रही पर लेखन की भाषा फारसी लिपि जिसे आज हम उर्दू कहते हैं हो गई। सिंधी अभी भी अधिकतर इस लिपि में लिखी जाती है। कालांतर में फारसी में स्थानीय भाषाओं का मिश्रण हो जाने पर वह काफी सरल होकर उर्दू करने लगी पर लिपि भी तो वही रही। गुरबाणी की कई पुरानी हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उर्दू में ही मिलती हैं किंतु हिंदू व्यापारी पंजाब में अपना हिसाब-किताब दूसरी लिपि में करते थे। सिखों के दूसरे गुरु अंगद देव जी ने उस लिपि में कुछ परिवर्तन करके गुरु वाणी में लिखने की प्रथा शुरू की। पाकिस्तानी पंजाब की बोलचाल की भाषा भी पंजाबी ही है और वहाँ पर उर्दू लिपि में लिखी जाती है और उसे लिपि को वहाँ शाह मुखी कहते हैं।

- अमरजीत कौर, भोपाल (म. प्र.)

लोक मिथक मूल्य और सौंदर्य दृष्टि

- भवेश दिलशाद

क्या मिथ और लोक साहित्य समानधर्मा हैं? इन शब्दों के मूल में अंतर है तो क्या है? सबसे पहले संस्कृति को समझना होता है। संस्कृति के अंतर्गत धार्मिक रीतियाँ हैं, इनसे बँधा साहित्य मिथ या पुराख्यान समझा जाता है। चूँकि लोक परिवर्तनशील है इसलिए इतिहास के अनेक आख्यानात्मक तत्व (गल्प मिश्रित भी) 'मिथक' के रूप में प्रचलित हो जाते हैं। लोक साहित्य में कल्पना और अनुभवों का दूध-पानी जैसा मेल होता है। सांस्कृतिक आख्यानों, विश्वासों, मान्यताओं, मिथकों आदि पर टीका-टिप्पणी, प्रतिक्रियाओं और आचार-व्यवहार के तालमेल से लोक साहित्य, कलाओं की धारा प्रवाहित हुआ करती है। 'लोकरंग' की भूमिका यहाँ तक दावा करती है कि लोकगीतों के वाचिक परंपरा में ऐसे तमाम तथ्य ज़िंदा रह जाते हैं जो तोड़-मरोड़ कर लिखे गए इतिहास को झकझोरते हैं। लोक संस्कृति के अध्येता श्यामसुंदर दुबे के शब्दों में, 'संस्कृति एक गतिशील क्रिया चेतना है। चूँकि जीवन-प्रणाली भी निरंतर गति का ही परिणाम है इसलिए जीवन-विकास के आलोक में संस्कृति की छवियाँ भी नए-नए रंगों-रूपों में अभिव्यक्त होती रहती हैं।'

पुस्तक : लोक मिथक मूल्य और सौंदर्य दृष्टि
लेखक : श्यामसुंदर दुबे
प्रकाशक : विजया बुक्स, 1/10753 सुभाष पार्क, गली नं. 3, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मूल्य : 450 /-

मूलरूप में, सभ्यताओं का विकास कृषि आधारित रहा या आखेट आधारित। भारत (अधिकांश) को कृषि से विकसित सभ्यता के रूप में समझा जाता रहा है। जब हम भारत के लोक की चर्चा करते हैं तो यह मूल अवधारणा केंद्र में रहती है। यही नहीं, हम एक भू-भाग की वृत्तियों से कुछ हद तक उस दूसरे भू-भाग की वृत्तियों को भी समझ सकते हैं, जिनमें ऐसे किसी मूल तत्व की समानता हो। 'इकोनॉमीज़ रॉयल्स' पुस्तक में दर्ज है, 'खेती और पशुपालन फ्रांस की क्षुधा शांत करने वाले दो स्तन रहे हैं।' जिस तरह भारत के तमाम हिस्सों में हम खेती आधारित त्यौहारों व उत्सवों को समझते हैं, उसी तरह फ्रांस (यूरोप के अनेक भागों में भी) में कृषि उत्सव लोक की आत्मा में रचे-बसे हैं। इतिहास भले ही सामंती ढंग से लिखे जाते रहे हों, लेकिन हमारी सभ्यताओं की आत्मा लोकजीवन में रही है। जैसे भोजपुरी लोकगीतों पर एक शोध आलेख में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा, 'प्राचीन समय के स्थानीय नायकों के गुणगान करने वाले गीतों की एक पूरी शृंखला उत्तर प्रदेश राज्य में प्राप्त होती है, जिस तरह इंग्लैंड या अन्य देशों में मिलती है।' 'लोक मिथक, मूल्य और सौंदर्य दृष्टि' पुस्तक में श्यामसुदंर जी लोक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को समझने के लिए खिड़कियाँ खोलते दिखते हैं।

'जीवन मूल्यों के आधार' खंड पुस्तक का महत्त्वपूर्ण भाग है। लेखक लोक को यहाँ सर्वोच्च स्थापित करते हुए मनुष्यता व प्रकृति के बीच एकात्मता को विवेचित भी करता है। स्पष्ट करता है, 'लोक अहंकार के तिरोहण का स्थल है। यहाँ मनुष्य की पहचान उसके मनुष्य होने से है। यही कारण है कि लोक-कथाकार और लोक-गीतकार तक अपने नाम के व्यामोह में नहीं पड़े।' साहित्य ही नहीं, सभी लोक कलाओं को लेकर यह समझ बन जाती है कि यहाँ कला हो या उसका आस्वाद, सब सामूहिक है। हेतु एवं लक्ष्य, जो हो, व्यष्टि नहीं समष्टि, मैं नहीं हम। 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है।' अरस्तु की यह स्थापना इस संदर्भ में केंद्रभाव कही जा सकती है।

अहंकार का तिरोहण ही नहीं, समष्टि में भय का भी विसर्जन संभव है। लोक साहित्य एवं कलाओं में हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का असीम अवसर दिखता है। मांगलिक संस्कारों से जुड़ी रीतियों के समय विशेष में गालियाँ गाने की परंपराएँ हों या अश्लील गीत गायन अथवा अभिनय/स्वांग या फिर मिथकों में वर्णित 'पवित्र' कथापात्रों का प्रसंग विशेष में प्रतिरोध हो, लोक में भय तो क्या संकोच तक नहीं दिखता। एक लोकगीत में सीता द्वारा राम को उनके अधिकार से वंचित करने का उद्धरण हो या एक अन्य लोकगीत में एक माँ के रूप में कौशल्या तक को खारिज कर देने का उदाहरण, श्यामसुंदर जी ने पुरज़ोर ढंग से उद्घोष किया है, 'मा भैः मा भैः। भय मत करो, डरो नहीं जो कहना है कहो। लेकिन कहने का तरीका होता है लोक का।'

यह तरीका क्रोध के बरक्स करुणा को तरजीह देने का है। लोक प्रतिरोध करता है तो ऐसे कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। संवेदना की गहराई में जाकर एक मानवीय प्राकृतिक मूल्य का अनुसंधान करते हुए लोक जिस स्वर को प्रतिष्ठित करता है, उसमें वैचारिकता और आध्यात्मिक के साथ ही मार्मिकता का दृढ़ अवलंब

होता है। इसी कारण ये मान्यताएँ दीर्घजीवी परंपराओं के रूप में विस्तार पाती हैं। वास्तव में, यह पुस्तक लेखक द्वारा समय-समय पर दिए गए उद्बोधनों या आलेखों का समायोजन है। पहले खंड में ऐसे लेखों का संकलन है, जो लोक और मिथक के संबंध को समझाते हैं। 'मिथक' शब्द के बारे में उल्लेख मिलते हैं-आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने मिथ (MYTH) या माइथोलॉजी शब्द से 'मिथक' शब्द गढ़ा था। तभी से हिंदी में इसे लेकर सहमति-असहमति रही। डॉ. नगेंद्र 'कल्पकथा' शब्द के पैरोकार रहे तो कैलाश वाजपेयी 'पुराख्यातत्व' के। समकालीन साहित्य अध्येताओं का भी एक वर्ग 'मिथक' शब्द से सहमत नहीं है। फिर भी कोई चर्चा किए बग़ैर, नि:संकोच इस शब्द का प्रयोग कर श्यामसुदंर जी ने इसे समर्थन दिया है।

पहले खंड के लेखों से विषय की समझ बनती चलती है। पाठक लोक के बारे में तथ्यों एवं अवधारणाओं से परिचित होता है। साथ ही, लेखक की अभिरुचि के संकेत भी पाता है, जो लोक के तमाम विश्वासों (अंधविश्वासों भी) के साथ खड़ी दिखती है। लोक की हर मान्यता हर रीति को स्थापित करने का आग्रह दिखता है। हालाँकि यह आग्रह पंचम सुर में नहीं है। यहाँ उस तरह का लेखन नहीं है, जो हर धार्मिक (या कर्मकांडी) गतिविधि में वैज्ञानिकता का दावा करता है। यहाँ कलम सजग है और कहती चलती है, 'लोक-विश्वास कार्य-कारण की संयोग-संहिति के परिणाम हैं। ये विश्वास किसी वैज्ञानिक कसौटी पर खरे उतरें यह आवश्यक नहीं है।'

'लोक प्रतीकों की अवधारणा' शीर्षक वाला लेख सपाट एवं निष्प्रयोजन प्रतीत होता है। इसे पढ़कर पाठक के अनुभव कोश में इज़ाफ़ा नहीं होता। पश्चिम में प्रतीकों को लेकर साहित्य एवं कला माध्यमों में महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। डैन ब्राउन लिखित 'द डा विंची कोड' व 'एंजेल्स एंड डीमन्स' जैसी पुस्तकें ईसाइयत या यूरोप में प्रचलित प्रतीकों पर न सिर्फ़ विमर्श प्रस्तुत करती हैं बल्कि फैक्ट्स और फिक्शन के मेल से ऐसी रोचक कथा सौंपती हैं, जो बेस्टसेलर में शुमार होती है। इधर, प्रतीकों को लेकर स्पष्ट समझ भी नहीं बन पाती। ऐसे दो-चार लेखों को छोड़ दिया जाए तो श्यामसुंदर जी के शेष हर लेख में इतनी गुंजाइश है कि अलग-अलग समीक्षा की जाए। कहा जा सकता है कि यह पुस्तक विषय विशेष के शोधार्थियों और पाठकों के लिए रुचिकर है।

अंतिम खंड में कला दृष्टियों से लोक के प्रति समझ बनाने में लेखक सफल हुआ है। विशेष तौर से लोकगीत, गायन, लय, संगीत और नृत्य संबंधी आलेख सूचनापरक, रोचक, तथ्यात्मक तो हैं ही, बारीक़ अवलोकन एवं विश्लेषण से संग्रहणीय भी दिखते हैं। लोकगीतों की लय और संगीत को लेकर पूर्व में काफ़ी महत्त्वपूर्ण काम हुआ है। अंग्रेज़ी हुकूमत के दौरान ग्रियर्सन ने भारत का भाषा सर्वे करवाया था। उन्होंने भोजपुरी लोकगीतों के गायन और संगीत पर अनेक लेख लिखे थे, जो यूरोप में प्रकाशित भी हुए थे। उसके बाद सूज़न वैडली, मार्कस और जॉन गम्पर्ज़ जैसे विदेशी विद्वानों ने इस विषय पर शोध एवं विमर्श प्रस्तुत किए। विशेषत: बुंदेली लोकगीतों के संदर्भ में देवेंद्र सत्यार्थी, बलभद्र तिवारी आदि विद्वानों के लेखन के अलावा अकादमिक अध्ययन बड़ी संख्या में हुए हैं। श्यामसुंदर जी के लेखों में पूर्ववर्ती अध्ययनों के हवाले न के बराबर हैं जबकि वह कुछ विद्वानों के साथ चर्चा के प्रसंग बताते हैं।

श्यामसुंदर जी ने हिंदी पट्टी की लोक कलाओं पर चर्चा करते हुए अधिकांश उद्धरण बुंदेलखंड से प्रस्तुत किये हैं (यही लेखक की जन्म एवं कर्मभूमि रही) फिर भी अन्य अंचलों के लोक के संकेत दिये हैं। वैसे ही, जैसे लोक में एक समान बिंदु से हम कई देशों के लोक के तारों को जोड़ लेते हैं। उनकी भाषा में पांडित्य का स्वाभाविक (क्योंकि लेखक प्राध्यापक रहे) आग्रह है। विशेषकर समीक्षात्मक लेखों में लेखक मिथकीय समीक्षा पद्धति है। और, अंतिम दो खंडों के अधिकतर लेख इस चिंता के साथ समाप्त होते हैं कि लोक कलाओं पर संकट हैं। लेखक की दृष्टि में ये संकट बाज़ार के कारण हैं, वैश्वीकरण के कारण हैं, अर्थव्यवस्था आधारित जीवन पद्धति के कारण हैं, तकनीकीकरण और संचार क्रांति के कारण हैं। लेखक सजगता से एक स्थान पर कहता भी है, यह लेख विलुप्त हो रही लोककला का मर्सिया नहीं है। फिर भी, एक नैराश्य महसूस होता चलता है। यहाँ राजस्थानी लोकनाट्य 'जातरा' के मुख्य पात्र 'रास्ता' का संवाद बरबस कौंध जाता है-वह यानी रास्ता आदिपुरुष के पहला क़दम बढ़ाने की इच्छा के साथ ही जन्मा था (यानी अंतिम पुरुष के अंतिम क़दम की इच्छा तक रहेगा ही)।

लोक साहित्य अध्येता नर्मदा प्रसाद गुप्त का कथन भी स्मरणीय है, जो उम्मीद देता है कि लोक कलाओं की छवियाँ निरंतर नए-नए रंगों-रूपों में अभिव्यक्ति का रास्ता ढूँढ़ लेंगी। 'लोक के बदलाव से लोकसंस्कृति में परिवर्तन होता है। लोकगीतों में यह परिवर्तन साफ दिखायी पड़ता है, जितना गद्य यानी लोककथाओं और लोकनाट्यों में अस्पष्ट-सा रहता है। लोककलाओं में केवल लोकप्रस्तर मूर्तिकला में परिवर्तन का प्रभाव लक्षित होता है। शेष में परंपरा की जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि बदलाव का उतना प्रभाव नहीं मालूम पड़ता।' अंतत: लगता है कि पुस्तक का शीर्षक 'लोक कलाएँ-मिथक, मूल्य और चिंताएँ' अधिक उपयुक्त होता।

'प्रणाम', 161 बी,
हनुमान मंदिर के सामने वाली गली,
शिक्षक कांग्रेस नगर, फेज़ 2,
बाग मुगलिया, भोपाल - 462043 (म.प्र.)
मो.-9560092330

समय के साक्ष्य

-पद्मा सिंह

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा था कि जो व्यक्ति अपने समय के बारे में लिखता है वही समस्त मनुष्यता और सभी युगों के लिए लिख सकता है। सामाजिक मूल्यों और सरोकारों के परिपेक्ष में कवि अपनी निजी अनुभूतियों को शाब्दिक लय प्रदान करता है, उसकी रचना संवेदनाओं से जन्म लेती है, मूल्यों से पकती है और फिर आत्मा से आत्मा का संवाद रचती है। और फिर शब्द खामोशी तोड़कर नए अर्थ तलाशने लगते हैं, मानवीय संवेदनाओं में झंकृत होते शब्द अनहद नाद से गूँजने लगते हैं। तब जीवन के प्रति आशा का नया सूर्य उदित हो जाता है। वर्तमान समय में हताशा, कुंठा और विश्वास का घना कोहरा व्याप्त है जिसमें सत्य धुँधला सा गया है। ऐसे समय में कविता का अनूठा संसार ही नई रोशनी से हृदय के अंधकार को मिटाकर जीने की नई उम्मीद जगाता है। कवि देवेंद्र रावत के नए काव्य संग्रह 'समय के साक्ष्य' की कविताओं से साक्षात्कार करते हुए इनके संवेदनशील हृदय से परिचय होता है। इनके मनोलोक में विविध भावों के मनोरम पुष्प हैं जिनके रंगों में जीवन का हर रंग चमकदार और आनंद का सृजन करने वाला है। 'कवि क्यों लिखता है।' 'कवि कैसे चुप रह सकता है।' ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर कवि की रचनात्मक ऊर्जा को स्पष्ट करते हैं।

पुस्तक : समय के साक्ष्य
लेखक : देवेन्द्र कुमार रावत
मूल्य : 175 /-

'अंतहृदय से जब मन हो जाता नियंत्रित
कभी ज्ञान दीपक को कर प्रज्ज्वलित
जब देखता है कि / कोई दिया कहीं बुझता है।।'

कवि कहता है कि कवि यदि समय को शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं देगा तो इस तटस्थता को समय कभी माफ नहीं करेगा।

'सूरज पर भारी हो जायें,/ जब अमावासी अँधियारे।
किरणों को क्रय करने के भी होने लगे हों इशारे।
तब कवि कण-कण में विद्रोह की भाषा भरता है।'

कवि का ऐसा मानना है कि-**'भ्रष्ट हो गया तंत्र मंत्र सब हो गए निष्फल।**
काली करतूतों से लगे काँपने आने वाला कल।
संवेदनाओं पर लग जायें जब इतने पहरे
कागज पर खुदे तालाब, होने लगे हों गहरे।'

तब कवि कर्म धर्म छोड़ कैसे तटस्थ रह सकता है और ऐसे समय में कवि कालचक्र के माथे पर विद्रोही भाषा लिखकर अपना होना जताता है। जीवनसंग्राम में भ्रष्टाचार रूपी कौरवों के समूह में घिरे अभिमन्यु की तरह घिरा है, आम आदमी जिसकी असमय ही हत्या कर दी जाती है। वर्तमान दुर्व्यवस्थाओं का बड़ा ही सशक्त चित्रण किया गया है। आम आदमी सत्ता संपन्न लोगों और हिंसा का शिकार हो रहा है। हर जगह राजनीतिक गोटियाँ फिट हो रही हैं। ऐसे संक्रमण काल में खुशामदियों को ही देश की विकासशील योजनाओं व नीतियों का लाभ मिलता है। शोषण रूपी दैत्य बेसहारा और कमजोरों का रक्त पी-पीकर अपने आतंक का साम्राज्य। फैलाता है और विरोध का कोई क्षीण स्वर भी धरती के किसी कोने से सुनाई नहीं देता। दूसरों का हक छीनने वाले मनुष्य 'स्वान' और 'लोमड़ी' की चालाकियों से भरे हुए हैं। वे मनुष्य के रूप में ऐसे जानवर हैं जो मनुष्य का ही शिकार करते हैं। प्रगति कितनी खोखली है यह बताते हुए कवि कहता है कि प्रगति का फिल्मांकन करने कोई टीम गाँव जाए और किसी अभिनेत्री से गरीब स्त्री का अभिनय करवा कर फोटो खींचे, यही नकली चित्रण होता है। साहित्य और संस्कृति में आई गिरावट का चित्रण करते हुए वे -

'मात्र भाषण ही दीजिए' में अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहते हैं -

'खूब फूलों के हार पहनिए / आत्म प्रशंसा के शब्द सुनिए
और सुनाइए।/ सभ्य दिखने के लिए
साहित्य संस्कृति के नाम पर / या पहुँचने के लिए
किसी राजनीतिक मुकाम पर / आयोजन करिए और करवाए।।'

ग्रामीण वातावरण में जो जहर घुल रहा है उससे रूबरू कराती हुई कविता है -

'खुश ना होइए महाराज / जो मिला गाँव को/ खा रहे हैं पंच।
नित नए ढंग से / रच रहे प्रपंच
परमेश्वर को आने/ लगी है लाज
स्वार्थ आँधियों की/ उड़ रही है धूल।
कर्तव्य किसके क्या/ सब गए भूल।
स्तुति में माहिर हो गया है तंत्र'।

मीडिया, खबरें, फ़िल्में और अन्य माध्यम देश की प्रगति का बढ़-चढ़कर बखान करते हैं। जबकि वास्तविकता यह है अखबारों के लिए वे खबरें बिकाऊ नहीं हैं जो संवेदनाएँ जगा सकती हैं। इसीलिए वे मुख्य पृष्ठ की खबरें कभी नहीं बनती। राष्ट्र उत्कर्ष, राष्ट्रीय धर्म के आराधक अमर शहीदों को समर्पित राष्ट्रभक्ति की भी कुछ कविताएँ हैं जिनमें शहीदों को विस्मृत कर देने की पीड़ा है और अतीत को याद करते हुए वर्तमान की दुरावस्था के प्रति चिंता व्यक्त की गई है।

'जिनके संयम से प्रकृति भी पुलकित रहती थी।
गंगा सी भक्ति धारा जीवन में अविरल बहती थी।
जो नवीन और पुरातन के सेतु बन जाया करते थे।
आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान नव पीढ़ी को दिया करते थे।
उस देश ने क्यों गढ़ ली हैं / स्वार्थ पूर्ति की परिभाषाएँ।'

वर्ग संघर्ष सदा से चला आ रहा है! गरीब और गरीब होता जा रहा है और

अमीर और अधिक अमीर हो रहे हैं। कवि उम्मीद करता है कि जब यह भेद मिट जाएगा तब –

'एक त्यौहार ऐसा भी हो जाए। / जब कोई भूखा भरपेट रोटियाँ खाए।।
त्याग तप बढ़ें दिन रात तरु जैसे / मिले जब फल तो दूसरा पाए।
जैसे आते हैं इबादत और पूजा को / वैसे कोई किसी गरीब के घर जाए।।'

संग्रह की कुछ कविताएँ अध्यात्म और ईश्वर के प्रति समर्पण भाव को जगाने वाली हैं। हमें धर्म को देखने की दृष्टि बदलनी होगी। राम के चरित्र से शिक्षा लेनी होगी।

'वह ज्ञान किस काम का है। / चलो भक्ति की शरण में।
तो दुष्कर्मों से बचने बचाने का / काम तो राम का है।'

कवि राम की कृपा से मनुष्य के अंतस में बैठे रावण का संहार करना चाहता है। इसी प्रकार एक कविता में कबीर का पिया भी वही राम है जो धर्म, जाति, वर्ग, स्त्री-पुरुष सभी को बिना भेदभाव के सहज ही उपलब्ध है। बस मन की आँखों से उसे देखने की जरूरत है। ईश्वर और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था ही मनुष्य को आस्था और विश्वास की ओर ले जाती हैं। धर्म के प्रति श्रद्धा ही अनंत ब्रह्मांड की दूरी मिटा सकती है। इसके बिना मनुष्य की सभी साधनाएँ अधूरी हैं। मनुष्य का मनुष्य के ऊपर विश्वास होना एक सुंदर भविष्य की आशा जगाता है। धर्म का प्रचार-प्रसार, रैलियाँ, धार्मिक यात्राओं में भक्ति का भाव दिखाई नहीं देता। धर्म का अर्थ बड़ा व्यापक है। नैतिक मूल्यों के बिना चारों तरफ सिर्फ हाहाकार ही हाहाकार है। धर्म का अर्थ हमने बहुत सीमित लिया है इसीलिए मानवता खंडित हो रही है। समय मनुष्य में होने वाले परिवर्तन का जो चित्र उकेर रहा है, वह आने वाली पीढ़ियों के लिए इतिहास बन जाएगा।

'अन्य' शीर्षक से कुछ कविताएँ हैं जिनमें विविध रंगों के मिले-जुले इंद्रधनुषी रंग हैं। जिसमें शहरों से गाँवों की ओर पलायन करते हुए लोग हैं। सभ्यता और संस्कृति के बदलते हुए अर्थ हैं, जीवन की निस्सारता है और समय के प्रति बदलता हुआ नजरिया है। कोरोना पर भी कुछ कविताएँ हैं जिसमें मनुष्य के अनियंत्रित होते जीवन को चित्रित किया गया है और नियमबद्ध जीवन की ओर लौटने की बात की गई है। जीवन में फैला प्रदूषण कभी हल्के में मत लेना और नियमों की लक्ष्मण रेखा को पार न करने की बात की गई है। बेटियों की चिंता भी की गई है। भ्रूण हत्या के प्रति चिंता जताते हुए वे कहते हैं –

'होने दे रहा है तुम्हारी नृशंस हत्याएँ/ दरबारियों की तरह सो गई हैं संवेदनाएँ
पर यह खतरनाक खामोशी / तूफान से पहले की शांति है।
इस चुप्पी को तोड़ो / समय की धारा को
महाविनाश की ओर मत मोड़ो।'

गर्भस्थ बेटी माँ से कहती है कि –

'अब तू इतना कर / जो महत्व प्रेम
करुणा मुझ में दी है / उसका कुछ अंश / इन नराधमों में भी भर।'

बचपन ही तय करता है कि मनुष्य युवावस्था में समाज और राष्ट्र को क्या दे सकता है। बचपन की सहजता ही मनुष्य को मनुष्य होना सिखाती है। नई पीढ़ी से कवि कहता है कि मनुष्य जब तक खुद को नहीं समझेगा तब तक वह राष्ट्रहित की भावनाओं पर अंकुश नहीं लगा सकता।

'वर्तमान समय में मंत्रहीन हो गए हैं लोग / विश्वास उठता जा रहा है साधनाओं पर
हर कदम पर दंश का भय है। / आतंकित हुआ माहौल है।
कैसे करें विश्वास / दी गई इन शुभकामनाओं पर।।
निरंकुश हो गए हैं लोग / स्वच्छंदता अधिकार बन गई है
निज हित ने किया है कुठाराघात / राष्ट्रीय हित की भावनाओं पर।।'

अधिकार मद में इंसान इतना अंधा हो चुका है कि वह अपने आप को भगवान मानने लगा है।

'दुर्लभ देह पाकर/ भूल गए ज्ञान/इंसान ही बने रहो/ मत बनो भगवान।।'

आज मानव समय और प्रकृति को चुनौती दे रहा है। प्रकृति को चुनौती देना मनुष्य का काम नहीं है।

'सूर्य को समुद्र को/ बादलों को हवाओं को
हमने दी है चुनौती बेशुमार/ जनसंख्या बढ़ाकर हरे-भरे पेड़ काटकर।'

इन सबसे कवि का मन व्यथित है। सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेश में होने वाला परिवर्तन कवि को सोचने पर मजबूर करता है और वह कहता है कि ऐसे समय में हम क्यों खुशहाल देश की कल्पना करते हैं जब पूरे के पूरे गाँव का नरसंहार हो जाता है। कितना जहरीला हो गया है आदमी।

'रक्त से सने हुए समाचार देखिए ।/ आग उगलते हुए यह त्यौहार देखिए।

हिंसा और क्रूरता को अपना हथियार बनाने वालों से वह कहता है कि-**'कुछ तो सोचो बेवजह बेगुनाहों को न मारो।'**

यारों हिंदू मुस्लिम दंगों में मानवता को मत नष्ट करो। जानो ये बंदूकें तुम्हें किसने दी और क्यों दी हैं? इन राजनीतिक षड्यंत्रों को पहचानो। प्रकृति का दोहन सभ्यता और संस्कृति का विनाश है। जब मानव प्रकृति को अहंकार और सत्ता के मद में चुनौती देने लगता है तब प्रकृति भी विद्रोह कर उठती है और अपना प्रलयंकारी भयानक स्वरूप दिखाती है। इस उथल-पुथल के युग में कवि सांप्रदायिक सद्भाव की आशा करता है। संग्रह की अंतिम कविता यादगार कविता है जिसमें दर्शन भी है और जीवन के प्रति आशाएँ भी हैं – **'कितने चढ़े रंग**
कितने उतर गए ।/ काया को कितना
बदरंग कर गए/ अब शाश्वत।
श्याम रंगी चादर ओढ़ता हूँ।
मुझे पता है एक दिन/ शून्य में मिल जाऊँगा
दूर कहीं तारे सा/ यादों में टिमटिमाऊँगा।
प्रकाश धर्मी हो गया हूँ/ अब धारा के हाथ जोड़ता हूँ।'

एक दिन ऐसा समय आता है जब मनुष्य इस धारा को छोड़कर उस परम तत्व में विलीन हो जाता है, वही उसका अंतिम सत्य है इसीलिए कवि कबीर की श्याम रंगी चादर ओढ़ने की बात करता है और पृथ्वी की वंदना करता है। कवि देवेन्द्र के भाव साम्राज्य में समय की दुश्चिंताएँ हैं, मानवीय संवेदनाएँ हैं और उम्मीद भरे भविष्य का आव्हान भी है। कविता का यही मूल धर्म भी है कि वह भटकी हुई मानवता को सही राह दिखाए। कवि का यही आदर्श है कि मनुष्य अच्छे समय की ओर कदम बढ़ाए तभी मानव कल्याण संभव है।

108 टेलीफोन नगर, एक्सटेंशन कनाड़िया रोड
पेरामाउंट बिल्डिंग के सामने,
गली नं.5. इंदौर-452016 (म.प्र.)
-09165758175

छोटे मुँह छोटी सी बात

- महेश श्रीवास्तव

श्री संतोष तिवारी की पुस्तक 'छोटे मुँह छोटी सी बात' अपूर्व और अद्भुत है। अपूर्व इसलिए क्योंकि कार्यक्रमों के संचालन की कोई पुस्तक आज तक प्रकाशित हुई हो, ऐसा देखने में नहीं आया और अद्भुत इसलिए क्योंकि, संचालन में उद्धरणों की ज्ञानमय छटा जैसी बिखरी हुई है वह अपने आप में एक सुभाषित कोश का आभास देती है। संचालन वक्ताओं के मध्य संधि सेतु बनाना होता है और यह संधि सेतु ऐसा है जैसी भोर की सुषमा अथवा सांध्यकाल की स्वर्णिम आभा। आप श्री तिवारी का इकबालिया बयान पढ़ कर ही समझ सकते हैं कि अध्ययन और जानकारियों के स्मरण या संकलन में उनका इकबाल कितना बुलंद है। वे संचालन कला को साहित्य की किसी विद्या में नहीं मानते किन्तु, इस पुस्तक को पढ़ कर कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि संचालन कला साहित्यिक विद्या न भी मानी जाए तो भी वह एक साहित्यिक विधा है।

पुस्तक : छोटे मुँह छोटी सी बात
लेखक : संतोष तिवारी
प्रकाशक : कला समय प्रकाश, जे-191 मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)

संचालन के प्रति पागलपन समर्पण की पराकाष्ठा तक रहा होगा तभी तो उन्होंने 300 शासकीय (कुछ अशासकीय भी) कार्यक्रमों का संचालन किया और संचालन करने की कामना का यौवन अभी भी हिलोरें ले रहा है। पुस्तक में तो केवल 121 संचालनों का संग्रह है। मजेदार बात यह है कि प्राय: जिन शासकीय कार्यक्रमों का संचालन किया उनमें राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री जैसे शीर्ष पुरुष उपस्थित रहे और कई बार अपनी वाक-कला की शकर में लपेट कर उन्होंने शासन की आलोचना की नीम की निबोलियाँ इन शीर्ष नेताओं के गले के नीचे उतार दीं और किसी ने मुँह नहीं बनाया। पानी में रह कर मगर से कौन बैर मोल लेता है किन्तु, श्री तिवारी ने लिया बड़े प्रेम के साथ। पानी और मगर की बात निकली तो मुझे एक बन्दर और मगर का बचपन में पढ़ा किस्सा याद आ गया। सरोवर के किनारे के पेड़ पर एक बन्दर रहता था और पानी में मगर। बन्दर रोज पेड़ के मीठे फल गिरा कर मगर को खिलाता था। कुछ मगर खाता और कुछ अपनी पत्नी मगरनी के लिए ले जाता था। मगरनी को भी फल बहुत स्वादिष्ट लगते थे, तो उसने मगर से कहा-जो बन्दर इतने मीठे फल खाता है उसका कलेजा कितना स्वादिष्ट होगा। एक दिन तुम उसे ले आओ तो हम उसके कलेजे का मजा लेंगे। मगर पत्नी भक्त था, अहसान फरामोश भी रहा होगा तो वह बन्दर को बहला कर मगरनी के पास ले आया। मगरनी ने अपनी इच्छा बताई तो बन्दर ने कहा-अपना कलेजा तो मैं पेड़ पर ही छोड़ आया। जाहिर है बन्दर कलेजा लेने गया तो लौट कर नहीं आया। शासक के सामने शासन की गलतियाँ बता कर संतोष तिवारी इसी तरह अपनी प्रत्युत्पन्नमति से बचे रहे। शासकीय सेवक की मर्यादा आग के दरिया की तरह थी जिसमें उन्होंने अभिव्यक्ति की काठ की नाव पर सत्य का लेप किया, भाषाई सम्मोहन का मंत्र पढ़ा और खूब नौका विहार किया।

श्री तिवारी ने सभी क्षेत्रों के मंचों का संचालन किया और उन्हीं के शब्दों में गंगा गए तो गंगादास और यमुना गए तो यमुनादास हो गए। किन्तु, जिस ज्ञानविद्या के मंच का संचालन उन्होंने किया उसमें ऐसा लगा कि उस विद्या से उनका कम से कम सात जन्मों का रिश्ता है। साहित्य में हृदयग्राही, विज्ञान में विवेक पूर्ण, धर्म में गूढ़ रहस्यों वाले उद्धरणों को पिरोकर ऐसी मालाएँ बनाई जिन्हें पहन कर हर क्षेत्र का व्यक्ति इतरा सकता है। कार्यक्रम संवेदना का हो अथवा उल्लास का, हर अवसर उनके सटीक सेतु-संदर्भ कभी पत्थर को पानी बनाने तो कभी पत्थर को पानी पर तैराने की तिलिस्मी कला से परिपूर्ण रहे। मंच संचालन के दौरान अतिथियों को आमंत्रित करने या उनका धन्यवाद करने के वाक्यों को हटा दिया जाए तो पुस्तक एक ऐसी ज्ञान संपदा लगती है जिसमें विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य आदि सभी विषयों के विद्वानों के अनुभव सिद्ध और प्रामाणिक विचार हैं। गहन अध्ययन कर उद्धरणों का सही संदर्भ में उपयोग ज्ञान परंपरा को आत्मसात करने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। संचालन में उपयोग किए गए वाक्यों का रस तो पुस्तक को पढ़ने के रूप में निचोड़कर ही प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ उल्लेख इसलिए नहीं क्योंकि समस्या 'क्या लिखूँ, क्या छोड़ूँ' वाली है।

बड़े-बड़े मुखों वाले नामी-गिरामी लोगों के मंच पर किए गए अपने संचालनों के संकलन का शीर्षक उन्होंने 'छोटे मुँह छोटी सी बात', रखा है। बुद्धिजीवियों का मुँह छोटा ही होता है, बड़े मुँह तो प्राय: खाने के काम आते हैं। बड़ी नदियों का उद्गम, उनका मुँह छोटा ही होता है किन्तु उनके प्रवाह में पवित्र एवं प्रफुल्लित करने के अद्भुत गुण होते हैं। छोटी-छोटी बातें भी सतसैया के दोहे बन जाती हैं और छोटी-छोटी बूँदों से ही बड़ी-बड़ी बाढ़ें आतीं, सरोवर और समुद्र भर जाते हैं। श्री तिवारी विनम्रता के कमल दल हैं और उनकी अभिव्यक्ति विनम्रता की पराकाष्ठा को दर्शाती है।

धुनी आदमी जब धूनी लगाता है तो सर्वाधिक त्याग उसकी पत्नी को करना पड़ता है। श्रीमती तिवारी ने अपने सरस क्षणों का बलिदान कर श्रोताओं पर रस वर्षा का अवसर उन्हें प्रदान किया। इसलिए श्रीमती चित्रा तिवारी भी बधाई की समान रूप से हकदार हैं।

7, पत्रकार कालोनी, मुख्य मार्ग-3
भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.- 9425006180

अनंग अवतार में चार्वाक

- योग्यता भार्गव

स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में अक्सर स्त्री स्वतंत्रता की बात मुखरता से की जाती है। लेकिन बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणाम किस हद तक पहुँच सकते हैं, इसका जीवंत दस्तावेज है, प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार प्रमोद भार्गव का सद्य प्रकाशित उपन्यास 'अनंग अवतार में चार्वाक!' यह उपन्यास भौतिकवादी विस्तार और उसके दुष्प्रभाव के कथानक को एक अनूठे कथ्य और शिल्प के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाता है। भौतिकवादी चमक-दमक वर्तमान आधुनिक जीवन में नैतिक पतन का आधार बनकर प्रदर्शन की संस्कृति में कैसे दिखावे को जीवन मानने वाले अल्पज्ञानियों को छल रही है, इसे एक परिवार और उसके सदस्यों के माध्यम से अत्यंत बेबाकी से दर्शाया गया है। सर्व-सुविधाओं की चाह रखने बाले कुछ निम्न मध्यमवर्गीय शिक्षित परिवारों को इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने समूचे रूप में निगलने का काम किया है। इस गुंजलक में जब व्यक्ति उलझ जाता है तो न आचरण की शुद्धता के कोई मायने रह जाते हैं और न ही चरित्रजन्य मर्यादाओं के? इस नाते उपन्यास का संपूर्ण कथानक स्वयं लेखक द्वारा फ्लैप पर उल्लेखित टिप्पणी के इर्द-गिर्द घूमता है, जो 'भूमंडलीकरण की मायावी सच्चाई' का उद्घाटन करती है। इसी सच्चाई को कथा के पात्रों की मानसिकता में आधुनिकीकरण के स्वरूप में बड़े ही स्वाभाविक एवं दिलचस्प ढंग से ढाला गया है।

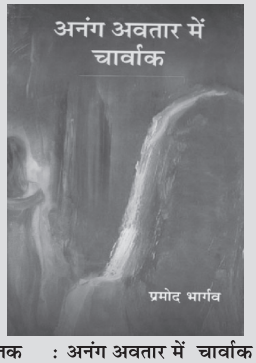

पुस्तक : **अनंग अवतार में चार्वाक**
लेखक : प्रमोद भार्गव
प्रकाशक : 2226/बी, प्रथमतल, गली नं 33/सोनिया विहार, दिल्ली-110090
मूल्य : 400 /-

इस उपन्यास की पात्र हरप्रीत गिल हैं। यही उपन्यास की मुख्य पात्र होने के साथ सरकारी विद्यालय में शिक्षिका हैं। हरप्रीत गिल अतिरिक्त महत्वाकांक्षी हैं। इसी महत्वाकांक्षा की आपूर्तियों के लिए उपन्यास के पात्र बाजारवाद की गिरफ्त में आकर उन तमाम रास्तों पर बेधड़क आगे बढ़ते हैं, जो परिवार एवं समाजिक जीवन में जोखिमों से भरे होते हुए, चरित्र, अर्थ और सामाजिक पतन का कारण बनते हैं। कथानक की शुरुआत में ही एक तरह से कथा के अंत की संभावित घोषणा है। इससे कथानक का संपूर्ण दृश्य पाठक के सामने लेखक रोचक शैली, तल्ख एवं चुटीले संवाद एवं कस्बाई बोली के साथ प्रस्तुत करता है। 'अरे, बेवकूफ! अच्छा भला कोने में बैठा-बैठा पन्द्रह बीस हजार रुपया महीना खसम (आनंद) कमवा रहा था। लुगाई बिना स्कूल जाए ही बीस हजार रुपए महीना कमा रही थी, फिर चादर के बाहर पाँव पसारने की क्या जरूरत थी? अब ओखली में सिर दिया है तो बेट्टा भुगत!'

इस नसीहत भरी उलाहना से शुरू हुए, कथानक के मूल में नायक बलवंत सिंह गिल हैं, जो अपने परिजनों के शाहखर्ची के चलते लाखों के कर्ज के बोझ तले दबे हैं। इस बोझ की कुछ हद तक जिम्मेदार हैं श्रीमती हरप्रीत गिल जो अर्द्धांगिनी के पारंपरिक पुनीत दायित्वों की फिक्र से कहीं ज्यादा, भौतिकवादी चकाचौंध की चपेट में हैं। हसरतें उन्हें असंतुष्ट बनाए रखने का काम करती हैं। इस नाखुशी के बदले खुशी की चाह उन्हें अपने पति के मित्र आनंद गुप्ता की कामाग्नि का जरिया बना देती है। लेकिन उन्हें यह सब कभी अनैतिक नहीं लगा।

संक्षिप्त में इस कथानक की पृष्ठिभूमि का उल्लेख करना मैं जरूरी समझती हूँ। उपन्यास के कथानक की मुख्य पात्रों की भूमिका में हैं हरप्रीत गिल और उनके समझौतावादी पति बलवंत सिंह गिल, जो दसवीं कक्षा अनुत्तीर्ण हैं। इनकी मूर्खता का पहला कदम एक विज्ञान स्नातक लड़की से प्रेम विवाह करना था। बलवंत दो-तीन धंधों में बाप की पूँजी को उड़ाकर अंत में मित्र आनंद गुप्ता के साथ स्टाम्प वेंडर की भूमिका में आ जाते हैं। वैसे तो उपन्यास की शुरुआत में लेखक ने उस समय की राजनैतिक गतिविधियों से पाठकों का परिचय करा दिया है, जिसके मूल में कथा विस्तार लेती है, 'घटी आर्थिक दरों की वृद्धि की होड़ में जैसे ही वैश्विक भू-मण्डलीकरण व मुक्त बाजारवाद ने गोल-गोल संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में संवैधानिक दर्जा हासिल किया, वैसे ही बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और विदेशी बैंकों ने अपना कारोबार भारत में आँधी की तरह फैलाना शुरू कर दिया। वह भी, इस देश का बहुलतावाद खत्म कर देने की अलिखित, अदृश्य शर्त पर।'

बस इसी का शिकार हुए उपन्यास के नायक-नायिका गिल दम्पत्ति। यूँ तो दोनों ने प्रेम विवाह किया था। इनका प्रेम थोड़े समय में ही बिखरने वाला नहीं रहा। हरप्रीत के पुरुष-प्रिया बन जाने के बावजूद कथा के अंत तक इनका प्रेम प्रगाढ़ बना रहा। अविश्वास की कोई दरार दिखाई नहीं दी। तीन संतानों के माता-पिता भी बन गए। यह एक अलग बात है कि इनकी लाख महत्वकांक्षाओं के बाद भी तीनों बच्चे कोई उच्च पद अपनी योग्यता के बूते प्राप्त नहीं कर पाए। क्योंकि आधुनिक भौतिकवादी चमक ने इन्हें घेर लिया था। सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने में भी नाकाम रहे। भौतिकवादी सुख-सुविधाओं के आकांक्षी माता-पिता की संतान आखिर पद-प्रतिष्ठा कैसे हासिल कर पाते?

श्रीमती गिल एक सरकारी शिक्षिका हैं। आधुनिक स्त्री के अस्तित्व को स्वाकारती श्रीमती गिल स्वयं अपने चरित्र का बयान कुछ यूँ करती हैं, 'शुरुआत तब हुई जब मैं तीन बच्चों की माँ बन चुकी थी। ऑपरेषन

कराकर मैंने परिवार नियोजन अपनाकर तीन वेतन वृद्धियाँ भी प्राप्त कर ली थीं। यौनजन्य नैतिक वर्जनाओं के प्रतिरोध ने मुझे कभी कमजोर पड़ जाने का अहसास नहीं कराया और न ही मैंने धर्मशास्त्रियों द्वारा आरोपित आदर्शों को चरित्र मूल्यांकन की कसौटी माना। जब पुरुष को इस कसौटी पर नहीं परखा जाता तो स्त्री के साथ यह भेद क्यों? आज स्त्री को समानता के अधिकार देकर उसे कामकाजी महिला बनाकर घर परिवार के लिए पैसा कमाने की कुंजी बनाकर दोहरे-तिहरे दायित्वों से जोड़, उसके कार्यक्षेत्र का विस्तार कर दिया गया। पर उसके इन कामों में हाथ बँटाने आया कोई? घर और बाहर दोनों जगह खटती रहती है वह? ऐसे में सहानुभूति भरा दुलार मिलने पर थोड़ी बहुत मनमानी करने लग जाती है तो उसे चरित्रहीन की उलाहनाओं से नवाज दिया जाता है। यह कैसी बराबरी हुई?'

उपन्यास के कथानक का मूल बस इसी स्पष्टता से आगे बढ़ता है। स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर आचरण की पतित उच्छृंखलता जैसे पर्याय हो गई। फिर भौतिकवादी चमक के कुचक्र का शुभारंभ कराया आनंद गुप्ता ने। जिन्होंने उन्हें टीवी, वीसीआर की लत लगाकर अश्लीलता का इतना शौकीन बना दिया कि दोनों पति-पत्नी ने कर्ज लेकर एक सेट खरीद डाला। भोग के उपकरणों की यही खरीद कुचक्र के जाल का आधार बन गई। और फिर एक के बाद एक आधुनिक संसाधनों को, कर्ज पर घर लाने की शुरुआत हुई। इसमें सहयोगी आनंद गुप्ता लगातार ऋण पर ऋण दिलाता रहा। क्योंकि वह स्वयं रिश्तेदारों के नाम पर ऊँची दरों में ऋण उपलब्ध करने का व्यापार करता था। यहाँ लेखक ने आनंद गुप्ता को एक ऐसे सूदखोर के रूप में प्रस्तुत किया है, जो ब्याज की राशि के साथ ऋणी से न केवल मोटी रकम प्राप्त करता है, बल्कि उसे लगातार कर्ज के दलदल में धकेल देने का कार्य पूरी ईमानदारी से करता है।

चूँकि यही वह समय था जब भारत में भू-मण्डलीकरण की नीतियों ने विस्तार देना प्रारंभ कर दिया था। यहीं से कथानक की मुख्य पात्र हरप्रीत की बेलगाम आकांक्षाओं ने उछाल मारा। फिर क्या था, 'ऐसे ही एक दिन बलवंत ने सुबह-सुबह चाय के घूँट सुड़कते हुए देखा, पूरे के पूरे पृष्ठ पर लाल पृष्ठभूमि में हीरो होण्डा मोटर सायकल का विज्ञापन था। 'इसे देखते ही बलवंत कल्पना-लोक में पत्नी हरप्रीत के साथ उपस्थित हो गया। जब नींद से जागा तो हकीकत में श्रीमती गिल का चिर-परिचित महत्वाकांक्षी मत प्रकट हुआ, 'देखने से क्या होगा जी, खरीद भी लो! अपुन भी मौज लूटें!'

इस तरह नए-नए कर्ज लेकर भविष्य के परिणाम से अपरिचित गिल दंपत्ति अंधी दौड़ लगा रहे हैं, बावजूद सुख-सुविधा के विलासी उपकरण जुटाने से छुटकारा पाने की नहीं सोच रहे थे। नायिका बलवंत से कहती है कि 'अरे जुगाड़ करो जुगाड़! आनंद से कहना वह किसी से उधार दिला देगा। उसकी तो बाजार में बड़ी साख है। सूद तो मैं अपनी तनखा से देती रहूँगी'। 'जिस पृष्ठभूमि को लेकर उपन्यास गढ़ा गया, वह काल बीती सदी के सातवें से लेकर नवें दशक की भूमण्डलीकरण के बाद उपजी उन विस्तारवादी परिस्थितियों की देन हैं, जो बाजारवाद ने परिवारों को उपभोक्ता बनाने की दृष्टि से गढ़ी थी।

कथानक आगे बढ़ता है। इसी प्रकार कार, मकान आदि सुख-सुविधाओं के लिए सिलसिला निरंतर बना रहा। आर्थिक उदारवादी दृष्टि को समझने के लिए ही इस उपन्यास का नामकरण 'अनंग अवतार में चार्वाक' रखा है, जो सार्थक दिखाई देता है। क्योंकि उपन्यास की कथा चार्वाक के मूल सिद्धांत की वैचारिकी 'उधार लेकर घी पीने' के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। लेखक मूलत: एक समाजशास्त्रीय विचारक हैं, जिनको देश-विदेश से लेकर भारत की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जैसी तमाम हालातों का तथ्यात्मक ज्ञान है। वह लंबे समय से इस विस्तार लेती भौतिकवादी नीति के दूरगामी परिणामों का पूर्वाभास कर लेते हैं। चूँकि उपन्यास की विषय-वस्तु सत्य घटनाक्रम पर आधारित है, इसलिए परिणाम का क्या अंजाम होगा, इसे दूरदृष्टि रखने वाले लेखक को पूर्वाभास करना आसान हो जाता है। लेखक का मूल उद्देश्य कर्ज की संस्कृति के दुष्परिणामों से परिचित कराना है, जिससे समाज को संदेश मिले।

भारत सरकार या राज्य सरकारों के जो भी सम्मान होते हैं, उनकी प्राप्ती में प्रशासन की अनुसंशा अहम् होती है। गोया, जब राष्ट्रपति सम्मान के लिए योग्य शिक्षक के नाम की बारी आती है तो नायिका हरप्रीत के नाम की पैरवी एडीआई सत्यपाल सिंह और कलेक्टर रीडर शंभूनाथ की जुगल जोड़ी करती है। स्पष्ट है, वर्तमान में पुरस्कारों के मूल में योग्यता, कर्मठता और ईमानदारी को नहीं बल्कि अनैतिकता, राजनीतिक पहुँच और चाटुकारिता ने ले ली है। हरप्रीत गिल को पुरस्कार के लिए चुन भी लिया जाता है। इसके मूल में भी दैहिक यौनिकता रही। नायिका जिला शिक्षा अधिकारी की हवस की शिकार बिना किसी विरोध के बन गई। इसके पूर्व इसकी भौतिक चकाचौंध से ओतप्रोत पृष्ठभूमि गढ़ी गई। शंभुनाथ बोले, 'राष्ट्रपति सम्मान शिक्षक को कई बड़े लाभ हैं। राष्ट्रपति के साथ फोटो, रेल टिकिट में आजीवन रियायत। बच्चों को उच्च शिक्षा व नौकरी में प्राथमिकता। शिक्षा ऋण का लाभ।' अब बारी सत्यपाल की थी, 'और भैय्ये सरकारी आवास आवंटन में प्राथमिकता। गणतंत्र व स्वतंत्रता दिवस समारोह के दिन दर्शक दीर्घा में वीआईपी दर्जा। वेतन वृद्धि और पदोन्नतियों के लाभ! दोनों हाथों में लड्डू! चाँदी ही चाँदी! 'गोया, हरप्रीत को राष्ट्रीय पुरस्कार की परिणति तक पहुँचने के लिए कई पड़ाव पार करने पड़ते हैं। जिला शिक्षा अधिकारी की हवस पूर्ति के बाद कमोवेश इसी स्थिति से कलेक्टर के साथ गुजरना पड़ा। इस परिप्रेक्ष्य में लेखक सटीक टिप्पणी करते हैं, 'स्त्री अस्मिता के बचाए रखने के संस्कारी उपक्रम कैसे अंतर्द्वंद्व और अंतर्संघर्ष करते हुए जवाब देने लग जाते हैं? महत्वाकांक्षी उपलब्धि हासिल कर लेने के जल-जले ने देह और मान मर्यादाओं के जैसे सब विराम, पूर्ण विराम तोड़ दिए।'

इस प्रकार उच्छृंखलता होती हरप्रीत कलेक्टर प्रभाकर सिंह को राष्ट्रपति पुरस्कार दिलाने की कृतज्ञता में अपना शरीर पेश कर भी विचलित नहीं हुई। इन सब के पीछे कोई मौन साधे स्वीकृति देता व्यक्तित्व था तो उसका स्वयं का पति बलवंत सिंह, जो उपन्यास के अंत तक सब जानते हुए भी अनजान रहता है। यहाँ लेखक पुरुषवादी उस पुरुष नस्ल की ओर भी

इशारा कर रहे हैं, जो वर्तमान में केवल इसलिए फलित है कि स्त्री स्वतंत्रता चाहती और कुछ प्रतिशत पुरुष स्त्रियों को कामकाजी बना कर अपना स्टेटस बनाए रखने के लिए आँखें मींचे रखते हैं। इसके मूल में बेरोजगारी भी एक बड़ी वजह है। यह वर्तमान का खुला सत्य है।

इस प्रकार उपन्यास की कथा शिल्प, भाषा विन्यास के ताने-बाने के साथ आगे बढ़ती है। बैंकों से ऋण, सरकारी योजनाओं का अनुचित लाभ ले गिल दंपत्ति पुरानी हवेली से निकल कर अब तक आलीशान बँगले के निवासी हो गए थे। उनके पास चार पहिया वाहन से लेकर जीवन की सभी सुविधाएँ अनिवार्य हिस्सा बन गईं थीं। ये तमाम साधन उन्हें अमीर होने की हैसियत दिला रहे थे। इस बीच बच्चों का शिक्षा की ओर ध्यान न देना तथा अनावश्यक खर्च निरंतर चलता रहा और फिर पुत्री विवाह के बाद, पुत्र का व्यवसाय भी कर्ज लेकर ही शुरू हुआ। कर्ज के दलदल में वे धँसते चले जाने के बावजूद वे अपने विवाह की पच्चीसवीं वर्षगाँठ की रजत जयंती धूमधाम से मनाते हैं। लेखक यहाँ बाजार की सच्चाई दर्शाते हुए लिखते हैं, 'बहरहाल, भविष्य से बेफिक्र गिल परिवार अपनी-अपनी मंशाओं के मुताबिक हरप्रीत की जायज-नाजायज कमाई पर गुलछर्रे उड़ा रहा था। जबकि गिल परिवार के इस ऐश्वर्य-भोग की सच्चाई यह थी कि बाजार आवश्यकता के अनुसार नया उपभोक्ता समाज गढ़ने की जो कवायद विज्ञापन की रंगीन संस्कृति ने की हुई है, उसका जुनूनी प्रभाव गिल परिवार के सभी सदस्यों पर सवार था।'

अंतत: गिल दंपत्ति की खोखले होने की प्रक्रिया में दखल नियति ने दी। हरप्रीत को कैंसर हो गया। इसका उपचार भी ऋण लेकर शुरू हुआ। लेकिन समयचक्र ने विपरीत दिशा में घूमना शुरू कर दिया। जैसे ही सूदखोरों को ब्याज की किश्त मिलना-चूकना शुरू हुईं, वैसे ही उन्होंने गिल दंपत्ति के घर पर धन वसूली के लिए दस्तक देकर नींद उड़ा दी। नतीजतन दोनों को तय करना पड़ा कि मकान, गाड़ी और गहने बेच कर कर्ज मुक्त होना ही सुकूनदायी है। परंतु इसी बीच युवा बेटों के संस्कारों से भी गिल दंपत्ति को असहजता का सामना करना पड़ा। बेटे प्रिंस का धोखे से सास को पैसा भेजना और बहू का सास को अपमानित कर आईना दिखाना! इन सब विषम हालातों से मुक्ति हेतु गिल दंपत्ति अंधविश्वास के रूढ़िवादी पाखंड का भी शिकार होते हैं, लेकिन मुक्ति नहीं मिलती।

आनंद गुप्ता जैसे व्यक्तित्व भी समाज का एक बड़ा सच हैं। भले ही वह अंत तक हरप्रीत गिल के साथ रहे, परंतु कर्ज के विषम हालात पैदा करने के जिम्मेदार वही थे। यहाँ आनंद गुप्ता ऐसे किरदार की भूमिका में हैं, जो अपने होने के बावजूद गर्त में धकेल देने की पृष्ठभूमि रचते हैं। उपन्यास के अंत में कथानक की नायिका की स्वीकारोक्ति का चिट्ठा भी पाठक को सोचने पर मजबूर करेगा कि भोगवादी संस्कृति का अंत कितना हैरान करने वाला है। यहाँ हरप्रीत से वार्तालाप और फिर स्वयं हरप्रीत के द्वारा कहा जाना, 'मैं अपनी अंदरूनी हकीकत का बयान एक तो इसलिए कर रही हूँ कि हमारी जो गति-दुर्गति हुई, उससे दूसरे सबक लें।' लेकिन स्त्री विमर्श से जुड़े स्वतंत्रता-स्वच्छंदता के संदर्भ में हरप्रीत कहती है, 'फिर यह नश्वर हो जाने वाला शरीर मेरा था, मैंने जैसे चाहा भोगा।' यह वाक्य स्त्री आचरण की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। उपन्यास वैसे तो परिपूर्ण हैं, फिर भी एक कमी बार-बार खलती है कि लेखक वैज्ञानिक शोधार्थी की भूमिका में खड़े दिखाई देते हैं। भाषा की दृष्टि से उपन्यास की भाषा रोचक कस्बाई शब्दों के साथ लचीली है, जो आम पाठक के लिए सहज व सरल होने के साथ उपन्यास को बोधगम्य बनाती है।

सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
शा. नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अशोकनगर-473338 (म.प्र.)
मो. 7999597028

- पत्रांश

'अक्षरा' अप्रैल 2024 का राम पर केंद्रित अंक बताता है कि आपने और आपकी संपादकीय टीम ने निस्संदेह बहुत परिश्रम किया है। इसी कारण यह अंक उच्चकोटि के साहित्य का प्रतीक बनकर उल्लेखनीय और संग्रहणीय हो गया है। राम पर केंद्रित अंक में आपने जो संपादकीय लिखा है, वह राम के संदर्भ में शोध के नवीन क्षितिजों को अनावृत्त करता है। इस संपादकीय में आपने धनुर्भंग के प्रसंग में तुलसी से लेकर राजशेखर तक, तोखे रामायण से लेकर आनंद रामायण तक, तात्पर्य यह कि (संकेत में वाल्मीकि रामायण के संदर्भ) जानकी मंगल से लेकर कवितावली तक से उद्धरण देकर अपनी मौलिक व्याख्या-दृष्टि से सद्ज्ञान की सृष्टि की है। पाठकों को बहुत ज्ञानवर्द्धक और आत्मा के लिए तृप्तिकारक मिल जाता है। आपके कई अनछुए पहलुओं को छूता है आपका संपादकीय। स्तंभ तो अपनी पहचान हैं ही। इस अंक में राम पर सभी आलेख श्रेष्ठ हैं। विशेषकर गंगा प्रसाद बरसैंया, करुणाशंकर उपाध्याय, सत्येन्द्र शर्मा, अंजनी कुमार झा, शकुंतला कालरा प्रभावित करते हैं। आपको और संपादकीय टीम को बधाई।

- अज़हर हाशमी, रतलाम (म.प्र.)

धर्मपाल महेन्द्र जैन की चयनित व्यंग्य रचनाएँ

- विजया सती

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में धर्म जैन के व्यंग्य की धार से भेंट-मुलाकात होती रही है। अब यह संग्रह हासिल हुआ जिसमें 41 शीर्षकों में छोटे-छोटे धारदार व्यंग्य प्रभावित इसलिए करते हैं कि इनमें आज के दौर के सच को पकड़ने की भरपूर कोशिश है। लेखक की मान्यता है कि व्यंग्य की कारक प्रवृत्तियाँ-'अन्याय व अनीति को पकड़ना और कलम को धार देना' है। 'अपने लिए न लिख कर सबके लिए लिखूँ' इस सीधी-सादी बड़ी बात के साथ संग्रह की व्यंग्य रचनाओं का आगाज होता है।

'इस रचना समय में' शीर्षक के अंतर्गत वे कहते हैं-'व्यंग्य लिखना टोपी सिलने जैसा काम है। जैसी माँग वैसा लेखन' यह आरंभिक भूमिका भर है उस व्यंग्य की, जहाँ रग-रग में शरारत भरी है। महानता का वायरस, बुद्धिजीवियों के जुलूस में, कलमकार नारे रचो, ओ मानस के राजहंस, पुण्य छूट पर बिक रहा है, 'भाल तिलक सब छीनी रे' जैसे शीर्षक इसकी पुष्टि करते हैं। जिसे हिन्दी मुहावरे में कहते हैं-भिगो भिगो कर मारना, बहुत कुछ वैसी ही व्यंग्य की मार ये रचनाएँ भी करती हैं।

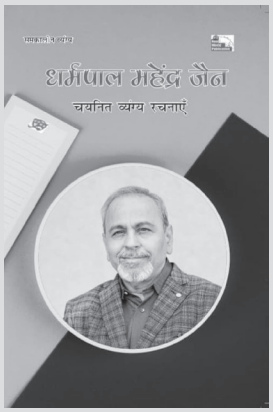

पुस्तक : धर्मपाल महेन्द्र जैन की चयनित व्यंग्य रचनाएँ
प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन
मूल्य : 225 /-, पृ.-128

व्यंग्यकार लिखना तो चाहता है-शाश्वत, धारदार, असरदार। किन्तु खुद ही स्पष्ट कर देता है कि 'शाश्वत समय होता तो कालजयी रचता' जब 'समय और समाज गिरगिटिया है, मौसम या खबरों के ही नहीं, आदमी की निष्ठा, संवेदना, आत्मा की आवाज तक बदल जाती है' तो अशाश्वत लिखो-राजनीति पर, मी टू पर, अमेरिकी राष्ट्रपति पर, फटाफट छपता है।'

इन व्यंग्य रचनाओं में कभी एक पंक्ति भर गहन प्रभाव पैदा कर देती है, जब वे लिखते हैं-'सरल-सच्चे विचारों को लिखने में दिमाग जैसी जटिल प्रणाली की जरूरत नहीं लगती, आजकल सुरक्षित व्यंग्य लिखने का प्रचलन बढ़ गया है और स्पीड रीडिंग के लिए चाहिए तत्काल व्यंग्य', तब पाठकीय प्रतिक्रिया ठिठक कर मौन हो लेती है।

'ऐ तंत्र, तू लोक का बन' शीर्षक व्यंग्य की पहली पंक्ति है-'लोकतंत्र बहुत छलिया शब्द है, यह तंत्र कभी लोक का हुआ ही नहीं' व्यंग्यकार शब्द का कारीगर होने के साथ-साथ जादूगर भी होता है। यहाँ यही हुआ है।

'जंगल सरकारी जंगले में' शीर्षक व्यंग्य में शब्दों का खेल रामकथा प्रसंग तक चला जाता है, बात देश को जंगल बनाने की कोशिश में लगे अफसर तंत्र की हो रही है-'वे काम करना चाहें। तो हनुमान जी की तरह तमाम कानूनों का पर्वत अपनी अँगुली पर उठा ले जा सकते हैं और वे काम न करना चाहे तो कानून का धनुष कोई टस से मस नहीं कर सकता।'

कहीं कड़क व्यंग्य 'सरकारी नीति चार दिन की चाँदनी है' कहने से नहीं चूकता तो कहीं पूँछ पकड़ के धड़ाम से गिर जाने का स्वर सुनाई देता है। आज की शब्दावली में आज का जीवन रचने में व्यंग्यकार को महारत हासिल है 'अपनी श्रद्धानुसार पुण्य का जैसा पैकेज लोगे वैसा फल मिलेगा...विधि विधानों पर सत्तर प्रतिशत डिस्काउंट..एक यूनिट पुण्य का पेमेंट करने पर दो यूनिट पुण्य का बोनस था...पुण्य सेल में मिल रहा था, सत्तर फीसदी छूट।'

व्यंग्यकार ने व्यंग्य रचनाओं के अपेक्षाकृत लघु आकार में, वर्तमान की विडंबना को बखूबी शब्दबद्ध किया है-'चमचे दैनिक भत्ता लेने और हाँ जी, हाँ जी करने आए थे।'

'नदी का पाट सरकारी आश्वासनों जैसा चौड़ा है।'

'कलमकार! नारे रचो' शीर्षक व्यंग्य गद्य कविता का-सा रस देता हुआ एक प्रवाह में बहता चलता है-'साहित्य से नारा बड़ा है। साहित्य करेला है तो नारा नीम चढ़ा है। नारे से आदमी अमर रहता है, नारे का वंशानुगत असर रहता है।'

'बुद्धिजीवियों का जुलूस' बुद्धिजीवियों पर ही व्यंग्य का निशाना साधता है।

इन व्यंग्य रचनाओं को पढ़ते हुए यह बोध होता है कि जैसे व्यंग्यकार की दृष्टि से बहुत कुछ नहीं छूटा, बहुत कुछ ओझल नहीं रह सका। एक संवेदनशील दृष्टि से कभी वे कोरोना काल का हाल 'लॉकडाउन में दरबार' व्यंग्य में सुना डालते हैं तो पुस्तक मेले पर व्यंग्य के लिए एक छोटी पंक्ति पर्याप्त हुई है-'मेले में तबेला लगाने का खर्चा बहुत ज्यादा है।' निर्माण कार्यों की टूटन और लीपा-पोती को दर्शाता है - 'ऐसे मत बरसना बदरवा' शीर्षक जहाँ शासकीय ठेकेदार को काली सूची में आने का भय है।

ऐसा प्रतीत होता है जैसे व्यंग्यकार की हर ओर पैनी नजर है, वस्तुस्थिति को जानती, पहचानती, छुपी पीड़ा को उद्घाटित करती– 'अब तो किसान भी आत्महत्या नहीं करते सीधे राजधानी घेर लेते हैं।' पर्यावरण की चिंता को 'गंगा-गूंगी है' व्यंग्य में शब्द मिले हैं, इस दुखद आत्मस्वीकृति में जैसे हम सभी की स्वीकृति है–'गंगा हमारी आस्था है, हमारी माँ है, पर गंगा गूँगी है।'

जीवन की त्रासद परिस्थितियों को समझता-बूझता व्यंग्यकार पैने निष्कर्ष दे डालता है–'आत्महत्या जीवन बीमा पॉलिसी जैसी मृगमरीचिका है।'

'नाक के चौरासी मुहावरे' शब्दों की क्रीड़ा के साथ रोचक व्यंग्य बन पड़ा है। इसी तरह 'वैशाली में ऑक्सीजन कंसंट्रेटर' भर्तृहरि की विख्यात गाथा को नया अर्थ देता हुआ व्यंग्य है। 'यं चिन्तयामि सततं मयी सा विरक्ता'–इस कथा का यह सामयिक रूपांतर है, जब कोरोना काल में ऑक्सीजन कंसंट्रेटर प्राणदायी हुआ। उसे महामंत्री ने राजा को दिया–राजा ने रानी को, रानी ने सेनापति को–सेनापति ने अपनी प्रेमिका को–प्रेमिका ने अपने प्रियतम टीवी एंकर को दे डाला और फिर एंकर ने नगरवधू को भेंट कर दिया। अंततः नगरवधू से होकर वह फिर राजा के पास पहुँच गया।

इसी तरह अमीर खुसरो की याद दिलाता संग्रह का अंतिम व्यंग्य 'भाल तिलक सब छीनी' एक तीर से कई निशाने साधने का बेहतरीन उदाहरण है–'कलाकार को स्वयं ही रघुवीर होना पड़ता है। खुद तिलक न निकालो तो कोई संस्था तिलक नहीं लगाती।' एक हृदय विदारक आत्मस्वीकृति से व्यंग्य का अंत होता है–'अपनी कला को कालजयी बनाना हो तो कालिदास हो या तानसेन, दरबार में भरती होना पड़ता है।'

व्यंग्यकार की सफल भूमिका में धर्म जैन जीवन प्रसंगों को सुनियोजित करते हैं और वास्तविकताओं से रूबरू कराते हैं–'हम लोगों में सद्भावना इतनी ठुँसी हुई है कि सही भावना अन्दर ही सुलगती रहती है' जैसी पंक्ति इसका प्रमाण है।

वह व्यंग्यकार ही क्या जो आत्मव्यंग्य को स्थान न दे? धर्म जैन ऐसा भरपूर करते हैं-स्वयं को महानता का वायरस लगने की खुशी को 'एक्यूट ग्रेटेटाइटिस सिंड्रोम' कह कर प्रस्तावित करते हुए यह कहना भी नहीं चूकते कि 'हिन्दी के रचनाकार जैसे ही महानता के घोड़े पर बैठते हैं, उसे इस पायदान पर चढ़ाने वाले टट्टुओं को भूल जाते हैं।' सोने पर सुहागा जैसा छिड़कते यह भी जोड़ देते हैं–'मैं ऐसी एहसान फरामोशी नहीं करना चाहता।'

लेखक ने व्यंग्य की नाटकीय संरचना भी की है–इन्डियन पपेट शो और लॉकडाउन में दरबार शीर्षकों के अंतर्गत इसे पाया जा सकता है।

कई व्यंग्यों में संवाद की भूमिका कामयाब है। यह नाटकीय संवादमयी सर्जना अनेक व्यंग्यों में रोचकता लेकर आई है। इस संग्रह की विशेषता यह भी है कि व्यंग्यकार का अनूठा शब्द संचय व्यंग्य की भूमि को अनवरत उर्वर बनाए रखता है। शब्दों के सारगर्भित खिलवाड़ से भरे अनेक वाक्य इन व्यंग्य रचनाओं में बिखरे पड़े हैं जो पढ़ते ही होठों को मंद स्मित से भर देते हैं–

कविताएँ अधकचरी और छरहरी हों तो कवि में गजब का बांकपन आ जाता है, कविवर बला थे, कविता तो केवल अबला थी,
उसके अवसादग्रस्त चेहरे पर किसी पुरस्कार की क्रीम लगा दें।
अनुकरणीय बनना हो तो अपनों से अनुकरण कराना पड़ता है।
मेरा रचनाकार मन बेताब था। रचनापाठ किए बहुत महीने चढ़ गए थे।'

व्यंग्य रचनाओं का शब्द संयोजन भी ध्यान आकर्षित करता है– 'कभी वह (स्कूटर) रिजर्व में आकर पतित हो जाए तो पेट्रोल भरा कर उसे पावन कर दें।'

इसी तरह एक स्थान पर लिखते हैं–'**काव्य पाठ कैसे करें' इस विषय पर कार्यशाला में मुझे बीज वक्तव्य डालने के लिए आयोजकों ने बुलाया।**'

एक शब्द को ऐसा ट्विस्ट किया जिसमें अर्थ की कई छवियाँ लिपट गई।

इन व्यंग्यों में ऐसी सलीके से कही गई पंक्तियाँ भी आती हैं जिनसे न केवल व्यंग्य का सिक्का जम जाता है बल्कि व्यंग्यकार की जीवन दृष्टि का बोध भी होता है–'**ईमानदारी तो कोई कला नहीं है। जो बेईमानी, ईमानदारी को जेब में रख सके वह कला है।**'

वे शब्द भर से सटीक चित्र खींच देने की कला में माहिर हैं–'**टीवी चैनलों पर बहस वीरों का मेला लग गया।**''**उनका लिफाफा अ-खोला और अपठित रहने का प्रतिमान गढ़े जा रहा था।**'

कुछ अटपटे शब्द भी व्यंग्य संग्रह में लक्षित हुए–दिमाग भी समझने के चक्कर में बठुर हो जाए, आप बीच-बीच में तालियाँ बजाते रहेंगे तो मुझे खात्री रहेगी, बूथी नाक बूची नाक। व्यंग्यकार हँसते-हँसते कैसे हृदय छलनी कर सकता है, कहाँ से कहाँ तक तीर चला सकता है, कैसे अचूक निशाना साध सकता है, बात में से बात निकल कर कहाँ से कहाँ तक पहुँच सकती है, अपने समय और समाज को आइना कैसे दिखाया जा सकता है, प्रत्यक्ष कथन का अप्रत्यक्ष प्रभाव कैसे आँखें खोल सकता है–इन्हें प्रमाणित करते इस समकालीन व्यंग्य संग्रह का भरपूर स्वागत है।

अभिराम, 22 हीरा नगर, हल्द्वानी,
नैनीताल-263119 (उत्तराखंड)
मो.-8587093235

आदमी की नब्ज

- रूपेंद्र राज तिवारी

कहानियाँ कैसे बनती हैं। मैं अक्सर जब सोचती हूँ तो लगता है आम जीवन कहानियों का विस्तार है। या यूँ कहें कि हर जीवन में अनगिनत कहानियाँ हैं जिनसे व्यक्ति का संपूर्ण जीवन बनता है। तो क्या हर कहानी कहने या सुनाने-सुनने लायक होती है बिल्कुल नहीं! कहानी वही कहने, सुनने या सुनाने लायक होती है जिससे कुछ हासिल हो, या जिसका कोई उद्देश्य हो। वर्ना रोज़ कई लोग जी रहे हैं, मर रहे हैं, पल-पल संघर्ष कर रहे हैं, जैसे हम रोज दिनचर्या पूरी करते हैं और अगले दिन वही क्रम दोहराते हैं, लेकिन जीवन लगातार बढ़ता रहता है और एक दिन उसका अंत हो जाता है और कुछ वर्षों तक वह परिवार के एक व्यक्ति की तरह याद किया जाता है और फिर भुला दिया जाता है।

कहानियाँ उन लोगों की बनती हैं जिन्होंने अपने अतिरिक्त समाज के लिए कुछ किया होता है, भले ही उस किरदार को न पता हो कि वो कुछ ऐसा कर रहा है जो कहानी का कथानक होने वाला है और जिसे लिखने के लिए लेखक की कलम कुलबुला रही है।

पुस्तक : आदमी की नब्ज
लेखक : रामगोपाल भावुक
प्रकाशक : लोकमित्र प्रकाशन दिल्ली,
मूल्य : 225/-

रामगोपाल भावुक जी की कहानियाँ भी ऐसे ही विशिष्ट विषयों और पात्रों का दस्तावेज़ है। मैं यह नहीं कहूँगी कि ऐसे घटना क्रम पहले कभी नहीं घटे जिन पर रामगोपाल भावुक जी ने कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु इतना ज़रूर है कि संग्रह की कहानियाँ पढ़ते हुए पात्रों के साथ रामगोपाल भावुक जी भी उनकी यात्रा में शामिल लगते हैं।

'आदमी की नब्ज़' इस संग्रह की पहली कहानी है। इस कहानी को लिखते हुए, रामगोपाल भावुक जी पुरुषों की फ़ितरत को आम करते हुए स्थापित करते हैं कि औरत में कुव्वत हो तो आदमी की नब्ज़ पकड़ना उसके बाएँ हाथ का काम है।

एक पिछड़े वर्ग की महत्त्वाकांक्षी लड़की जिसने अपने सपने पूरे करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद सब का सहारा लिया। यह कहानी किसी वर्ग विशेष का विरोध नहीं करती बल्कि उस वर्ग से जुड़े मुद्दों को बहुत बारीकी से उठाती है। पलायन, जातिवाद, शोषण और रसूख के दबदबे का विरोध किस तरह एक दबे-कुचले परिवार की नियति बन जाता है और कैसे विपरीत परिस्थितियों से जूझ कर कोई निरीह लड़की अपने जीवन में आए एक-एक आदमी की प्रवृत्ति पहचान कर अपना रास्ता बनाती है और एक विधायक बनने का सफ़र तय करती है।

निरंतर नए-नए समाजों का गठन यह सोच कर किया जाता है कि सामाजिक विसंगतियाँ, जातीय भेदभाव, धर्मों में आपसी सौहार्द बढ़े। अलग-अलग धर्मों की अपनी व्यवस्थाएँ होती हैं और जब कोई ग़ैर धर्म का अपने परिवार में शामिल हो तो उन्हें बहुत दृढ़ होना होता है, तथा अपने उद्देश्य में स्पष्ट भी। कहानी 'आँगन में दीवार' में मैहर एक प्रगतिशील महिला है और रूपेश एक समझदार युवक। दोनों ग़ैर धर्मी होते हुए एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं? दोनों ही समाज को अलग नज़रिए से देखते हैं। शब्बीर का पात्र दोनों स्थितियों को समझने में सफल होता है और समाज की कट्टरता का विरोध करता है? समाज का ताना-बाना इसी तरह जटिल से थोड़ा सुगम होता चला जाता है, जब धर्म, जाति और वर्ग से बढ़ कर आपसी सौहार्द और समझदारी से रिश्तों की नींव रखी जाती है।

भारतीय समाज में एक स्त्री का अंतिम सत्य विवाह ही समझा जाता है। किसी बेहतर की तलाश आखिर स्त्री के लिए क्यों मायने नहीं रखती? माँ-बाप लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के विवाह के लिए इतने उतावले होते हैं, कि स्त्री केवल विवाह मटेरियल ही बन कर रह जाती है, वह उससे आगे नहीं सोच पाती। कहानी 'बेहतर उम्मीद में स्त्री' में एक सशक्त स्त्री को सामने रखा है जो अपनी शर्तों पर जीवन जीना चाहती है। माँ-बाप के उदास चेहरों में रंग भरने के लिए किसी बेमेल विवाह बंधन में नहीं बँधना चाहती। एक स्त्री की पुरुष के प्रति तटस्थता उसे रुक्ष बना देती है और तार्किक होकर हर पुरुष में कोई न कोई खोट निकालने में सक्षम हो जाती है।

ऐसे में किसी पुरुष के व्यवहार को तौलना उसका स्वभाव हो जाता है। प्रेम का प्रदर्शन भी उसे भोंडा लगने लगता है। कहानी सोचने पर विवश करती है कि, बेहतर की तलाश में वर्तमान छूट जाने का डर एक स्त्री को समाज ने ही दिया है। उस समाज ने जिस समाज में स्त्री बिना पुरुष के जीवन जीने का सामर्थ्य तो रखती है किंतु सहज स्वीकार्यता नहीं।

कहानी 'चाइना बैंक' विदेशी व्यापार नीति पर विचारणीय तथ्य रखती है। सीमा पर जवान के अंतिम-संस्कार का दृश्य और चीन से युद्ध। पिछले दो वर्षों से लगातार चीन हमारी सीमा में घुसपैठ कर रहा है लेकिन इससे पहले उसने हमारे घरों पर कब्जा जमा रखा है। चायना-भारत में अपना व्यापार ऐसा फैलाता गया है कि हर क्षेत्र में उसके उत्पाद कम कीमत पर उपलब्ध हैं। भारत एक बड़ा व्यापार क्षेत्र बन चुका है। हम जानते हुए भी इसका विरोध नहीं कर पा रहे। हमारे वर्तमान शासन की कुछ व्यापारिक संधियों के कारण चीन को सुनहरा अवसर मिला हुआ है। इससे हमारे देश में उत्पाद और व्यापार प्रभावित हो रहा है। कहानी चीन से सीमा की रक्षा करते हुए शहीद की शवयात्रा से प्रारंभ होती है। लेखक चीन से अपने संबंधों की विवेचना करते हुए अपने साथ हुए चीनी उपकरण के धोखे को स्मरण करता है। साथ ही बाज़ार में चीनी उत्पाद की बढ़ती माँग की भी विवेचना करता है।

बैंक के जरिए भारतीय कृषि उत्पाद पर सीधा चीन का कब्जा तथा अपने धन को चीनी बैंक में एफडी का प्रलोभन देकर भारतीयों को वर्तमान शासन की व्यापारिक संधियों के प्रति सशंकित करता है। अपनी आँख के सामने स्त्रियों को सस्ते सामान की लालसा में फँसते हुए देख, देश के आमजन की मानसिकता का भी आंकलन लगाया है। ऐसा नहीं कि कहानी में बाजारवाद के विरुद्ध केवल तर्क दिए जा रहे हैं किंतु बाजारवाद के जरिए उपनिवेशवाद की गंध का अनुमान भी लग ही रहा है। कहानी का वितान बहुत लम्बा है, बहुत से विषयों को समेटता है कथानक। ऐसी स्थिति में कहानी के माध्यम से लेखक आगाह करता है कि कोई न कोई उपाय अपने-अपने स्तर पर भी कर लेना चाहिए।

इसमें कोई दो मत नहीं कि आधुनिक होने का अर्थ अधिक सुख-सुविधाओं से ही लगाया जाता है। हम हमारे अतीत की कुछ परंपराएँ केवल इसलिए छोड़ते जा रहे हैं, क्योंकि आज हमें ये सब औपचारिकताएँ लगती हैं। ऐसी ही एक परंपरा को कहानी 'अतीत होती परंपरा' का आधार बनाया गया है। तीर्थयात्रा में जाने से पूर्व परिवार से आत्मीय भेंट और तीर्थ से सकुशल लौटने पर पुन: भेंट की परंपराएँ विलुप्त सी होती जा रही हैं। भले ही आज तीर्थयात्राएँ कठिन नहीं और वापस न लौट पाने की संभावनाएँ भी क्षीण हैं, किंतु पुराने ख्यालात वाले आज भी उन्हें मानने में आत्मसंतोष अनुभव करते हैं। किंतु जब घर के जिम्मेदार सदस्य द्वारा इन्हें नकारा जाता है तो अवश्य ही ठेस लगती है।

कहानी अनुभव के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती है। जिसकी सत्यता इस कहानी के पात्रों का भावनात्मक संवाद है। हमारे समाज में विवाह को अंतिम जिम्मेदारी माना जाता है। खासतौर से माँ-बाप बेटी के विवाह के लिए हद से अधिक चिंतित रहते हैं। उम्र बढ़ते ही माँ-बाप की चिंता और भी बढ़ जाती है रिश्ता सही उम्र में हो जाए तो सब ठीक नहीं तो भविष्य अंधकार में। 'रिश्ता' कहानी में 'गच्चा देना' मुहावरे का प्रयोग बार-बार हुआ है। कहानी की मुख्य पात्र पढ़ी-लिखी है, किंतु अपनी जिम्मेदारियाँ दूसरों पर डालकर निश्चिंत होने वाली लड़की है जैसा अक्सर लड़कियों के साथ होता है। या तो घरवाले इतनी आजादी नहीं देते कि वे अपनी बाहरी जिम्मेदारियों का ठीक-ठाक पालन कर सकें या फिर दूसरों पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेती हैं। एक होशियार लड़की भी जब दूसरों पर विश्वास कर लेती है तो उसे भी गच्चा खाना पड़ता है। एक कहावत है कि चालाक कौवा कचरे के ढेर पर ही गिरता है। कहानी में पात्र का असंतोष भी ऐसा ही झलकता है।

हमारे समाज में अक्सर वर्ग विभाजन के चलते अपने पुराने पेशे से लोगों की पहचान बन जाती है। धोबी का बेटा धोबी, नाई का नाई आदि। शिक्षा के अभाव में तो अक्सर ऐसा ही हुआ करता था। आज स्थितियाँ भले ही बदल गई हैं, किंतु वर्ग विभाजन अब भी जातियों में बदल चुका है। भले ही पेशों से जान छूट गई, लेकिन जातियों से जान नहीं छूटी। किसी पिछड़ी जाति का अपनी स्थिति को ऊँचा उठ कर हर प्रयास स्वर्णों के लिए सदैव चुनौती ही रहे हैं, और जरा सा भी स्तर उठाना नागवार।

'मिश्री धोबी फागों में' कहानी भले ही पुरानी पृष्ठभूमि पर लिखी गई, किंतु परिस्थितियाँ अब भी सहज नहीं है। वर्तमान परिदृश्य में जातिगत वर्ण व्यवस्था में सुधार और बदलाव की संभावनाएँ क्षीण होती जा रही हैं। कहानी इन स्थितियों को भले ही गाँव की पृष्ठभूमि में अंकित करती है किंतु क्षेत्र कोई भी हो स्थिति एक ही है। मिश्री धोबी सक्षम होते हुए भी स-वर्ण व्यक्ति को चुनौती नहीं दे सकता और स-वर्ण हार कर भी हार नहीं मानता। कहानी केवल एक परिवेश की नहीं बल्कि पूरे भारत की व्यथा कहती है। कहानी का उद्देश्य, अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए दृढ़-निश्चय तथा सामाजिक एकता होना आवश्यक है और सबसे पहले अपना आत्मसम्मान बचाए रखना ज़रूरी।

जिन पशुओं को हमारे धर्म में ईश्वरीय मानते हैं, उन पशुओं के साथ हमारा व्यवहार ही हमें दोगला बना देता है। प्रेमचंद की लिखी बैलों पर कहानी उनकी मित्रता की मिसाल बनी। वहीं रामगोपाल भावुक जी की कहानी 'नंदी के वंशज' पशुओं पर मानवीय अत्याचार की दास्तान। बूढ़े बैल और कृषि के प्रति युवाओं का विमुख होना किसान परिवारों का सबसे बड़ा दुख है। भारतीय समाज का किसान जाने कितनी विपत्तियों से लड़ रहा है। उन्नत खेती ने पुराने तरीकों को लील लिया और लील ली उन पशुओं की हिस्सेदारी जो किसान से भी अधिक श्रम करके कृषि कार्य में अपनी महत्त्वपूर्ण सहभागिता निभाते आए। बैल के प्रति असंवेदनशील युवा शायद कभी नहीं समझ पाएँगे उनके परिवार का एक अटूट हिस्सा रहे हैं ये पशुधन।

कहानी का अंत बहुत संवेदनशील है, बदलते तौर-तरीकों और छोटे-मँझोले किसानों की मानसिक पीड़ा के मन में एक कसक छोड़ जाता है।

भारतीय परिवेश में कुछ ऐसे मिथक हैं, जिन्होंने कुरीतियों का रूप ले लिया। कथाओं, किस्सों के साथ इनके बदलते अर्थ और परम्पराओं में कहीं न कहीं इनका अत्यंत भ्रामक रूप सामने आया। 'पति के पाँव' कहानी लक्ष्मी और विष्णु के एक चित्र से प्रारंभ होती है, जिसमें लक्ष्मी को विष्णु के पैर दबाते हुए दिखाया गया है। इस चित्र को पति के प्रति स्त्री के कर्तव्य के रूप में देखा जाता रहा है। जबकि यह मिथक केवल स्त्री को पति की सेवा से जोड़ना पूर्ण रूप से स्त्री का दांपत्य जीवन में दोयम दर्जा स्थापित करना है। यदि पति भी इसी मानसिकता का हो तो पत्नी का जीवन पति की गुलामी में बीत जाए। कहानी के माध्यम से स्त्री और पुरुष का आपस में सामंजस्य बनाए रखने तथा एक-दूसरे को बराबरी का दर्जा देने का उद्देश्य है।

बीते दो वर्षों से महामारी कोरोना का लोगों के मस्तिष्क पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि लोग सारे सामाजिक क्रियाकलापों से विमुख हो गए, या स्पष्ट कहें तो बहुत हद तक स्वार्थी हो गए। और जहाँ स्वार्थ होता है, मानवीय गुणों का ह्रास होने लगता है। 'सेफ डिस्टेंसिंग' ऐसी ही कहानी है।

कोरोना में 'सोशल डिसटेंसिंग' शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ किसी भी तरह के सामाजिक क्रियाकलापों से दूर रहना। कभी-कभी ऐसी विपरीत स्थितियों में अपनी जान की परवाह न कर आमजन के लिए कार्य करना होता है। इस अवधि में बहुत से ऐसे लोग लगातार अपने कामों में सक्रिय थे जिनमें, सफाई कर्मी तथा हस्पतालों में कार्यरत चिकित्सक तथा उनके सहयोगी। किन्तु इनके प्रति आमजन की धारणा इनसे पूरी तरह दूरी बना लेना और इनके कार्यों के प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित करने की अपेक्षा इन्हें सशंकित हो कर देखना रहा। कहानी सच के करीब है और इन योद्धाओं के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

जैसे कि भारतीय परिवेश आज भी जातिगत दंश से मुक्त नहीं हो पाया है। कार्य भले छोटे हों अथवा बड़े उस व्यक्ति का सम्मान होना चाहिए जो पूरी लगन और निष्ठा से अपना कार्य कर रहा हो। कहानी 'आज की स्त्री' में पिछड़ी जाति की सफाई कर्मी जो सबके घरों से मैला उठाती है, (आज सिर पर मैला ढोने की परम्परा देश से लगभग विलुप्त है) अपने अपमान पर पूरे सरकारी अमले को नचा डालती है और अंत में अपना आत्मसम्मान बचाती है। कहानी न केवल स्त्री वर्ग की कहानी है बल्कि पिछड़े वर्ग को सम्मान के साथ जीने की प्रेरणा देती है।

हमारे समाज में बहुत सी क्रियाओं का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। ऐसे ही एक क्रिया जिसमें टूटते तारे को देखते ही मन की कोई इच्छा यह सोच कर माँगने की कि वह पूरी हो जाएगी। भला जो खुद टूट कर गिर रहा हो वो किसी की कोई इच्छा कैसे पूरी कर सकता है! बहरहाल कहानी 'टूटता तारा' एक रूढ़िवादी परिवार की कहानी है? जहाँ स्त्री का गर्भवती न होना उसी के शारीरिक दोष पर मढ़ दिया जाता है, जबकि पुरुष में दोष होता है। कहानी अंत तक उस भ्रम को बनाए रखती है। अंततः पत्नी अपनी सूझबूझ से आधुनिक तकनीक से गर्भ धारण कर रूढ़िवादी पति को भ्रमित करने में सफल हो जाती है। और यही विडम्बना है कि व्यक्ति रूढ़ियों के चलते भी मूर्ख ही बन रहा होता है।

हम जितने सभ्य हुए हैं हमारा समाज स्त्रियों के प्रति और अधिक क्रूर हुआ है। छल, बल, कपट, प्रवंचना से स्त्री का शील भंग करना और खिलौने की तरह उससे खेल कर छोड़ देना आम बात है। किन्तु स्त्रियाँ अपने प्रति किए अपराधों पर मौन धर ले तो अपना सारा जीवन नारकीय कर लेती है। 'विजया' कहानी की पात्र इन परिस्थितियों से जूझते हुए प्रतिरोध कर मुखर हो अपने साथ किए छल की सजा देने के लिए दृढ़ संकल्पित होती है। ऐसे साहस से विजया अपने साथ कई अपनों का सहयोग भी पाती है।

रामगोपाल भावुक जी का कहानी संग्रह मुख्यतः स्त्री विमर्श पर केंद्रित संग्रह है। इस संग्रह की दो-तीन कहानियों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर कहानियाँ स्त्रियों के सशक्तिकरण की मिसाल हैं। कहानियों की पृष्ठभूमि के अनुसार भाषा, परिवेश तथा कथानक का चयन किया गया है। अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण व पारिवारिक परिवेश से ली गई हैं। कहानियों के उद्देश्य रामगोपाल भावुक जी के विचारों को स्पष्ट करते हैं। कहीं-कहीं लगता है कि रामगोपाल भावुक जी ने कहानियों में कथन को लेकर ज़ल्दबाजी की है। कहानी का प्रारंभ सूत्रधार से कर मध्य अथवा अंत तक मुख्य पात्र से करवाने लगते हैं। अतः संपादन की कमी खटकती है। कहीं-कहीं कहानियों को अनावश्यक विस्तार दिया गया है। इन के बावजूद विषयों को लेकर रामगोपाल भावुक जी समसामयिक समस्याओं से परिचित कराते हैं और सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्ध कहानीकार हैं। रामगोपाल भावुक जी के इस कहानी संग्रह के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

द्वारा प्रमोद तिवारी
इंदिरा चौक, श्याम नगर,
रायपुर- 492001 (छत्तीसगढ़)
मो.-7772999154

एक बूँद समंदर

– मुजफ्फर इकबाल सिद्दीकी

कहानी की दुनिया में एक और कहानी-संग्रह ने जनवरी-2024 में दस्तक दी है। मीनाक्षी दुबे का कहानी संग्रह बोधि प्रकाशन, जयपुर से छप कर आया है। 124 पेज के इस कहानी संग्रह में 14 कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी अपनी एक अलग ही कहानी कहती है। इन कहानियों के किरदार कभी तो ज़िन्दगी से जद्दो-जहद करते नज़र आते हैं, ज़िन्दगी की कश-म-कश में जीते हैं, विसंगतियों और विडम्बनाओं को आत्मसात करते हैं तो कभी अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करते नज़र आते हैं।

ऐसा नहीं है कि इनके मुकद्दर में सिर्फ और सिर्फ़ नाइंसाफ़ियाँ लिखी हैं। ये प्यार और मुहब्बत के नगमें भी गाते हैं। तो कभी महाकवि भास के संस्कृत नाटक स्वप्न वासवदत्ता की पात्र वासवदत्ता (वही वासवदत्ता जो प्रेम की पर्याय है) को स्मरण करते भी नज़र आते हैं। आप जब सारी कहानियाँ पढ़ेंगे तो ज़िन्दगी के तमाम रंग आपको महसूस होंगे।

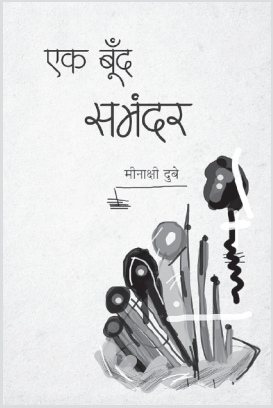

पुस्तक : एक बूंद समंदर
लेखक : मीनाक्षी दुब
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

मीनाक्षी जी को प्रकृति से बहुत प्रेम है। लेखिका जब प्रकृति की सुंदरता का वर्णन करतीं हैं तो ऐसा लगता है जैसे हाथ में ब्रश लिए एक तस्वीर बना कर उसमें बहुत ही सुन्दर रंग भर रही हैं। इनके ये रंग कुदरत की नुमाइंदगी तो करते ही हैं हमें भी आकर्षित करते हैं। इनकी नज़रों से देखने पर ये कुदरती नज़ारे और भी हसीन हो जाते हैं। जब ये फूलों-पत्तियों और कल-कल बहते पानी का जिक्र करतीं हैं तो ऐसा लगता है कि एक मासूम-सी लड़की, रंग-बिरंगी तितलियों के झुण्ड में शामिल होकर किसी खूबसूरत बगीचे की सैर कर रही है।

कुछ नज़ारे इन्हीं के शब्दों के माध्यम से आपको भी दिखाते हैं।

– तितली-सा उमगा मन बरसों पीछे, नहर किनारे जा बैठा। आस-पास लहलहाते खेतों में फूली हुई पीली सरसों की गमक थी। खेतों की मेड़ों पर आम बौराए हुए थे। इक्का-दुक्का महुए के पेड़ भी मदमाती गंध बिखेर रहे थे। चारों ओर शिरीष के सुन्दर और कोमल फूलों की सुवास बिखरी हुई थी। सिंचाई किए खेतों से उठती मिट्टी की सौंधी गंध नीरू के मन में रोमांच से भर रही थी। हवा पर सवार सपने थे और पतंग की तरह उड़ते मनोभाव भी। (बसंत-कुछ स्ट्रोक्स, पृ. -91)

मैं उस बड़े से पेड़ के नीचे खड़े होकर ऊपर की ओर देखता, कभी बीच से नीला आकाश दिखाई देता तो कभी काले-सफेद बादल दिखाई पड़ते। अप्रैल के महीने से खिलना शुरू हुए थे फूल और अब भी खिल रहे थे। पूरी गर्मी खिलते रहे थे। और अब बरसात के दिनों में भी वही मंद सुगंध लिए खिलते जा रहे थे। तेज बरसात के बाद धुलकर पूरा पेड़ और चमकने लगा था। मीठी गंध मुझे तुम्हारी याद दिलाती। (राहत के फूल पृ. – 86)

चारों ओर हरियाली को देख हम दोनों खुश हो गए। सरसों फूली हुई थी, सरसों के पीलेपन के बीच खेतों को चौखानों पर काटती, तिवड़े के नीले फूलों की कतारें मन को मोह रही थीं। हरी बेलों पर लगे सफेद फूलों को पहले तो मैं पहचान नहीं पाई, जब पहचाना तो मुस्कुरा पड़ी। (आधा चाँद पृ. -20)

ऐसा नहीं है कि प्रकृति का वर्णन केवल प्रेम और खुशी में करती हैं। लेखिका अपने गम-गुस्से का इज़हार, अपनी हताशा-निराशा की अभिव्यक्ति को भी प्रकृति में उठने वाले बवंडर के माध्यम से व्यक्त करती हैं। प्रकृति के रौद्र रूप को ही चुनती हैं।

आजकल रात में भयानक सपना देखती है वह धूल, मिट्टी, कंकर मिले तरल में काला रंग आ मिला है और अब वह कीचड़ बन रहा है। बदबूदार कीचड़ और यह कीचड़ धीरे-धीरे दलदल में बदल रहा है। हाथ-पैर मार रही है वह। इस दलदल से निकलने के लिए। इस कोशिश में पसीने-पसीने हो उठी है।
दलदल के किनारे खड़ा है भयानक जंगल। खड़े हैं ऊँचे-ऊँचे पेड़ जो तेज हवा से सांय-सांय करते रहते हैं। सूखे पत्तों और टूटी टहनियों का ढेर लगा है जिसमें साँप, बिच्छू सर-सरा रहे हैं। जंगली जानवरों की आवाजें सुनाई दे रही हैं। (तरल, पृ. -17)

लेखिका एक चित्रकार भी हैं। पेन की जगह कभी-कभी पेंसिल भी हाथ में उठा लेती हैं और जब दिल नहीं भरता तो बाकायदा ब्रश हाथ में उठा कर क्लासिक पेंटिंग की एक एक्सिीबीशन लगा देती हैं। अपने पात्र के हाथ में ब्रश की जगह ऑटो ग्राफ के लिए पेन भी थमा देती हैं। यहाँ लेखिका की शैली और खुलकर बाहर आती है –

चाक चौबंद व्यवस्था करके उसने एक नजर पूरे हाल पर डाली और दर्शकों पर भी। पेंटिंग देखने वालों के चेहरे पर खुशी, उत्सुकता और आश्चर्य के भाव उभर रहे थे। अब उसे कुमार के आने का इंतजार था। पूरी शालीनता और गरिमा के साथ जब कुमार ने हॉल में प्रवेश किया तो वह हाथ में पेन और फाइल पकड़े कुमार के साथ कदम से कदम मिला कर चलने लगी। कुमार और नीरू दोनों के चेहरे पर मुस्कान और आँखों में चमक थी। बढ़ती भीड़ के बीच ऑटोग्राफ देने के लिए, जब कुमार ने पेन लेने के लिए आगे हाथ बढ़ाया तो सात-आठ बरसों से कुमार के हाथों में पेन पेंसिल, ब्रश और कलर थमाने के अभ्यस्त, नीरू के हाथों ने तुरंत ही कुमार के हाथों में पेन थमा दिया। (बसंत – कुछ स्ट्रोक्स, पृ.-90)

लेखिका को एक इंसान के मनोभावों को बिना कुछ कहे दर्शाना भी खूब आता है

– शरीर के साथ उसका दिमाग भी झनझना रहा था। खड़े रहने के बाद, चकराते सिर को थाम कर बैठ गई। इस आधी रात में करे तो क्या करे। वह आक्रोश से उबल रही थी। उसने अपने पंजों को आपस में रगड़ा फिर पैरपोश से छुअन मिटानी चाही। उसने अपने पैरों को पानी से धो भी लिया पर कुटिलताभरी छुअन मिट नहीं रही थी। बुरी तरह चिपक गई थी उसके पैरों से भी और मन से भी। (बिना छत वाला घर, पृ. –114)

अगर यूँ कहें कि लेखिका शब्दों की जादूगरनी हैं। इनकी शब्दावली बहुत सरल और सहज। जिस चीज को हम कोई नाम न दें पाए। उसका बहुत ही सरल नाम ढूँढ़ लेती हैं और पाठक को पढ़कर कुछ अटपटा भी नहीं लगता, तो अतिश्योक्ति न होगी। देश काल और परिस्थितियाँ बहुत स्पष्ट हैं। आंचलिकता भी खूब सिर चढ़कर बोलती है। किला कोट एक ऐसी ही कहानी है।

किला कोट यानी किसी समृद्ध परिवार का सुन्दर चित्रण, साथ ही सामाजिक समरसता से सजा संसार भी। संजा के शृंगार की सामग्री के प्रतीक बनाते हुए वह शृंगार की कल्पना में खो जाती। ब्याह के बाद चन्दा सूरज से भाई डोली उठा रहे होते और उसकी सहेलियाँ गा रही होतीं।

छन्नू का सासरा स ऽऽऽ / हठी भी आयो घोड़ो भी आयो
जा बाई छन्नू सासरिया। (किला कोट पृ.–51–52)

इस कहानी संग्रह की शीर्षक कहानी एक बूँद समन्दर एक ऐसी कहानी है जो ऐतिहासिक दस्तावेज है उस गाँव का, उस संस्कृति का, उस जीती जागती जिन्दगी का जो पानी के अंदर समा गई। इसका बिलकुल सजीव चित्रण इस कहानी में पढ़ने को मिलता है।

ऐसा लगने लगा कि पानी गाँव की कच्ची–पक्की नालियों में दौड़ते हुए बेकाबू होकर, अब छोटी–बड़ी गलियों में घुस आया है। धीरे–धीरे गाँव की मुख्य सड़क और बाजार में भी दूर तक पानी फैल गया है। चारों ओर से पानी बढ़ रहा है, घने अँधेरे की तरह गहराते इस पानी में सब कुछ डूब रहा है। (पेज न.–36)

जब मैं ने कोहरा कहानी पढ़ी तो पता नहीं अपने बचपन के सारे दृश्य ताजा हो गए और बरबस ही पिता जी याद आ गए। माँ और बेटे का प्रेम भले ही दिखाई देता हो लेकिन पिता और पुत्र का प्रेम तो वाकई कोहरे में दब जाता है। यहाँ एक बहुत मार्मिक दृश्य खींचा गया है – **स्कूल पहुँचकर पिता की साइकिल से उतरते हुए मेरा पैर गोबर पर पड़ गया, मैं रुआँसा हो उठा। मैं सोच–विचार में ही था कि पिता जी ने पास के पेड़ से कुछ पत्ते तोड़े और नीचे जमीन पर बैठ कर मेरा जूता पोंछ दिया और अपने गमछे से चमका भी दिया। मैं और शर्म से गड़ गया। (पृ. 75–76)**

पिता और पुत्र के कथानक को लिए एक और कहानी है मुस्कुराती तस्वीर की जगह।

पिता के चुप्पे चेहरे में वह ढूँढ़ता रहता एक मुखर व्यक्तित्व के शिक्षक को, साहित्य–गोष्ठी के प्रसिद्ध साहित्यकार को, समाज के प्रखर वक्ता को, और उसके अपने पिता को। कोई भाव नहीं दिखाई देते पिता के चेहरे पर। (पृ.–10)

लेखिका के नजदीक प्रेम, नाचता–गाता जश्न मनाता नहीं है। वह तो केवल एक खूबसूरत अहसास है, मंद–मंद सुगंध की तरह। राहत के फूल कहानी पढ़कर इसकी खुशबू आपको भी महसूस होगी और आप भी उसे महसूस करने लगेंगे।

'लो सँभालो इन्हें।'

'इन्हें तुम्हीं रखो। परीक्षा के बाद हर्बेरियम बनाएँगे।' तुमने मुझे बताया।
'कितने महीन रेशेदार फूल हैं। इन्हें कैसे सहेजूँगा?' मेरे स्वर में चिंता थी।
ध्यान से देखो कोमल हैं तो क्या हुआ? कितनी मजबूती से जुड़े हैं। किसी मोटी किताब में दबा कर रख देना, नहीं बिखरेंगे। तुमने कहा।

मैं उन फूलों को घर ले आया और मोटी–सी किताब में दबा कर रख दिए। चार–पाँच दिन में देख लेता कहीं फूल बिखरे तो नहीं, सचमुच ये फूल बिखरे नहीं थे। महीन रेशे एक दूसरे से चिपक कर सुख गए थे, और मजबूत हो गए थे। किताब खोलने पर उनकी मंद सुगंध अपना अहसास कराती थी। (राह तकते फूल, पृ. – 87–88)

यहाँ इशारों–इशारों में बहुत कुछ कह दिया गया। एक बहुत ही पाकीजा रिश्ते को बताने का इससे खूबसूरत तरीका मैं नहीं समझता कोई और होगा।

इसकी एक और बानगी देखिए –

फिर से बारीक निगाहों से उसी फोटो को देखने पर मैं ने पाया कि फूलों को भरपूर ताजगी और खिलखिलाहट देने के संघर्ष में पत्ते में तनिक पीलापन आ गया है पर उसकी शिराओं में भरपूर हरापन है और वह पत्ता मजबूती से डंठल से जुड़ा नजर आ रहा है। घर, समाज की रूढ़ियों को ढोते हुए भी उसके पैर थके नहीं हैं। अपनी प्रोफाइल पिक्चर में वह किसी डांस कंसर्ट में प्रतियोगिता की कतार में खड़ी नजर आ रही है। और फोटो में उसका पल्लू अपनी सजावट लिए मुस्कुराता दिखाई दे रहा है।
(पीले पत्ते की थिरकन, पृ.–124)

पात्र सपने भी खूब देखते हैं और दरवाजे की सांकल भी खूब खटकती है। इस कहानी संग्रह की कीमत मात्र 150 रुपये है। मेरी ओर से मीनाक्षी दुबे को इस कहानी संग्रह को हार्दिक शुभकामनाएँ और इनका धन्यवाद कि उन्होंने पाठकों को एक बहुत ही खूबसूरत पुस्तक दी है।

178, नवीन नगर, ऐशबाग,
हिंद कान्वेंट स्कूल के पास,
भोपाल–462010 (म.प्र.)
मो.–9977589093

लछमन गुन गाथा

- जया केतकी

लछमन गुन गाथा राजेंद्र और विनोद बाला अरुण द्वारा लिखित राम जी के भाई लक्ष्मण पर आधारित ग्रंथ है। पुस्तक का आवरण देखकर ही मन द्रवित हो जाता है। राम की गोद में मूर्छित पड़े जटायु को जल पिला रहे लक्ष्मण। 264 पेज की इस कृति में **शुभशंसा** के अंतर्गत विद्वान श्री आनंद कुमार सिंह लिखते हैं कि इस पुस्तक को पढ़ते हुए आप पाएँगे मानो राम कथा का प्रासाद शेषावतार जी के चरित्र की सुदृढ़ भित्ती पर खड़ा है और पगे-पगे लक्ष्मण के चरित्र से प्रस्फुटित होने वाली रश्मियों का स्वर्णिम परावर्तन स्वयं राम कथा पर हो रहा है। इस पुस्तक के आंतरिक अध्यायों के नाम रामचरितमानस की अर्धालियों पर रखे गए हैं, जो तत्संबंधी संदर्भों को अचूक मार्मिकता से व्यंजित करते हैं। कहना न होगा कि रामानुज लक्ष्मण का गुण चरित्र इन प्रसंगों की सार्थक योजना से सर्वपक्षा विवक्षित हो जाता है। राम कथा में वर्तमान जीवन की जटिलताओं का समाधान ढूँढ़ने की इच्छा रखने वाले सभी सहृदय पाठकों को लक्ष्मण जी के गुणों को प्रकाशित करने वाली यह पुस्तक बहुत पसंद आएगी और वर्तमान जीवन शैली से उत्पन्न हुए मन के अँधेरों को दूर करने का महान काम करेगी। मैं इस पुस्तक की सर्वतोभावेन सफलता की कामना करता हूँ।

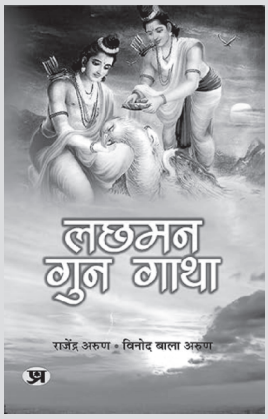

पुस्तक : लछमन गुन गाथा
लेखक : राजेंद्र और विनोद बाला अरुण
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन

पुस्तक का पहला ही शीर्षक है **बंदऊँ लछिमन पद जल जाता** इसके अंतर्गत विनोद बाला अरुण जी के दो शब्द अंकित हैं। इसमें उन्होंने लिखा है कि किस तरह से उनके मन में इस पुस्तक को लिखने की भावना ने जन्म लिया और पुस्तक ने साकार रूप लिया। 18 शीर्षकों के अंतर्गत लक्ष्मन गुन गाथा रची गई है-लच्छन धाम राम प्रिय, अनुज समेत देहु रघुनाथा, लखन सकोप बचन जे बोले, छुअत टूटि रघुपतिहि न दोसू, ब्याकुल बिलख बदन उठी धाए, तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं, काहु न कोउ सुख-दु:ख कर दाता, सेवहिं लखनु करम मन बानी, आजु राम सेवक जसु लेऊँ, मोही समुझाइ कहहु सोइ देवा, सूपनखा रावन कै बहिनी, लै जानकिहि जाहु गिरी कंदर, राज देहु सुग्रीवहि जाहु, दैव-दैव आलसी पुकारा, दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए, लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा, सीता सहित अनुज प्रभु आवत, नाम शत्रुहन बेद प्रकासा।

जीवन में संकट से बचने का एक सूत्र लक्ष्मण जी बताते हैं। यह सूत्र पुरुषार्थियों के लिए व्यर्थ और प्रमादियों के लिए परम वरेण्य है। सूत्र है-आँखें बंद कर लो, संसार के हर संकट से बच जाओगे। जब संसार का दंद-फंद देखेंगे ही नहीं, तो मन में जय-पराजय का भाव उठेगा ही नहीं। आँखें बंद कर लो, संसार विलुप्त हो जाएगा।

लक्ष्मण जी के पास परशुराम जी के हर तर्क एवं बात का उत्तर है। उन्हें इस बात पर भी आपत्ति है कि परशुराम जी राजा जनक से उन्हें हटाने की बात कह रहे हैं। उन्हें लगा कि दूसरे को न देखना हो तो उसे वहाँ से हटाने से बेहतर है, स्वयं आँखें बंद कर लेना।

परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु ॥ (1-280)

-तब परशुराम जी हृदय में अत्यंत क्रोध भरकर श्रीराम जी से बोले- अरे शठ! तू शिवजी का धनुष तोड़कर उलटा हमी को ज्ञान सिखाता है।

परशुराम जी का घायल अहं मर्यादा के सभी बंधनों को तोड़ रहा है। वे अब लछमन जी की किसी बात का उत्तर नहीं देना चाहते। उन्हें लगा कि वे पेड़ को ऊपर से सींच रहे थे, जबकि जड़ को सींचना चाहिए। श्रीराम ने धनुष तोड़ा, क्रोध मैंने उन पर किया किंतु वे शांत भाव से बैठे हैं और वाद-विवाद, उत्तर-प्रत्युत्तर कर रहे हैं लक्ष्मण। लगता है कि वे श्रीराम के प्रवक्ता और प्रतिनिधि हैं, इसीलिए श्रीराम ने उन्हें डाँटकर चुप कराया। लक्ष्मण जी बोलते जा रहे हैं और श्रीराम उन्हें अपनी भड़ास निकालने का अवसर दे रहे हैं। अत: अब वे श्रीराम को आड़े हाथों लेते हैं। वे श्रीराम के आचरण को नौटंकी कहते हैं। उन्होंने श्रीराम के आचरण और व्यवहार का विश्लेषण करते हुए कि तेरा भाई मेरा अपमान करता है और तू मेरी प्रशंसा करता है। तुम दोनों का व्यवहार अपमानजनक है। एक गाली दे रहा है और दूसरा गुणगान।

बंधु कहइ कटु सम्मत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे।।

काहु न कोउ सुख-दुःख कर दाता (145)

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥ (2-93-1)

हे सखा! ऐसा समझ, मोह को त्यागकर श्रीसीता-रामजी के चरणों में प्रेम करो। लक्ष्मण जी अत्यंत स्नेहपूर्वक निषादराज को सखा कहकर संबोधित करते हैं और श्रीसीता-रामजी के चरणों में प्रेम करने का संदेश देते हैं, क्योंकि वही जीवन की सबसे बड़ी सिद्धि और उपलब्धि है।

लक्ष्मण जी स्वयं श्रीराम की अंतरात्मा होते हुए भी उनके परमभक्त थे। रामचरितमानस भक्ति का ग्रंथ है। भक्ति साध्य भी है और साधन भी। जिस भाव से भली प्रकार चित्त निर्मल हो जाए और अपने इष्ट देव के प्रति ममता उत्पन्न हो जाए, उस प्रेम को भक्ति कहते हैं। ईश्वर में पूरी अनुरक्ति या तल्लीनता ही भक्ति है। जब भक्ति जीवन में फलीभूत होती है तो सारा अज्ञान और मोह उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अंधकार। जब भक्त यह समझ लेता है कि 'न हीष्टदेवात्परमस्ति किञ्चित्'-इष्ट देव से बढ़कर कुछ भी नहीं है, तब वह परा भक्ति की सीमा तक पहुँच जाता है।

जैसे कोई गूँगा किसी स्वादिष्ट पदार्थ को खाकर केवल उसके रस का आनंद लेता है, परंतु उसे बता नहीं सकता, वैसे ही भक्त भी भक्ति के आनंद की व्याख्या नहीं कर सकता।

ऐसी पराभक्ति को जीवन में धारण करने का संदेश लक्ष्मण जी निषादराज को देते हैं, जिसे पाकर मनुष्य हर सांसारिक शोक, संताप एवं जंजाल से मुक्त हो जाता है और परम आनंद के सागर में डुबकी लगाता है।

आजु राम सेवक जसु लेकै (161)

तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥

कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥

करि कुमंत्रु मन साजि आए करै अकंटक समाजू। राजू॥

कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोऊ भाई॥ (2-227-3-6)

वे भरत भी आज श्रीरामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्म की पांदा को मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर रामजी (आप) वनवास में अकेले (असहाय) हैं, अपने मन में बुरा विचार करके, नाज जोड़कर राज्य को निष्कंटक करने के लिए यहाँ आए हैं। करोड़ों (अनेक) प्रकार कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आए हैं।

भरतजी का सेना के साथ आना सबको भ्रमित एवं शंकित कर रहा है। लक्ष्मणजी अत्यंत उद्विग्न, व्याकुल और क्रोधित हैं। उन्हें भरतजी का इस प्रकार आना बहुत बड़ा योजित षड्यंत्र लगता है।

जौ जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहति रथ बाजि गजाल॥

भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ। (2-227-7, 8)

इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार समय) किसे सुहाती? परंतु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे? राजपद पा लेने पर जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है।

नाम सत्रुहन बेद प्रकासा मकथा के प्रेमीजन प्राय: यह पूछते हैं कि रामायण में शत्रुघ्नजी की भूमिका इतनी छोटी क्यों है? रामकथा क्यों है? विष्णु भगवान् के अंश होते हुए भाइयों में सबसे संक्षिप्त भूमिका शत्रुघ्नजी की ही क्यों है? भी वे इतने मौन क्यों हैं? चारों कारण बहुत स्पष्ट है कि किसी भी महाकाव्य में हर पात्र की भूमिका नायक जैसी नहीं हो सकती। हाँ, सभी पात्र अपनी भूमिका का पालन करते हुए नायक को प्रखर बनाने का कार्य करते हैं।

इस दृष्टि से हम विचार करें तो शत्रुघ्न जी की भूमिका छोटी होते हुए भी प्रभावी है। रामायण में श्रीराम की केंद्रीय भूमिका है। अयोध्या का राजभवन श्रीराम और भरतजी के तेजस्वी व्यक्तित्व से आलोकित है। श्रीराम के सहायक लक्ष्मणजी और भरतजी के सहायक शत्रुघ्नजी हैं। यदि भरत ने अपनी माँ कैकेयी के दूषित मंतव्य को अपनी महत्त्वाकांक्षा से सिंचित किया होता तो शत्रुघ्न की भूमिका राजभवन के आंतरिक संग्राम में निश्चित रूप से बड़ी होती, लेकिन भरत के महिमामंडित चरित्र ने संघर्ष की धरती पर सहयोग के फूल खिलाकर घटनाक्रम की दशा और दिशा दोनों बदल दी। लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी दोनों अयोध्या के राजभवन के संरक्षण के लिए समर्पित हो गए। एक श्रीराम के साथ और एक भरतजी के साथ। मानवता के इतिहास में संघर्ष का सहयोग में इतना मोहक रूपांतरण अन्यत्र दुर्लभ है।

जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥ (1-196-8)

जिनके स्मरणमात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध शत्रुघ्न नाम है।

द्वारा हिंदी भवन, भोपाल

मो.-9826245286

लेखकों से प्रार्थना

महावीर प्रसाद द्विवेदी

जन्म – 5 मई 1864

प्रयाण – 21 दिसंबर 1938

'सरस्वती' किसी व्यक्ति–विशेष या किसी एक समुदाय को प्रसन्न करने के लिए नहीं। उसके जितने ग्राहक हैं, यथाशक्ति सबको प्रसन्न रखने और सबको लाभ पहुँचाने के लिए वह प्रकाशित होती है। जिस लेख या कविता से इस उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है उसी को सरस्वती में स्थान मिल सकता है। जिससे न मनोरंजन ही हो सकता है, न ज्ञान–वृद्धि ही हो सकती है, न और ही किसी तरह का लाभ पहुँच सकता है, उसे न प्रकाशित करने के लिए हम विवश हैं। सरस्वती के इस उद्देश्य पर ध्यान न देकर अनेक लेखक लेख भेजा करते हैं और यदि वे नहीं स्वीकार किए जाते तो वे व्यर्थ ही शून्य होते हैं। कुछ तो क्रुद्ध भी हो जाते हैं और पत्र द्वारा अपना क्रोध असंयत भाषा में प्रकट करने लगते है। किसी की भाषा व्याकरण–विरुद्ध है तो किसी की इतनी क्लिष्ट है कि मतलब ही समझ में नहीं आता। किसी की भाषा यदि ठीक है, तो वक्तव्य में कुछ तत्त्व नहीं। कोई अपने किसी मित्र का सचित्र चरित छपाना चाहता है, तो कोई अपनी किसी कार्य सिद्धि के लिए अपने किसी अफ़सर का। ऐसे महाशयों को प्रसन्न रखना हमारे लिए सर्वथा असंभव है। उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे हमें 'सरस्वती' के ग्राहक समुदाय का सेवक समझे। सेवक का धर्म है कि वह अपने स्वामी की सेवा निष्कपट होकर करे, ऐसा करने से यदि कुछ लोग उससे अप्रसन्न हो जाएँ तो इसमें उसका कुछ भी दोष नहीं। 'सरस्वती' के ग्राहकों में हिंदू, मुसलमान और ईसाई भी हैं– जैन, बौद्ध और पारसी भी हैं। अतएव यथा संभव, इन सभी को प्रसन्न रखना 'सरस्वती' का कर्त्तव्य है। सभी धर्मों के अनुयायी अनुकरणीय चरित पुरुषों के सचित्र वृतांत सरस्वती में प्रकाशित हो सकते हैं। परंतु जिन्हें कोई नहीं जानता और जिन्होंने संसार में कोई अनुकरणीय काम नहीं किया उनके चरित, किसी व्यक्ति–विशेष या समुदाय विशेष को प्रसन्न करने के लिए नहीं प्रकाशित हो सकते।

कुछ महाशय मनमाने लेख लिख भेजते हैं और कहते हैं कि हमारी भाषा का संशोधन करके उन्हें छाप दो। इस पर हमारा निवेदन है कि हम उनकी आज्ञा का पालन करने को सदा तैयार हैं। पर जिसे वे अच्छा और उपयोगी लेख समझते हैं उसे यदि हम अपने अनुभव और विचार से वैसा न समझें तो क्या किया जाए। अथवा यदि संशोधन–कार्य की मात्रा बहुत अधिक हो तो हम किस प्रकार उनकी आज्ञा का पालन करें। सामर्थ्य के बाहर की बात तो हो नहीं सकती। उनसे हमारा यह विनय है कि सरस्वती में प्रकाशन के लिए आए हुए लेखों में यदि यथेष्ट उपयोगिता या मनोरंजन की सामग्री होगी तो उन्हें हम अवश्य ही प्रकाशित कर देंगे और लेखकों के कृतज्ञ भी होंगे। लेख भेजने के लिए जब हम सुलेखकों से रोज़ ही प्रार्थना किया करते हैं तब बिना माँगे ही आए हुए लेख, यदि के उपयोगी हैं तो, हम क्यों न प्रकाशित करेंगे ?

एक बात और है। जो महाशय यह चाहते हों कि लेख पसंद न आने पर उन्हें लौटा दिया जाए उनको चाहिए कि वे यह बात लिख दिया करें और लौटाने के लिए टिकट भी भेज दिया करें। ऐसा न करने और दो–दो तीन–तीन महीने बाद लेख वापस मँगाने पर हम उनकी आज्ञा का परिपालन न कर सकेंगे।

जिनके लेख 'सरस्वती' में छपने के लिए आते हैं और नहीं छपते हैं, आशा है, हमारी इस क़ैफियत से असल बात समझ जाएँगे और अकारण ही कोप न करेंगे। धमकियाँ और कुत्सापूर्ण उलाहने भेजकर उन्हें अपना और हमारा भी समय व्यर्थ न खोना चाहिए। किसी किसी को शायद यह बवाल हो कि हमने यह नोट बिना यथेष्ट कारण ही लिखा है। उनके संतोष के लिए यहाँ पर हम एक प्रमाण देते हैं। किसी महाशय की कोई कविता हमने 'सरस्वती' में न प्रकाशित की। इस पर आपने एक और कविता भेजकर अपने मनोभाव व्यक्त किए हैं। यह कविता बनारस से आई है। पर कवि महाशय ने अपना नाम नहीं दिया। कविता ज्यों की त्यों नीचे प्रकाशित की जाती है–

श्रीमन्,

समस्तगुणमण्डित दिव्य–धाम
स्वीकारिए मम कृताञ्जलिक प्रणाम।
है आ रही यह समीप पवित्र होली
होली मनोमलिनता बस अन्त होली॥
यों आइए इधर भी कुछ दृष्टि कीजै
मैं हूँ 'वही कवि' मुझे पहचान लीजै।
क्यों रुष्ट आप मुझसे इतने हुए हैं
सद्भाव भी हृदय के कुम्हले हुए हैं॥
जो रोष का उचित कारण ज्ञात होता
तो भी मुझे हृदय में कुछ तोष होता।
जो है स्वभाव जिसका टलता नहीं है।
श्रीकण्ठ को विष कभी खलता नहीं है॥
होते प्रसन्न बुध काव्यकलाप से हैं
होते न रुष्ट हित सात्विक लाप से हैं।
जी श्रेष्ठ हैं सतत वे रखते दया हैं
मेरे समान शठ क्या रखते हया हैं॥
श्रीमान से प्रथम साहस माँगता हूँ
आगे किया कुछ निवेदन चाहता हूँ।
मेरा यहाँ पर सभी कुछ जान दोष
है आप को उचित ही करना न रोष॥
ये एक बात मम मानस में गड़ी है
चिन्ता सदैव जिसकी मुझको बड़ी है।
गम्भीर भाव अभिलेखन के चितेरे
छापे नहीं बहुत सुन्दर लेख मेरे॥
या तो किसी समय का बदला लिया हो
या लेशमात्र कुछ लाभ उठा लिया हो।
निष्पक्ष होकर यहाँ यदि न्याय कीजै
मैं क्या कहूँ; न स्वयमेव विचार लीजै॥
हाँ, दोष एक मुझ से यह हो गया है
जो आपके निकट लेख चला गया है।
जो जानता कि मुझ से इतनी रुखाई
तो मैं कभी न करता इतनी ढिठाई॥
क्या सत्य बात जग में छिपती कहीं है ?
जो बात है, विदित क्या मुझ को नहीं है ?
मेरी विचित्र कविता रसहीन जानी
सो आपने इसलिए 'वह' भी न मानी॥
जो व्यर्थ शुद्ध कृति में त्रुटियाँ बतावें
देखें न दोष अपना, अपनी लगावें।
हिन्दी धुरन्धर बनें समकाव्यधाम
मेरा उन्हें प्रथम ही त्रिविध प्रणाम॥
मेरी विचित्र कविता लहरी रसों की
शोभा प्रसाद–गुण संचित मानसों की।
कैसी निगूढ़ नवभाववती सती है
अन्तर्जला विमल शान्त सरस्वती है॥
मैं मन्दबुद्धि जब सोलह वर्ष का था
अच्छे प्रकार कविता करने लगा था।
सो आज मैं बरस तेइस एक का हूँ
उत्साहहीन अब हो सब छोड़ता हूँ॥
जो आप निश्चय इसे अब भी न छापें
जो आप बात मन की अब भी न भाँपें।
तो लेखनी अब नितांत विराम लेगी
श्रीमान का हर घड़ी फिर नाम लेगी॥
जो आपने न परवा इस बात की
कीरक्खी उठा न कुछ और स्वकीय जी की।
तो आपको शपथ है मम लेखनी की
हिन्दी–सुभक्त–जनमानस मोहिनी की॥
दीजै इसे अब निकाल सरस्वती में
हो तो सही कुछ परितोष जी में।
हो जाइए अब कृपा कर आप तुष्ट
श्रीमान का चरणसेवक एक 'दुष्ट'॥

अक्षर के विशेषांक

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।